M COM-02

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

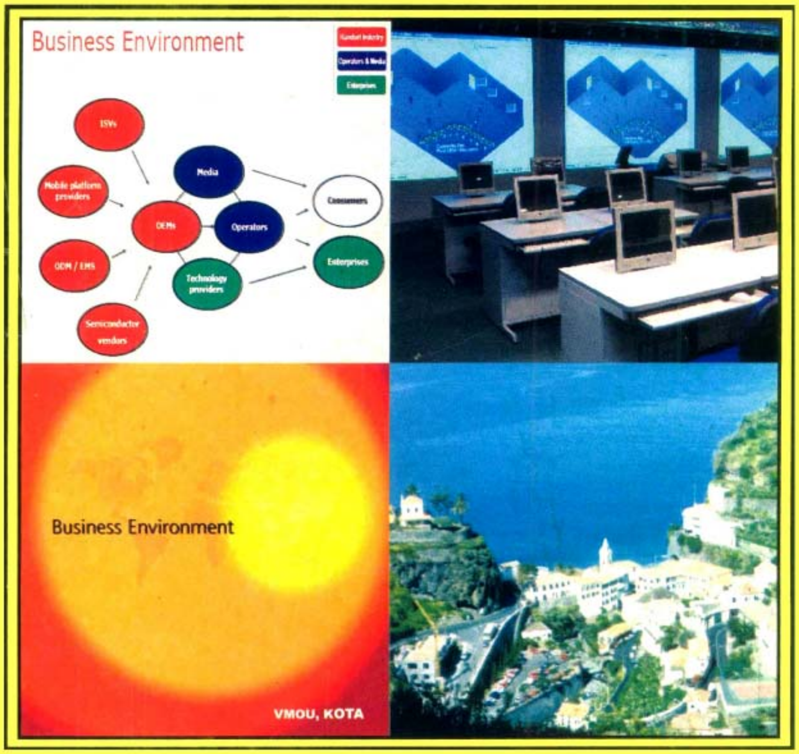

व्यावसायिक वातावरण

M.COM- 02

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

व्यावसायिक वातावरण
(BUSINESS ENVIRONMENT)

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

अध्यक्ष

प्रो. (डॉ.) नरेश दाधीच

कुलपति

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा राजस्थान

संयोजक / सदस्य

संयोजक

डॉ. एम. एल. जैन "मणि"

(पूर्व उपप्राचार्य, विश्वविद्यालय वाणिज्य महविद्यालय, जयपुर)

परामर्शदाता- वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

सदस्य

- **प्रो. (डॉ.) गिरधर सोरल**
  लेखा एवं सांख्यिकी विभाग
  एम.एल.सुखाडिया विश्वविद्यालय, उदयपुर
- **प्रो.(डॉ.) एन.डी. माथुर**
  ई.ए.एफ.एम. विभाग
  राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
- **प्रो.(डॉ.) गोविन्द पारिक**
  उप प्राचार्य, वाणिज्य महाविद्यालय
  राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
- **प्रो.(डॉ.) पी.के. शर्मा**
  प्रोफेसर, प्रबन्ध अध्ययन विभाग
  वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा
- **डॉ. राजेश कोठारी**
  निदेशक, पोद्दार इन्स्टीट्यूट ऑफ मैनेजमेंट
  राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
- **डॉ. आर. एस. अग्रवाल**
  वरिष्ठ व्याख्याता, ए,बी.एस.टी.
  राजकीय एस.डी. कॉलेज, ब्यावर

संपादन एवं पाठ-लेखन

संपादक

प्रो. (डॉ.) आई.वी.त्रिवेदी

आचार्या, बैंकिग एवं बिजनेस इकॉनामिक्स

एम.एल.सुखाड़िया विश्वविद्यालय, जयपुर

पाठ लेखक

- **डॉ. अशोक नागर** (इकाई संख्या1,10,12,)
  सह आचार्या, बैंकिंग एवं बिजनेस इकॉनामिक्स,
  एम.एल.सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर
- **डॉ. मुकेश माथुर** (इकाई संख्या 2)
  सह आचार्या,बैंकिंग एवं बिजनेस इकॉनामिक्स,
  एम.एल.सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर
- **डॉ. राकेश दशोरा** (इकाई संख्या 04)
  वरिष्ठ व्याख्यता राजकीय मीरा गर्ल्स कॉलेज,
  उदयपुर
- **डॉ. पी.के.सिंह** (इकाई संख्या 04)
  सह आचार्या,बैंकिंग एवं बिजनेस इकॉनामिक्स,
  एम.एल.सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर
- **डॉ. महिमा बिड़ला** (इकाई संख्या 06,07)
  सहायक आचार्या, पेसेफिक कालेज, उदयपुर
- **डॉ. सुमन मिश्रा** (इकाई संख्या8,11)
  व्याख्यता, राजकीय मीरा गर्ल्स कॉलेज,
  उदयपुर
- **डॉ. राजेश व्यास** (इकाई संख्या 9)
  वजिटिंग प्रोफेसर एवं सूचना जनसम्पर्क अधिकारी,
  राजस्थान सरकार, जयपुर
- **डॉ. पल्लवी मेहता** (इकाई संख्या 13,14,19)
  व्याख्यता, बैंकिंग एवं बिजनेस इकॉनामिक्स,
  एम.एल.सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर
- **डॉ. रेणू जताना** (इकाई संख्या 15,16,18)
  सह आचार्या, बैंकिंग एवं बिजनेस इकॉनामिक्स,
  एम.एल.सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर
- **डॉ. प्रीतम जोशी** (इकाई संख्या 20)
  सांख्यिकी अधिकारी, सांख्यिकी विभाग, जयपुर

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो. (डॉ.) नरेश दाधीच	**प्रो.(डॉ.) एम.के. घडोलिया**	**योगेन्द्र गोयल**
कुलपति	निदेशक (अकादमिक)	प्रभारी
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	**संकाय विभाग**	**पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग**

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल

सहायक उत्पादन अधिकारी

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पुनः उत्पादन- जुलाई 2010 ISBN-13/978-81-8496-005-1

सर्वाधिकार सुरक्षित: इस सामग्री के किसी भी अंश की वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसीभी रूप में मिमियाग्राफी (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुन: प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

व.म.खु.वि. कोटा के लिये कुलसचिव व.म.खुवि. कोटा (राज.) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा

अनुक्रमणिका

इकाई सं.	इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या
इकाई –1	व्यावसायिक दशा-	7–14
इकाई –2	सामाजिक एवं सांस्कृतिक वातावरण	15–24
इकाई –3	व्यवसाय का सामाजिक उत्तरदायित्व	25–33
इकाई –4	राजनीतिक वातावरण	34–48
इकाई –5	नियमन नीति एवं व्यवस्था	49–56
इकाई –6	कम्पनी अधिनियम के मूल तत्त्व	57–73
इकाई –7	श्रम सन्नियम	74–87
इकाई –8	प्रतियोगिता अधिनियम	88–95
इकाई –9	सूचना प्रोद्योगिकी विकास एवं सूचना प्रोद्योगिकी अधिनियम, 2000	96–111
इकाई –10	भारतीय विदेशी विनिमय पद्धति में फेमा	112–117
इकाई –11	अस्वस्थ ओद्योगिक कम्पनीज (विशेष प्रावधान) अधिनियम, 1985	118–127
इकाई –12	भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना	128–139
इकाई –13	आर्थिक नियोजन एवं ग्याहरवीं पंचवर्षीय योजना	140–150
इकाई –14	आर्थिक नीति	151–162
इकाई –15	लघु उद्योग	163–176
इकाई –16	आर्थिक सुधार	177–190
इकाई –17	भुगतान संतुलन एवं आयात निर्यात नीति	191–203
इकाई –18	वैश्वीकरण एवं विश्व व्यापार संगठन	204–213
इकाई –19	विदेश विनियोग एवं एकजुटता	214–223
इकाई –20	व्यावसायिक तकनीकि वातावरण	224–232

इकाई-1: व्यावसायिक वातावरण (Bussiness Environment)

इकाई की रूपरेखा :

1.0 पृष्ठभूमि

1.1 व्यवसाय और वातावरण के मध्य संबंध

1.2 आर्थिक वातावरण

1.3 प्रमुख विशेषताएँ

1.4 व्यावसायिक वातावरण का महत्त्व

1.5 आर्थिक वातावरण को प्रभावित करने वाले घटक / कारक

1.6 अभ्यास प्रश्न

1.7 संदर्भ पुस्तकें

1.0 पृष्ठभूमि

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और उसे अपने जीवनयापन के लिए विभिन्न प्रकार की आर्थिक क्रियाएँ करनी पड़ती है । जहाँ एक और मनुष्य की आर्थिक क्रियाएँ वातावरण / पर्यावरण से प्रभावित होती है वहीं दूसरी ओर मनुष्य की आर्थिक गतिविधियाँ वातावरण / पर्यावरण को प्रभावित भी करती हैं। किसी भी व्यवसाय की योजना बनाने के पूर्व राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक वातावरण का विश्लेषण परम आवश्यक है।

व्यावहारिक बाजार जगत में व्यावसायिक वातावरण को मुख्य रूप से आन्तरिक एवं बाह्य वातावरण के रूप में देखा जाता है । सामान्यत: आन्तरिक वातावरण को नियंत्रित किया जा सकता है किन्तु व्यवसाय का बाह्य वातावरण पर नियन्त्रण करना कठिन हो जाता है । जिस प्रकार व्यवसाय का आन्तरिक एवं बाह्य वातावरण व्यावसायिक क्रियाओं को प्रभावित करती है ठीक उसी प्रकार व्यावसायिक क्रियाएं भी, व्यवसाय की आन्तरिक एवं बाह्य वातावरण को प्रभावित भी करती हैं ।

1.1 व्यवसाय और वातावरण का पारस्परिक सम्बन्ध (Relationship between Business and Environment)

व्यवसाय और वातावरण एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। परिस्थितियों से संबंधित वे समस्त तत्व जो व्यवसाय को प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं, वातावरण को जन्म देते हैं। अधिकांश विद्वानों ने इन वातावरणीय घटकों को पांच प्रमुख वर्गो में बांटा है यथा - आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक, राजनैतिक, तकनीकी, नैसर्गिक घटक। कुछ प्रमुख विद्वान - पूर्तिकर्ताओं, मध्यस्थों, उपभोक्ताओं, विनिमय के स्त्रोतों संचार माध्यमों, शैक्षिक संस्थाओं आदि को भी वातावरण का पृथक घटक मानते है।

व्यवसाय एवं वातावरण के पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन अग्राकित बिन्दुओं के माध्यम से किया जा सकता है -

1. व्यावसायिक वातावरण को प्रभावित करने वाले घटक पारस्परिक निर्भर होते हैं ।
2. व्यवसाय का सम्पूर्ण वातावरण परिवर्तनशील होत है ।
3. व्यावसायिक वातावरण अनियन्त्रित एवं अनिश्चित होता है ।

4. वातावरण के अनियन्त्रित घटकों का व्यवसाय पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है तथा अनेक समस्याएँ भी उत्पन्न होती रहती हैं ।
5. वातावरण में होने वाले अचानक परिवर्तनों से कई प्रकार की समस्याएं उत्पन्न हो जाती
6. वातावरण में होने वाले अनुकूल एव प्रतिकूल परिवर्तनों को जानने का दायित्व व्यवसाय पर ही होता है ।
7. वातावरण के बदलते हु ए परिवेश पर व्यवसाय द्वारा नियमित ध्यान रखना आवश्यक होता है ।

व्यवसाय का आर्थिक वातावरण (Economic Environment of business)

विश्व के किसी भी देश की आर्थिक गतिविधियाँ एवं संरचनाएँ मुख्यत: आर्थिक शब्द से तात्पर्य अर्थ, धन, लाभ प्राप्ति की प्रेरणा से की जाने वाली क्रियाओं से लगाया जाता है । ऐसी समस्त क्रियाएँ भी आर्थिक श्रेणी में सम्मिलित की जाती है जिनकी संस्थापना व संचालन किसी भौतिक मूल्यवान लाभ की प्रेरणा से किया जाता है । इस कारण अनेक आर्थिक घटक व्यवसाय के आर्थिक वातावरण का निर्माण करते हैं ।

1.2 आर्थिक वातावरण (Economic Environment)

आर्थिक वातावरण एक कठिन एवं जटिल अवधारणा है । आर्थिक वातावरण के वास्तविक अर्थ को जानने कि लिए इन्हें दो शब्दों में विभक्त कर जानना श्रेयस्कर होगा, अर्थात् आर्थिक वातावरण शब्द को अलग-अलग समझकर ही आर्थिक वातावरण को जाना जा सकता है।

आर्थिक का अभिप्राय (Meaning of Economic) -अर्थशास्त्र के अन्तर्गत उन सभी क्रियाकलापों को सम्मिलित किया जाता है जिन को मनुष्य द्वारा आवश्यकताओं की पूर्ति तथा धन प्राप्ति के उद्देश्य से निष्पादित की जाती है तथा जिनको मुद्रा के रूप मे मापा जा सके । इन आर्थिक क्रियाओं का संबंध मनुष्य की उपभोग, उत्पादन, विनिमय, वितरण तथा राजस्व संबंधी क्रियाओं से होता है ।

वातावरण का अभिप्राय (Meaning of Environment)-वातावरण का अभिप्राय, हमारे चारों ओर छाया आवरण । जीवन और वातावरण अद्य संबंध होता है । प्रकृति में जल, वायु, भूमि वनस्पति, जीव-जन्तु आदि में एक संतुलन होता है । यह संतुलन ही प्राणी के अस्तित्व का मूलाधार होता है । वेब्स्टर शब्द कोष के अनुसार "वातावरण से अभिप्राय उन घेरे मे रहने वाली परिस्थितियों, प्रभावों एवं शक्तियों से है जो प्राकृतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक दशाओं के समूह द्वारा व्यक्ति अथवा समुदाय के जीवन को प्रभावित करता है ।"

निष्कर्ष के तौर पर यह कहा जा सकता है कि मनुष्य के चारों ओर की प्राकृतिक. सामाजिक, सांस्कृतिक एवं मानवीकृत शक्तियों को जो मनुष्य की आर्थिक क्रियाकलापों को प्रभावित करती है, आर्थिक वातावरण की संज्ञा दी जाती है।

आर्थिक वातावरण (Economic Environment)

आर्थिक वातावरण का तात्पर्य अर्थव्यवस्था के चारों ओर व्याप्त उन निकटवर्ती परिस्थितियों शक्तियों एवं प्रभावों से है जो सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं प्राकृतिक स्थितियों के समूह के रूप में व्यक्ति अथवा समुदाय के धनोपार्जन संबंधी क्रिया-कलापों को प्रभावित करता है अथवा उनसे प्रभावित होती है ।

इस प्रकार आर्थिक वातावरण से तात्पर्य मनुष्य के निकटवर्ती उन सभी परिस्थितियों से है जो सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक अन्तर्राष्ट्रीय प्रौद्योगिक, प्राकृतिक एवं तकनीकी दशाओं के रूप मे व्यक्ति अथवा समुदाय के आर्थिक क्रिया-कलापों को प्रभावित करती हैं एवं प्रभावित होती हैं ।

1.3 आर्थिक वातावरण की प्रमुख विशेषताएँ

[1] **आर्थिक वातावरण सदैव परिवर्तनशील होता है :-** आर्थिक वातावरण सदैव देश, काल एवं परिस्थितियों के अनुसार बदलता रहता है । अर्थात् सदैव परिवर्तनशील होता है । परिणामस्वरूप आर्थिक वातावरण सदैव व्यापार चक्र से प्रभावित होता है एवं उसको प्रभावित करता है ।

[2] **आर्थिक क्रिया कलाप :-** आर्थिक वातावरण में कृषि, उद्योग, व्यापार, बैंक, बीमा संचार इत्यादि आर्थिक क्रिया-कलाप सम्मिलित किये जाते हैं ।

[3] **विभिन्न कारक :-**आर्थिक वातावरण के अन्तर्गत सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, प्रौद्योगिकी एवं तकनीकी, जनसंख्या, आर्थिक दशाएं, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय दशाएँ आदि कारक सम्मिलित होते है । उपरोक्त ये कारक एक-दूसरे से प्रभावित होते हैं ।

[4] **आर्थिक पद्धति :-** इसके अन्तर्गत पूँजीवाद, समाजवाद, मिश्रित एवं साम्यवाद को शामिल किया जाता है । आर्थिक वातावरण पर आर्थिक पद्धति/प्रणाली का काफी प्रभाव पड़ता है ।

[5] **सरकार की अहम् भूमिका :-** आर्थिक वातावरण के अन्तर्गत सरकार की अपनी अहम् भूमिका होती है । अर्थात् वातावरण पर सरकार द्वारा नियमन., निर्देशन एवं नियन्त्रण किया जाता है । पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में आर्थिक संसाधनों पर सरकारी हस्तक्षेप कम एवं नियोजित अर्थव्यवस्था में सरकारी हस्तक्षेप अधिक होता है ।

[6] **वातावरणीय प्रभाव -** आर्थिक वातावरण भी पर्यावरण का एक महत्त्वपूर्ण भाग है । आर्थिक वातावरण सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं भौगोलिक पर्यावरण से प्रभावित होता है ।

1.4 "व्यावसायिक वातावरण का महत्त्व"

1. व्यवसाय के आन्तरिक वातावरण में होने वाले परिवर्तनों की जानकारी व्यवसायी के लिए अत्यन्त आवश्यक होती है ।
2. सही एवं नियमित जानकारी प्राप्त करने के लिए कुशल सूचना प्रणाली भी एक आवश्यक शर्त होती है, जो व्यावसायिक वातावरण का एक प्रमुख अंग है ।
3. व्यवसाय के मार्ग में आने वाली समस्याओं एवं चुनौतियों की जानकारी भी व्यवसायिक वातावरण द्वारा संभव होती है ।
4. स्वतन्त्र बाजार के कारण अनिश्चित एवं तीव्रगति से होने वाले परितर्वनो के कारण व्यवसाय मे कई संकट उत्पन्न होना।
5. कई राष्ट्रों की अपनी भिन्न-भिन्न शासनप्रणाली होने के कारण भी व्यावसायिक वातावरण का अध्ययन आवश्यक हो जाता है।
6. विभिन्न सरकारों की आर्थिक नीतियों मे अनेक दिशाहीन एवं व्यवसाय में गतिरोध उत्पन्न करने वाले परिवर्तनों के कारण उत्पन्न समस्याओं से निपटने के लिए भी व्यावसायिक वातावरण का अध्ययन उपयोगी हो जाता है ।

7. राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं से उत्पन्न समस्याओं के निदान हेतु भी व्यावसायिक वातावरण का अध्ययन उपयोगी हो जाता है ।

1.5 "आर्थिक वातावरण को प्रभावित करने वाले प्रमुख घटक/कारक/तत्व" (Main Factors Affecting Enviornment)

किसी भी राष्ट्र के आर्थिक वातावरण के निर्माण में अनेक तत्त्व व परिस्थितियों की अपनी अहम् भूमिका होती है । इसके अन्तर्गत उस देश के आर्थिक एवं प्राकृतिक संसाधन, आर्थिक नीति, विदेशी व्यापार, राष्ट्रीय आय, आर्थिक प्रणाली, उद्योग व्यापार, कृषि आदि प्रमुख होते हैं । इस प्रकार आर्थिक वातावरण को प्रभावित करने वाले प्रमुख घटकों कारकों एवं तत्वों का वर्णन अग्रांकित बिन्दुओं के माध्यम से किया जा सकता है :-

(1) **देश की आर्थिक प्रणाली (Economic System of the Country) :-** आज विश्व में अनेक प्रकार की आर्थिक प्रणालियां प्रचलन में है जो प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से आर्थिक वातावरण को प्रभावित करती हैं। आर्थिक प्रणाली से आशय अर्थव्यवस्था के उस स्वरूप से है जिसके अन्तर्गत उपभोग, उत्पादन, विनिमय, वितरण तथा राजस्व संबंधी आर्थिक क्रियाओं का निष्पादन होता है । इन आर्थिक प्रणालियों में भिन्नता के कारण अलग-अलग सरकारी हस्तक्षेप की नीति अपनाई जाती है । प्रमुख आर्थिक प्रणालियों का वर्णन अग्राकित रूप में किया जा सकता है :-

(अ) पूंजीवादी आर्थिक प्रणाली(Capitalist Economy) :- पूँजीवादी आर्थिक प्रणाली अर्थव्यवस्था का वह स्वरूप होती है जिसके अन्तर्गत उत्पादन एवं वितरण के साधनों पर निजी स्वामित्व का नियमन एवं नियन्त्रण होता है । आर्थिक गतिविधियों के संचालन में निजी क्षेत्र की स्वतन्त्रता, प्रतिस्पर्धा के साथ-साथ निजी लाभ की प्रधानता दृष्टिगत होती है । इनके फलस्वरूप अर्थव्यवस्था के तीव्र आर्थिक विकास में सहायता मिलती है ।

(ब) समाजवादी आर्थिक प्रणाली (Socialist Economy) :- समाजवादी अर्थव्यवस्था से तात्पर्य अर्थव्यवस्था के उस स्वरूप से होता है जिसमें उत्पादन एवं वितरण के साधनों पर सरकार अथवा समाज का सम्पूर्ण नियमन, नियन्त्रण एवं स्वामित्व होता हैं । इसके अन्तर्गत अर्थव्यवस्था का संचालन अधिकतम सामाजिक लाभ के उद्देश्य से किया जाता है । समाजवादी आर्थिक प्रणाली में प्रतिस्पर्धा का पूर्ण अभाव रहता है ।

(स) मिश्रित अर्थव्यवस्था (Mixed Economy) :- मिश्रित अर्थव्यवस्था, अर्थव्यवस्था का वह स्वरूप होता है जिसके अन्तर्गत उत्पादन, विनिमय एवं वितरण के क्षेत्र में निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र दोनों का अस्तित्व होता है अर्थात् दोनों क्षेत्रों का पूंजी व प्रबन्ध संचालन में योगदान होता है । भारत में स्वतन्त्रता प्राप्ति से लेकर 1990 तक सार्वजनिक क्षेत्र की ओर विशेष झुकाव रहा है लेकिन 1991 की नवीन आर्थिक नीति के अपनाने से लेकर वर्तमान तक की अवधि तक निजी क्षेत्र को उच्च प्राथमिकता देना आरम्भ कर दिया है । परन्तु आज भी भारत एक मिश्रित अर्थव्यवस्था के रूप में ही विकसित है।

(द) साम्यवाद (Communis) :- साम्यवाद अर्थव्यवस्था का वह स्वरूप होता है जिसके अन्तर्गत निजी व्यवसाय का कोई अस्तित्व नहीं होता एवं समस्त आर्थिक गतिविधियां राज्य द्वारा संचालित

की जाती है । इसके अन्तर्गत प्रतिस्पर्धा का पूर्णत: अभाव रहता है । चीन तथा क्यूबा को छोडकर अधिकांश साम्यवादी देशों द्वारा इस आर्थिक प्रणाली को छोड़ दिया है ।

इस प्रकार उपरोक्त आर्थिक प्रणालियों- पूंजीवादी, समाजवादी, मिश्रित व साम्यवादी की भिन्नता के कारण आर्थिक वातावरण में भिन्नता दृष्टिगत होती है, क्योंकि आर्थिक वातावरण का निर्माण सम्बन्धित देश मे अपनाई जाने वाली आर्थिक प्रणाली के प्रारूप पर ही निर्भर करती है ।

(2) **प्राकृतिक संसाधन (Natural Resource) :-** प्राकृतिक संसाधन प्रकृति द्वारा प्रदत्त निःशुल्क उपहार होते हैं । इसके अन्तर्गत भूमि, मिट्टी, जल, खनिज, वनस्पति, पहाड़, जलवायु, भौगोलिक परिस्थितियाँ आदि का समावेश होता है । जहाँ एक ओर देश में प्राकृतिक संसाधनों की प्रचुरता अनुकूल होने पर आर्थिक विकास, उत्पादन में वृद्धि, रोजगार में वृद्धि तथा आर्थिक समृद्धि का मार्ग प्रशस्त होता है वहीं दूसरी ओर प्राकृतिक संसाधनों के अभाव के कारण देश में आर्थिक विकास का मार्ग अवरूद्ध हो जाता है ।

यद्यपि भारत में पर्याप्त प्राकृतिक संसाधन है किन्तु प्राकृतिक संपदा का बेहतरीन उपयोग नहीं कर सका । परिणामस्वरूप औद्योगीकरण के क्षेत्र में विकसित देशों की तुलना में भारत बहुत पीछे है । अमरीका, रूस, खाड़ी के देश, पश्चिम के विकसित देश प्राकृतिक संपदा के बल पर ही विकास की ओर तीव्र गति से आगे बढ़े है । अत: प्राकृतिक संसाधनों का आर्थिक वातावरण पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है ।

(3) **मानवीय संसाधन (Human Resourcess) :-** मानवीय संसाधन आर्थिक वातावरण को प्रभावित करने वाला प्रमुख धटक माना जाता है । जनसंख्या में गुणात्मक वृद्धि का आर्थिक वातावरण पर अनुकूल तथा संख्यात्मक वृद्धि का देश पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है । मानव आर्थिक गतिविधियों का साधन एवं साध्य दोनों ही होता है । अर्थात् जिन देशों में स्वस्थ एवं बुद्धिमान मानव साधनों की पर्याप्तता होती है वहां प्राकृतिक संसाधनों का विदोहन करने में सहायता मिलती है । और विकास के अनुकूल आर्थिक वातावरण पनपता है । ठीक इसके विपरीत जिन देशों में श्रम शक्ति का अभाव हो, जनसंख्या रूग्ण एवं कमजोर तथा अकुशल हो तो आर्थिक विकास की गति धीमी हो जाती है । वर्तमान में भारत की जनसंख्या एक अरब से अधिक है । देश में साक्षरता दर लगभग 55 प्रतिशत है । लगभग 45 प्रतिशत जनसंख्या जहां निरक्षर हो वहां तीव्र गति से आर्थिक विकास करना मुश्किल काम हो जाता है ।

(4) **आर्थिक दशाएँ (Economic Conditions) :-** किसी भी देश के आर्थिक वातावरण पर संबंधित देश में व्याप्त आर्थिक दशाओं का भी काफी प्रभाव पड़ता है । इन आर्थिक दशाओं में मुख्य रूप से आर्थिक विकास का स्तर, राष्ट्रीय आय का स्तर, बैंकिंग व्यवस्था, बीमा व्यवस्था व्यापार एवं भुगतान संतुलन की स्थितियां विदेशी ऋण भार करों की संरचना व्यापार चक्र आधारभूत संरचनात्मक सुविधा, बेरोजगारी निर्धनता एवं आर्थिक विषमता को सम्मिलित किया जाता है । उपरोक्त दशाओं के अनुकूल होने से आर्थिक विकास की गति कोसम्बल मिलता है एवं इन दशाओं के प्रतिकूल होने पर देश में विकास का मार्ग अवरूद्ध हो जाता है ।

(5) **आर्थिक नीतियाँ (Economic Policies) -** आर्थिक नीति का तात्पर्य सरकार द्वारा अर्थव्यवस्था के नियमन और नियन्त्रण के संबंध में अपनाई गई नीति से होता है । सरकार आर्थिक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए मौद्रिक नीति, राजकोषीय नीति, विनिमय दर आदि उपकरणों का प्रयोग

करती है । किसी भी देश के आर्थिक वातावरण पर उस देश की सरकार की आर्थिक नीतियों का व्यापक प्रभाव पड़ता है । अत: यह कहना उचित ही होगा कि आर्थिक वातावरण पर आर्थिक नीतियों का व्यापक एवं महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है ।

(6) **सामाजिक एवं सांस्कृतिक दशाएँ (Social and Cultural Conditions): -** आर्थिक वातावरण को प्रभावित करने ताले घटकों में सामाजिक एवं सांस्कृतिक दशाएं महत्वपूर्ण होती हैं । भारत में जातिप्रथा, सामाजिक रीति-रिवाज, परम्पराओं एवं सामाजिक मूल्यों का प्रभाव हमारे आर्थिक वातावरण में स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होता है । इनका प्रभाव यह रहा है कि ऐसे देशों मे आर्थिक पिछड़ापन एवं विकास की धीमी गति देखी जा सकती है ।

(7) **राजनैतिक दशाएँ (Political Conditions) -** राजनैतिक स्थायित्व से देश के तीव्र आर्थिक विकास के लिए अनुकूल परिस्थितियों को जन्म देती है । इसके विपरीत राजनैतिक अस्थिरता से आर्थिक वातावरण में अनिश्चितता उत्पन्न होती हैं । अर्थात् जिन देशों मे राजनैतिक उथल-पुथल होती रहती है वहां आर्थिक वातावरण में भी उतार-चढ़ाव होता रहता है जबकि राजनैतिक स्थायित्व की स्थिति मे कानून एवं सुरक्षा में मजबूती से आर्थिक वातावरण में विकास के लिये अनुकूल परिस्थितियों को जन्मं देती है ।

(8) **वैधानिक दशाएँ (Legal Conditions) :-** वैद्यानिक दशाएँ भी आर्थिक वातावरण को प्रभावित करने वाला प्रमुख घटक माना जाता है । जिन देशों में कानून एवं सुरक्षा की अच्छी व्यवस्था हो एवं व्यक्तियों के क्रियाकलापों को कानून से नियमित एवं नियन्त्रित किया जाता हो तो उस देश का आर्थिक वातावरण विकास के अनुरूप पनपना है । वही दूसरी ओर जिन देशों में कानून एवं व्यवस्था चरमरा रही हो, जिसकी लाठी उसकी भैंस का जंगल राज हो तो आर्थिक वातावरण पर विपरीत प्रभाव डालकर आर्थिक विकास को अवरूद्ध कर देता है ।

(9) **प्रौद्योगिक एवं तकनीकी दशाएँ (Technological and Techanical Conditions):-** वर्तमान परिवेश में कोई भी देश अपने आर्थिक वातावरण को नवीन प्रौद्योगिकी एवं तकनीकी दशाओं से अलग नहीं रख सकता हैं अर्थात् आज आर्थिक वातावरण प्रौद्योगिक एवं तकनीकी पर निर्भर हो गया है । विकसित देशों का उत्पाद नवीन प्रौद्योगिकी के कारण तीव्र गति से बढ़ रहा है जबकि विकासशील देश प्रौद्योगिकी के लिए बहुराष्ट्रीय कम्पनियों और विकसित देशों पर आश्रित है । भारत में शोध एवं अनुसंधान पर बल देने के कारण प्रौद्योगिकी एवं तकनीकी विकास हुआ है किन्तु देश, विकसित देशों की तुलना में काफी पीछे है ।

(10) **मुद्रा बाजार एवं पूंजी बाजार की दशाएँ (Money Market and Capital Market) :-** मुद्रा बाजार एवं पूंजी बाजार की दशाएँ आर्थिक वातावरण को प्रभावित करने वाले प्रमुख घटक अथवा कारक माने जाते है । मुद्रा बाजार के अन्तर्गत अल्पकालीन साख पत्रों एवं पूंजी बाजार में दीर्घकालीन साख पत्रों का लेन-देन किया जाता है । जिन देशों में मुद्रा बाजार एवं पूंजी बाजार विकसित अवस्था में हो आर्थिक वातावरण को अनुकूल बनाती हैं वही दूसरी ओर पिछड़े एवं अविकसित मुद्रा बाजार एवं पूंजी बाजार आर्थिक वातावरण को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करती हैं ।

(11) **अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियाँ (International Condition) :-** अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों को भी आर्थिक वातावरण को प्रभावित करने वाला प्रमुख घटक माना जाता है । वर्तमान परिवेश में आर्थिक वातावरण को समृद्ध बनाने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सहयोग महत्वपूर्ण होता है ।

अन्तर्राष्ट्रीय तनाव, युद्ध एवं घृणा के वातावरण से आर्थिक वातावरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है जबकि इसके विपरीत मधुर अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों तथा अन्तर्राष्ट्रीय शांति से आर्थिक वातावरण विकास के अनुकूल बनता है ।

(12) **पर्यावरणीय संरक्षण (Enviromental Protection) :-** आज सम्पूर्ण विश्व में पर्यावरण प्रदूषण की विकट समस्या उभर कर सामने आई है । वर्तमान में सरकार औद्योगीकरण के समय पर्यावरण संरक्षण के लिये पर्याप्त सावधानी बरत रही है । आम लोगों में भी पर्यावरण संरक्षण के प्रति जागरूकता बढ़ती जा रही है । भारत में अथक राजकीय प्रयासों एवं जनता की जागरूकता के बावजूद भी पर्यावरण प्रदूषण की समस्या बनी हुई है । आर्थिक वातावरण पर पर्यावरण संरक्षण की जागरूकता का भी व्यापक असर दिखाई देता है । यही कारण है कि आज विकसित देशों में पर्यावरण को हानि पहुंचाने वाले उद्योगों के विरूद्ध कठोर नियम बनाए गए हैं ।

(13) **व्यापार चक्र (Bussiness Cycle) :-** व्यापार चक्र भी आर्थिक वातावरण को प्रभावित करने वाला प्रमुख घटक माना जाता है । विकसित देशों की अर्थव्यवस्थाएँ भी आर्थिक उच्चावचनों के दौर से गुजरती रही हैं । इन देशों को भी मंदी या संकुचन, पुनरूत्थान, तेजी एवं सुस्ती के प्रभावों का सामना करना पड़ता है । मंदी में आर्थिक गतिविधियां निम्न स्तर पर चली जाती है जबकि तेजी से आर्थिक गतिविधियां चारों तरफ बहुत तेजी से ऊपर की ओर बढ़ने लगती है ।

(14) **व्यापार संतुलन एवं भुगतान संतुलन (balance of Trade) :-** वर्तमान परिवेश में आर्थिक वातावरण पर व्यापार संतुलन एवं भुगतान का अत्यधिक प्रभाव दिखाई दे रहा है । व्यापार संतुलन के अनुकूल होने से अर्थव्यवस्था की स्थिति काफी मजबूत होती है । विकसित देशों में व्यापार संतुलन के अनुकूल होने से भुगतान शेष की स्थिति सुदृढ़ होती है । विश्व के अधिकांश विकासशील देशों में व्यापार शेष की प्रतिकूलता के कारण अर्थव्यवस्था की स्थिति बिगड़ती जा रही है । इस प्रकार व्यापार संतुलन एवं भुगतान संतुलन भी आर्थिक वातावरण को अनुकूल एवं प्रतिकूल रूप में प्रभावित करने वाला प्रमुख घटक 7 कारक माना जाता है ।

(15) **अन्य दशाएँ (Other Condition) :-** आर्थिक वातावरण पर कई अन्य घटकों का भी प्रभाव पड़ता है जिनका वर्णन निम्नांकित बिन्दुओं के माध्यम से किया जा रहा है:-

(अ) आर्थिक नियोजन (EconomicPlanning) :- आर्थिक नियोजन भी आर्थिक वातावरण को प्रभावित करने वाला प्रमुख कारक माना जाता है । भारत में नियोजन ने आर्थिक वातावरण को बहुत अधिक रूप में प्रभावित किया है । देश का वर्तमान आर्थिक वातावरण आर्थिक नियोजन की ही देन कहा जा सकता है ।

(स) बचत एवं पुंजी निर्माण दरें (Rate of Saving and Capital Farmation) :- किसी भी देश की जनता द्वारा की गई बचत एवं निवेश की ऊंची दरें तीव्र आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त करती है जबकि बचत एवं निवेश की नीची दरें विकास की गति को अवरूद्ध कर देती है । अनुकूल बचत एवं पूंजी निर्माण की दरें आर्थिक वातावरण को विकासोन्मुख बनाने में सहायता करती है जबकि प्रतिकूल दरें विकास की गति को अवरूद्ध कर देती हैं ।

इस प्रकार उपरोक्त आर्थिक वातावरण को प्रभावित करने वाले घटकों / कारकों एवं तत्वों के विस्तृत वर्णन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि आर्थिक वातावरण पर कई घटकों का प्रभाव

पड़ता है । इन घटकों के अनुकूल प्रभाव से आर्थिक वातावरण सुधरता है जबकि प्रतिकूल प्रभावों से आर्थिक वातावरण निर्माण में बाधक सिद्ध होता है ।

1.6 अभ्यास प्रश्न

1. आर्थिक वातावरण से आप क्या समझते हैं? आर्थिक वातावरण को प्रभावित करने वाले घटकों का संक्षेप में वर्णन कीजिये ।
2. आर्थिक वातावरण के अर्थ को समझाइये तथा आर्थिक वातावरण पर प्रभाव डालने तत्वों की व्याख्या कीजिये ।
3. आर्थिक पर्यावरण से आप क्या समझते हैं? अग्राकित तत्व किसी देश के आर्थिक वातावरण को किस प्रकार प्रभावित करते हैं?
   (i) मानवीय संसाधन
   (ii) प्राकृतिक संसाधन
   (iii) आर्थिक प्रणाली
4. आर्थिक वातावरण से आप क्या समझते हैं? व्यवसाय और वातावरण के पारस्परिक सम्बन्धों की व्याख्या कीजिये।
5. आर्थिक वातावरण को समझायें । आर्थिक वातावरण की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिये ।
6. व्यावसायिक वातावरण के महत्व को बताते हुए आर्थिक वातावरण को प्रभावित करने वाले प्रमुख तत्वों की विवेचना कीजिये ।

1.7 संदर्भ पुस्तकें

1. भारतीय अर्थव्यवस्था - रूद्रदत्त एवं सुन्दरम्
2. भारतीय अर्थव्यवस्था - मिश्रा, पुरी
3. व्यावसायिक वातावरण - बी. पी. शर्मा एवं राजीव जैन
4. आर्थिक पर्यावरण - आई. वी. त्रिवेदी एवं एम. के. शर्मा
5. आर्थिक पर्यावरण - ओ पी. शर्मा
6. आर्थिक पर्यावरण - बी. एल. ओझा
7. भारत का आर्थिक पर्यावरण - आई. सी. धींगरा

इकाई-2: सामाजिक एवं सांस्कृतिक वातावरण (Social and Cultural Environment)

इकाई की रूपरेखा :

2.1 पृष्ठभूमि

2.2 सामाजिक एवं सांस्कृतिक वातावरण का अर्थ

2.3 सामाजिक वातावरण के प्रमुख घटक

2.4 व्यवसाय एवं समाज

2.5 व्यवसाय के सामाजिक उद्देश्य

2.6 भारत का सामाजिक वातावरण एवं अल्प-विकास

2.7 व्यवसाय एवं संस्कृति

2.8 निष्कर्ष

2.9 अभ्यास प्रश्न

2.1 सन्दर्भ पुस्तकें

2.1 पृष्ठभूमि

किसी राष्ट्र का व्यावसायिक वातावरण अथवा पर्यावरण उसके चारों ओर व्याप्त परिस्थितियों अथवा पर्यावरण से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता । व्यावसायिक वातावरण के अन्तर्गत किसी मनुष्य द्वारा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति तथा धनोपार्जन के उद्देश्य से सम्पादित की जाने वाली समस्त क्रियाओं को सम्मिलित किया है । मनुष्य द्वारा अपने जीविकोपार्जन के लिए की जाने वाली इन क्रियाओं को आर्थिक क्रियाएँ कहा जाता है । ये आर्थिक क्रियाएँ मनुष्य के चारों ओर व्याप्त भौगोलिक, धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक आदि वातावरण से प्रभावित होती हैं । मनुष्य जब इन आर्थिक क्रियाओं को सम्पन्न करता है उस समय वह अपने समाज, संस्कृति तथा धर्म संबंधी बातों एवं नियमों को भुला नहीं पाता । अत: उसकी आर्थिक क्रियाएँ उसके आस-पास के पर्यावरण से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकती । जहाँ एक और मनुष्य की आर्थिक गतिविधियाँ उसके पर्यावरण से प्रभावित होती है वहीं दूसरी ओर उसकी आर्थिक क्रियाएँ भी पर्यावरण को प्रभावित करती हैं । इसी कारण आज मानव अपनी आर्थिक क्रियाओं की सफलता के लिए पर्यावरण अथवा वातावरण के साथ सामन्जस्य स्थापित करने के प्रयास कर रहा है ।

2.2 सामाजिक एवं सांस्कृतिक वातावरण का अर्थ (Meaning of Social and Cultural Environment])

किसी देश के सामाजिक एवं सांस्कृतिक वातावरण का अर्थ उस देश में व्याप्त अथवा प्रचलित रीति-रिवाजों, परम्पराओं, खान-पान, जातिप्रथा, सामाजिक एवं धार्मिक मूल्यों तथा उसकी सांस्कृतिक विरासत जैसे कला, साहित्य, भाषा, जीवन शैली आदि से है । सामाजिक एवं सांस्कृतिक वातावरण मानव जीवन तथा उससे संबंधित समस्त आर्थिक क्रियाओं को अत्यधिक प्रभावित करते हैं । सामाजिक

मूल्य तथा सांस्कृतिक विरासत व्यक्ति के प्रत्येक निर्णय में झलकता है । यहाँ तक की समाज में फैले हुए अंधविश्वास तथा धार्मिक रुढ़िवादिता का प्रभाव भी मनुष्य के आर्थिक जीवन में स्पष्ट रुप से दृष्टिगोचर होता है । कुछ सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारक भारत जैसे विकासशील राष्ट्रों के विकास में बाधक भी सिद्ध हो रहे हैं । इन बाधक कारकों से राष्ट्र का अल्प विकास ही संभव हो पाया है । आज भी देश को गरीबी, बेरोजगारी तथा निम्न जीवन-स्तर जैसी भयंकर समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है । परन्तु कुछ सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारक मनुष्य के जीवन-यापन में सहायक भी सिद्ध होते हैं ।

2.3 सामाजिक वातावरण के प्रमुख घटक (Main Components of Social Environment)

व्यवसाय एक सामाजिक संस्था है तथा ये समाज से अत्यन्त प्रभावित एवं प्रेरित होता है । एक सामाजिक वातावरण के निम्नलिखित प्रमुख घटक होते हैं -

1. जनसंख्या का विस्तार तथा लिंगानुपात (पुरुष एवं स्त्री अनुपात), जाति, धर्म, शिक्षा, आयु, आय आदि का ढाँचा ।
2. पारिवारिक संरचना - एकल अथवा संयुक्त परिवार
3. सामाजिक दायित्वों का स्तर, पारस्परिक सहयोग एवं संगठन - सहकारी संगठन, निजी संगठन, श्रम संगठन, जनकल्याणकारी संगठन, धार्मिक अथवा सामाजिक संगठन ।
4. व्यक्तियों का कार्य के प्रति रुझान ।
5. सामाजिक मूल्य ।
6. प्रबंधकों के प्रति व्यवहार ।
7. परम्परागत तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण ।
8. रीति-रिवाज ।

2.4 व्यवसाय एवं समाज (Business and Society)

व्यवसाय एवं समाज एक दूसरे की संपूर्णता के लिए आवश्यक है । व्यवसाय के बगैर समाज तथा समाज के बिना व्यवसाय का अस्तित्व संभव नहीं है । दोनों एक दूसरे के पूरक हैं अर्थात् एक दूसरे को प्रभावित करते हैं । समाज द्वारा व्यवसाय को श्रम, भूमि, पूँजी, साहस आदि उत्पत्ति के साधन उपलब्ध करवाये जाते हैं बदले में व्यवसाय समाज को पारिश्रमिक, लगान, ब्याज, लाभांश आदि उपलव्य करवाता है । व्यवसाय समाज को वस्तुएँ तथा सेवाओं के मूल्य को चुकाकर उपभोग व्यय के रुप में व्यवसाय को धन प्रदान करता है । इसी प्रकार व्यवसाय तथा समाज के मध्य धन, वस्तुओं, सेवाओं तथा साधनों का निरंतर आदान-प्रदान चलता रहता है । सामान्यतया व्यवसाय का अर्थ धन अथवा लाभ कमाने के उद्देश्य से सम्पन्न की जानेवाली गतिविधियों से लिया जाता है । व्यवसाय का वाणिज्य एवं निजी लाभ तक सीमितता की पुरानी अवधारणा वर्तमान में तीव्र गति से बदल रही है। आज व्यवसाय को सामाजिक व्यवस्था का एक आवश्यक अंग माना जाता है । व्यवसाय को व्यापक दृष्टिकोण के अनुसार समाज के आर्थिक मूल्यों के विकास के रुप में देखा जा रहा है । प्राचीन काल में व्यवसाय का प्रमुख उद्देश्य वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन द्वारा लाभ कमाना मात्र था । आज

व्यवसाय में केवल समाज को लाभ कमाने के लिए वस्तुओं एवं सेवाओं को उपलव्य करवाना ही नहीं बल्कि राष्ट्र के विकास हेतु संदेशवाहन, यातायात, जनोपयोगी सस्ती अथवा निशुल्क स्वास्थ्य सेवाएँ, जन सम्पर्क संस्थान, सार्वजनिक उपक्रम, सरकारी विभाग आदि लाभ न कमाने वाले संगठनों को भी व्यवसाय में सम्मिलित किया जाता है । आधुनिक विचारधारा के अनुसार व्यवसाय एक विस्तृत अवधारणा है जो केवल व्यापार तथा उद्योग तक ही सीमित नहीं है । आज व्यवसाय को सामाजिक व्यवस्था के एक महत्वपूर्ण अंग के रुप में देखा जाता है । डेविस तथा ब्लोमस्ट्रोम के अनुसार, "हमारा समाज पर्यावरण विज्ञान से सम्बन्धित है । पर्यावरण विज्ञान पारस्परिक मानवीय संबंधों से जुड़ा है। व्यवसाय का विस्तृत अर्थ वर्तमान समय की माँग है क्योंकि व्यवसाय की समाज पर अत्यधिक निर्भरता है । व्यवसाय अपनेआप को समाज से अलग नहीं रख सकता । वर्तमान में संपूर्ण समाज व्यावसायिक पर्यावरण है ।"

संक्षेप में, आधुनिक विचारधारा के अनुसार, व्यवसाय सामाजिक व्यवस्था का एक आवश्यक अंग है । यह सामाजिक उद्देश्यों की प्राप्ति का एक सामाजिक तंत्र (Social Organ) है । इसकी गतिविधियों तथा व्यवहार के दूरगामी प्रभाव होते हैं । एक व्यवसायिक उपक्रम को लाभ केवल सामाजिक मान्यता प्राप्त उद्देश्यों की सफलतापूर्वक प्राप्ति तथा सगाज को संतुष्ट करते हुए कमाना चाहिए ।

2.5 व्यवसाय के सामाजिक उद्देश्य (Social Objectives of Business)

व्यवसाय के विभिन्न सामाजिक उद्देश्यों को सुविधा की दृष्टि से तीन वर्गो में वर्गीकृत किया जा सकता है

1. उपभोक्ता के हितों के संरक्षण संबंधी उद्देश्य;
2. श्रमिकों के हितों की रक्षा संबंधी उद्देश्य;
3. समाज के हितों की रक्षा संबंधी उद्देश्य ।

2.5.1 उपभोक्ता के हितों के संरक्षण संबंधी उद्देश्य

(Objectives which Protect Consumer Interest)

1. **उपभोक्ता को उचित मूल्य पर उचित गुणवत्ता वाली वस्तुएँ अथवा सेवाएँ उपलब्ध करवाना :-**व्यवसायी की समाज के हित में यह जिम्मेदारी बनती है कि वह उपभोक्ता को उसकी आवश्यकता की वस्तु अथवा सेवा उचित मूल्य पर उचित मात्रा में उचित गुणवत्ता के साथ उपलब्ध करवायें । व्यवसायी द्वारा सामान्य लाभ उसके व्यवसाय को सुचारु रुप से चलाने के लिए आवश्यक होता है परन्तु अपने लाभ को अधिक करने के लिए अनुचित मूल्य वृद्धि करना उपभोक्ता के हितों की अनदेखी करना है । साथ ही व्यवसायी का यह प्रथम कर्त्तव्य है कि वह उपभोक्ता को अच्छी गुणवत्ता वाली वस्तुएँ एवं सेवाएँ उपलब्ध करवायें । इस प्रकार वह अपने लाभ के साथ-साथ उपभोक्ता के हितों को भी संरक्षित रख सकेगा ।

2. **उपभोक्ता की माँग को उसकी आवश्यकतानुसार सही समय पर पूरा करना:-**एक व्यवसायी को सदैव यह प्रयत्न करना चाहिये कि वह उपभोक्ता को उसकी आवश्यकता की वस्तु सही समय पर उचित मात्रा में उपलब्ध करवाये । अनेक बार व्यवसायी उपभोक्ता को एक निश्चित समय पश्चात् वस्तु की पूर्ति करने का वचन देता है, परन्तु अधिक लाभ कमाने के उद्देश्य से वह या तो वह

वस्तु किसी अन्य उपभोक्ता को अधिक मूल्य पर दे देता है अथवा अपनी क्षमता से अधिक आदेश लेकर सही समय पर वह अपने उपभोक्ता को वस्तु उपलब्ध नहीं करवा पाता । दोनों ही परिस्थितियों में उपभोक्ता का शोषण होता है ।

3. **उपभोक्ता को वस्तु अथवा सेवा संबंधी पूर्ण जानकारी उपलब्ध करवाना :** सामान्यतया व्यवसायी अपनी उत्पादित वस्तुओं एवं सेवाओं की वह जानकारियाँ उपलब्ध करवाता है जो उपभोक्ता को वस्तु अथवा सेवा के उपभोग करने के लिए प्रेरित करती है । व्यवसायी अपने उपभोक्ता को वस्तु के रखरखाव पर आने वाले खर्च, वस्तु के उपभोग लायक रहने की अनुमानित समयावधि तथा उपभोग करने संबंधी आवश्यक जानकारी उपलब्ध नहीं करवाता । व्यवसायी जब तक उसकी वस्तु नहीं बिकती तब तक उपभोक्ता के पूर्णतया सम्पर्क में रहता है परन्तु वस्तु के बिकने के बाद वह उपभोक्ता के लिए अनुपलब्ध हो जाता है । इस कारण उपभोक्ता को अपनी किसी समस्या का समाधान करवाने हेतु व्यवसायी के चक्कर लगाने पड़ते हैं । उपभोक्ता के हितों के संरक्षण हेतु व्यवसाय जगत का यह उद्देश्य होना चाहिये कि वह उपभोक्ता को वस्तु अथवा सेवा के विक्रय के पश्चात् भी शुल्क सहित अथवा शुल्क रहित आवश्यक जानकारी एवं सेवाएँ उपलव्य करवाये ।

4. **उपभोक्ता की रुचि के अनुसार उत्पादों में परिवर्तन करना:-**व्यवसायी का उपभोक्ता के प्रति एक प्रमुख दायित्व है कि वह उपभोक्ता की रुचि एवं आवश्यकतानुसार समय-समय पर उत्पादों की नई श्रंखला प्रस्तुत करें । इस प्रकार के परिवर्तन से व्यवसायी उपभोक्ता को संतुष्ट रख सकता है ।

2.5.2 श्रमिकों के हितों की रक्षा संबंधी उद्देश्य

(Objectives Which Protect the Interests of Workers)

1. **श्रमिकों को उचित पारिश्रमिक देना :-** किसी भी व्यवसायी का सर्वप्रथम उद्देश्य उसके श्रमिकों को उनके परिश्रम एवं त्याग के अनुसार उचित पारिश्रमिक अथवा मजदूरी देना है । व्यवसायी द्वारा मजदूरों का कम मजदूरी देकर शोषण नहीं किया जाना चाहिए । मजदूरों को जब उनका उचित मेहनताना मिलेगा तो वे अपना कार्य पूरे मन से करेंगें जिससे उत्पादन का स्तर तथा मात्रा में वृद्धि होगी जो फलत: व्यवसाय के लाभ में वृद्धि करेगा ।

2. **श्रमिकों को अच्छी कार्यदशाएँ उपलब्ध करवाना:-** एक व्यवसायी द्वारा श्रमिकों को अच्छी कार्यदशाएँ अथवा सुखद वातावरण उपलब्ध करवायी जानी चाहिये ताकि श्रमिक उत्पादन में अपना पूर्ण योगदान देने के लिए प्रेरित हो सकें । अच्छी कार्यदशाएँ न केवल उत्पादन वृद्धि में सहायक सिद्ध होती हैं बल्कि मजदूर तथा मालिक के मध्य मधुर संबंध स्थापित करती हैं ।

3. **श्रमिकों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना :-** व्यवसायी का अपने श्रमिकों को उचित सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने का भी प्रमुख दायित्व होता है । श्रमिकों को सामाजिक सुरक्षा के अंतर्गत बेकारी, बीमारी, वृद्धावस्था, आकस्मिक आपत्ति एवं दुर्घटना के समय उचित वित्तीय सहायता उपलब्ध करवायी जानी चाहिये । एक श्रमिक अपने अच्छे स्वास्थ्य एवं यौवनकाल में व्यवसाय के हित में अनेक प्रकार के त्याग करता है । अत: व्यवसायी को भी जब वह कार्य करने लायक न रहे तब उसे उचित पेंशन अथवा मुआवजा देकर सामाजिक सुरक्षा उपलब्ध करवानी चाहिये ।

4. **श्रमिकों को समय-समय पर प्रशिक्षित करना:-** व्यवसाय में माँग के अनुसार उत्पादन की प्रक्रिया में समय-समय पर परिवर्तन आवश्यक होते हैं । आधुनिकीकरण के इस युग में नवीन मशीनों के उपयोग के लिये यह आवश्यक है कि व्यवसायी श्रमिकों को प्रशिक्षण दिलवाये ताकि वे अपने आप को व्यवसाय के लिये योग्य सिद्ध कर सकें ।

2.5.3 समाज के हितों की रक्षा संबंधी उद्देश्य

(Objectives which Protect Interests of the Society)

1. **समाज के उपयोग की वस्तुएँ एवं सेवाएँ उपलब्ध करवाना :-** व्यवसायी का एक प्रमुख उद्देश्य है समाज के हित को ध्यान में रखकर वस्तुओं एवं सेवाओं का उत्पादन करना । अनेक बार व्यवसायी केवल उन वस्तुओं एवं सेवाओं का उत्पादन करता है जिसमें लाभ की मात्रा अधिक होती है। कम लाभ वाले व्यवसाय में व्यवसायी सामान्यतया अपनी पूँजी नहीं लगाना चाहते । इसी प्रकार व्यवसायी को उन वस्तुओं का उत्पादन नहीं करना चाहिये जो सामाजिक हित में न हो जैसे शराब, तम्बाकू उत्पाद आदि । इन वस्तुओं के उत्पादन से व्यवसायी को लाभ हो सकता है परन्तु ये वस्तुएँ समाज में बुराइयों को जन्म देती है ।

2. **प्रदूषण नियंत्रण संबंधी उपाय:-** प्राय: सभी प्रकार की वस्तुओं के उत्पादन से कम अथवा ज्यादा प्रदूषण होता है । यह प्रदूषण वायु, जल अथवा ध्वनि संबंधी हो सकता है । व्यवसायी का यह दायित्व बनता है कि वह इन सभी प्रकार के प्रदूषण के नियंत्रण संबंधी उचित उपाय करके समाज के हितों की रक्षा करें ।

3. **समाज को पूँजी का पर्याप्त लाभांश प्रदान करना :-** व्यवसायी को उसकी आवश्यकताओं हेतु समाज के विभिन्न वर्गो द्वारा प्रतिभूतियों, बचतों अथवा अन्य उपकरणों द्वारा धन उपलब्ध करवाया जाता है । अत: व्यवसायी का यह दायित्व बनता है कि वह अपने लाभ में से समाज की विभिन्न आर्थिक इकाइयों को उनके धन के बदले में पर्याप्त लाभांश प्रदान करे । इस प्रकार व्यवसायी समाज की पूँजी तथा उनके प्रयासों का भविष्य में अधिक एवं उचित उपयोग कर सकेगा। उचित लाभांश की प्राप्ति से जनता का निवेश में रुझान बढ़ेगा । जिससे पूँजी निर्माण की दर तीव्र होगी तथा आर्थिक विकास की प्रक्रिया का सुचारु रुप से संचालन संभव हो सकेगा ।

4. **समाज में जनकल्याण संबंधी योजनाओं में योगदान:-** बड़े व्यवसायी समाज में अनेक प्रकार की जनकल्याण संबंधी योजनाओं जैसे शिक्षा, चिकित्सा, स्वास्थ्य आदि क्षेत्र में धन प्रदान करके सरकार को सहायता प्रदान कर सकते हैं । सार्वजनिक क्षेत्र के सीमित संसाधनों द्वारा यह संभव नहीं है कि वह सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था एवं समाज के सभी वर्गो को संतुष्ट कर सकें । निजी क्षेत्र यदि अपने संसाधनों का जनकल्याण में उपयोग करें तो उससे व्यवसाय एवं समाज के मध्य संबंध प्रगाढ़ होंगें।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि यदि व्यवसायी उपभोक्ता, श्रमिकों एवं समाज के विभिन्न हितों की रक्षा करें तो बदले में उसे भी प्रयुक्त एवं अप्रत्यक्ष रुप से सहयोग एवं सुरक्षा प्राप्त होगी । इससे वर्ग संघर्ष का समापन होगा । देश में उत्पादन एवं उत्पादकता बढ़ेगी । समाज में आय एवं रोजगार के स्तर में वृद्धि होगी जिससे वस्तुओं एवं सेवाओं की प्रभावी माँग में वृद्धि होगी । फलस्वरुप, व्यवसाय का विकास एवं विस्तार न केवल राष्ट्रीय स्तर पर बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर संभव हो सकेगा । समाज के सभी वर्गो के हितों की रक्षा करते हु ए यदि व्यवसायी सामान्य लाभ कमाता है तो इससे अर्थव्यवस्था

का विकास होता है परन्तु कीमतों में वृद्धि, उपभोक्ता एवं श्रमिकों का शोषण, अनैतिक तरीकों के उपयोग, कर चोरी आदि द्वारा कमाया गया नाम समाज के लिये अहितकर होता है । अत: लाभ यदि सही तरह से कमाया गया हो तो वह सामाजिक उद्देश्य के विरुद्ध नहीं होता बल्कि वह उद्योग के अस्तित्व तथा समाज के विकास में सहायक होता है ।

2.6 भारत का सामाजिक वातावरण एवं अल्प विकास (Social Environment of India and under Development)

स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय अर्थव्यवस्था का अनेक क्षेत्रों में विकास एवं विस्तार हुआ है परन्तु विकास की गति अनेक कारणों से अपेक्षा से कम रही । भारत ने जितना विकास किया वह उससे कहीं अधिक का हकदार था । हमारे देश में अनेक प्राकृतिक संसाधन एवं पर्याप्त मात्रा में मानव संसाधन होते हुए भी भारत अल्पविकसित राष्ट्रों की कतार में खड़ा है । जो राष्ट्र आज विकसित राष्ट्र हो सकता था, वह कुछ सामाजिक कारणों से अल्प-विकसित होकर रह गया है । भारतीय अर्थव्यवस्था के अल्प-विकास के लिए उत्तरदायी कारणों में बढ़ती जनसंख्या, रूढ़िवादी एवं भाग्यवादी प्रवृत्ति, धार्मिक अन्धविश्वास, जातिप्रथा, क्षेत्रवाद आदि प्रमुख है । इन कारणों के प्रभाव का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :-

1. **जनाधिक्य की समस्या (Poblems of Over Population) :-**भारत ने स्वतंत्रता के पश्चात् काफी मात्रा में आर्थिक विकास किया है लेकिन जनसंख्या में वृद्धि की दर आर्थिक विकास की दर से अधिक होने के कारण विकास होने के बावजूद भी वह नजर नहीं आता । जैसे ही अर्थव्यवस्था के किसी क्षेत्र विशेष में कुछ विकास दृष्टिगोचर होता है, जनसंख्या की बढ़ती बाढ़ उसे बहा ले जाती है । कृषि एवं औद्योगिक विकास के बावजूद लोगों की आर्थिक स्थिति में महत्वपूर्ण सुधार नहीं हो पाता । हरित क्रांति, श्वेत क्रांति एवं औद्योगिक क्रांति के पश्चात् भी आज तक भारत में खाद्यान्न की समस्या, बेरोजगारी की समस्या और गरीबी की समस्या ज्यों की त्यों बनी हुई है ।

2. **रूढ़िवादी एवं परम्परावादी समाज (Tradition Society) :-**भारतीय जनसंख्या का एक बड़ा भाग अत्यधिक रुढ़िवादी एवं परम्परावादी है । यह रुढ़िवादिता ग्रामीण क्षेत्रों में और भी अधिक दिखायी देती है । समाज के रुढ़िवादी एवं परम्परावादी प्रवृत्ति के कारण उनमें प्रगतिशीलता का अभाव है । भारतीय समाज वर्तमान समय में भी अपने कार्यो की सफलता एवं असफलता के लिए अपने भाग्य की जिम्मेदार मानते हैं अपने प्रयासों में कमी को नहीं । इस कारण वह अपने प्रयासों में सुधार न करके भाग्य को कोसते रहते हैं । भारतीय समाज में शिक्षा के प्रसार से इस भाग्यवादी एवं परम्परावादी प्रवृति में कुछ कमी दृष्टिगोचर होने लगी है ।

3. **अशिक्षा (Illiteracy) :-**भारतीय समाज में आज भी अशिक्षा का बोलबाला है । सरकार के अनेक प्रयासों के बाद भी शिक्षा का स्तर बहुत निम्न है । भारतीय जनसंख्या का लगभग 6538 प्रतिशत भाग ही साक्षर है, इसमें भी स्त्रियों का साक्षरता का प्रतिशत 54.16 प्रतिशत है । जिस देश में 35% पुरुष एवं 46% स्त्रियाँ अशिक्षित हो वहाँ तीव्र विकास की कल्पना करना ही गलत है । शिक्षा के निम्न स्तर के कारण लोगों में अपने भला बुरा सोचने की शक्ति नहीं होती तो वह राष्ट्र के विकास के बारे में कैसे सोच सकता है?

4. **धार्मिक अंधविश्वास (Religious superstitious)-** भारत की अधिकांश जनता आज के वैज्ञानिक युग में धार्मिक अंधविश्वासों एवं भाग्य के भरोसे अकर्मण्य है । वह अपनी गरीबी एवं बच्चों की पैदाइश को भगवान -की देन मानता है । अपने धर्मगुरुओं की अनुचित बातों को वह उनका प्रसाद एवं गुरुमंत्र मानता है । इन अंधविश्वासों के कारण वह अपनी शक्ति का प्रयोग सही दिशा एवं उत्पादक कार्यो में नहीं करता । व्यक्ति अपनी प्रगति के बारे में नहीं सोचता, अपने देश के बारे में नहीं सोचता परन्तु अपने धर्म के प्रचार एवं प्रसार के लिए अपना जीवन भी दाँव पर लगा देता है । यह धार्मिक अंधविश्वास ही हमारे देश के विकास के मार्ग की सबसे बड़ी बाधा है ।

5. **पारस्परिक सहयोग का अभाव (Lack of Co-operation) :-**भारत आज भी जाति, वर्ण, सम्प्रदाय, क्षेत्र आदि के आधार पर अनेक वर्गो में विभाजित है । अमीर-गरीब, ऊँच-नीच एवं पारस्परिक द्वेष की भावना के कारण एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को नफरत एवं अविश्वास की नजर से देखता है । विभिन्न वर्गो के कारण व्यक्ति केवल अपने वर्ग विशेष के विकास तक अपने आप को सीमित रखता है । इस संकीर्ण दृष्टिकोण के कारण वह अपने राष्ट्र के विकास में सहायक के स्थान पर बाधक बन जाता है ।

6. **आध्यात्मिक दृष्टिकोण (Intelluctial Approach) :-**भारतीय जीवन में सदैव आध्यात्मिक दृष्टिकोण की प्रधानता रही है । "सादा जीवन उच्च विचार" (Simple Living &High Thinking) के दृष्टिकोण के कारण भारतीय जनता की भौतिकवाद के प्रति अरुचि रही है । भौतिकवाद के अभाव के कारण लोग कंजूस प्रवृति के होते हैं । वह अपने धन को खर्च करने की बजाय एकत्रित करके रखते हैं । जब तक बाजार में वस्तुओं की प्रभावी माँग नही बढ़ती तब तक वस्तुओं के सेवाओं के उत्पादन के पैमाने में वृद्धि नहीं होती । उद्योगों का विकास एवं विस्तार संभव नहीं होता । रोजगार एवं आय के स्तर में वृद्धि नहीं होती, जिसके फलस्वरुप अर्थव्यवस्था का पर्याप्त मात्रा एवं इच्छित दिशा में विकास नहीं होता । भौतिकवाद के कारण पाश्चात्य देशों में तीव्र आर्थिक विकास संभव हो पाया है ।

7. **स्त्रियों की आर्थिक परतन्त्रता (Economic Slavery of women)-** भारतीय समाज में स्त्रियों की आर्थिक परतंत्रता भी हमारी अर्थव्यवस्था के विकास में बाधक रही है । हमारे देश में स्त्रियों को पुरुष की आश्रित माना गया है । स्त्रियों का कार्यक्षेत्र केवल घर की चारदीवारी तक सीमित रखा गया है । इसी कारण से स्त्रियाँ देश के अधिक विकास में भागीदार नहीं बन पायी हैं । वर्तमान में शिक्षा के प्रसार तथा बढ़ती महँगाई के कारण स्त्रियों में चेतना आई है, जिसके परिणामस्वरुप अब स्त्रियाँ नौकरियाँ करने लगी हैं । परन्तु आज भी वे हीन भावना एवं सामाजिक असुरक्षा की भावना से अपने आपको पुरुषों की तुलना में कमजोर पाती

8. **दोषपूर्ण रीति-रिवाज (Defective Rituals)-**भारत में मृत्यु भोज, विवाहोत्सवों, धार्मिक कर्म कास्ट जैसे कार्यो में फिजूलखर्ची अथवा अनुत्पादक व्यय होता है । जिससे देश के आर्थिक विकास को धक्का लगता है । इन अनावश्यक व्ययों के कारण लोगों की बचत क्षमता कम होती है तथा ऋणग्रस्तता बढ़ती है । कम आय तथा ऋणों के बोझ के कारण व्यक्ति अपने परिवार का पालन पोषण सही तरीके से नहीं कर पाता । कुपोषण के शिकार बच्चे बीमार रहते हैं साथ ही धन के अभाव में अशिक्षित रहते हैं । ये बीमार, बेरोजगार तथा कमजोर बच्चे राष्ट्र पर बोझ बनते हैं । अपनी छोटी-छोटी

आवश्यकताओं के लिए चोरी तथा अनैतिक कार्यो में लिप्त हो जाते हैं । जिससे राष्ट्र का विकास बाधित होता है ।

9. **दोषपूर्ण सामाजिक व्यवस्था (Defective social System) :-**भारत में सामाजिक संगठन भी अत्यधिक दोषपूर्ण रहा है, जाति-प्रथा, उत्तराधिकार नियम, संयुक्त परिवार प्रणाली, बाल-विवाह, बहु-विवाह, पर्दा-प्रथा आदि भी देश के आर्थिक विकास में बाधक रहे हैं । इन प्रथाओं के कारण मनुष्य अपने आप को आर्थिक रुप से सक्षम नहीं बना पाता । एक आर्थिक रुप से सम्पन्न व्यक्ति ही देश को सम्पन्न अथवा विकसित बनाने में अपना योगदान दे सकता है । उपरोक्त वर्णित सामाजिक कारणों से आज भारतीय अर्थव्यवस्था का संपूर्ण विकास संभव नहीं हो पाया है । भारत को आज भी अल्प-विकसित राष्ट्रों की श्रेणी में रखा जाता है । इन सभी सामाजिक कुरितियों को शिक्षा के प्रचार एवं प्रसार से परास्त किया जा सकता है । शिक्षा के द्वारा ही हम व्यवसाय को पेशेवर प्रबंधक के रुप में संचालित कर सकते हैं । पेशेवर दृष्टिकोण (Professionalisation) से ही व्यवसाय को अधिक कुशल, प्रगतिशील तथा समाज के प्रति जिम्मेदार बनाया जा सकता है । भारत में शिक्षा एवं पेशेवर प्रबन्धकीय ज्ञान से व्यवसायिक जगत को नये आयाम प्रदान किये जा सकते हैं । प्रबंधकीय एवं तकनीकी शिक्षा से छोटे एवं देशी उद्योगों को स्थानीय स्तर से अंतर्राष्ट्रीय स्तर तक पहुँचा कर देश के विकास की गति को तीव्र किया जा सकता है । वर्तमान समय में भारतीय जनता में जागृति आ रही है, जिससे उनके प्रयासों में वृद्धि हुयी है तथा उनकी प्रतिस्पर्धात्मक शक्ति में वृद्धि हुयी है । आज युवा अपने क्षेत्र, वर्ग, एवं संकीर्ण मानसिकता को त्याग कर विदेशों में अपनी योग्यता का प्रदर्शन कर रहे हैं, राष्ट्र का नाम रोशन कर रहे हैं । इससे राष्ट्र के विकास को गति प्राप्त हुयी है ।

2.7 व्यवसाय एवं संस्कृति (**Bussiness** & **Culture**)

व्यावसायिक पर्यावरण में संस्कृति की एक विशिष्ट भूमिका है । किसी व्यवसाय में उत्पादों का विकास, व्यवसायिक मोलभाव, मानव संसाधन प्रबंध, सामाजिक एवं राजनैतिक पर्यावरण आदि मे सांस्कृतिक आयाम की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है । सांस्कृतिक आयाम एक जटिल घटक है जो बाहर से दिखाई नहीं देता । एक कम्पनी जो किसी अपरिचित सांस्कृतिक वातावरण में अपना व्यवसाय स्थापित करना चाहती है, उसे अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है । यदि इन समस्याओं को दूर करना हो तो कम्पनी को व्यवसाय स्थापित करने से पूर्व अनेक अभ्यास करने चाहिये । अनेक बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ एवं व्यवसायी यह स्वीकार करते हैं कि किसी बहुराष्ट्रीय कम्पनी के लिए सबसे बड़ी चुनौती सांस्कृतिक कारक है । विभिन्न राष्ट्रों की भिन्न संस्कृति बहुराष्ट्रीय कम्पनी की सफलता में अनेक बाधाएँ उत्पन्न करती है । सांस्कृतिक भिन्नता के कारण अनेक अंतर्राष्ट्रीय व्यावसायिक संगठनों को असफलता प्राप्त होती है ।

टेलर के अनुसार संस्कृति के अन्तर्गत शान, विश्वास, कला, नैतिकता, नियम, रिवाज तथा समाज के सदस्य के रुप में मानव द्वारा ली गयी आदतों एवं अन्य योग्यताओं का समावेश किया जाता है ।

किसी राष्ट्र का व्यवसाय उसके सांस्कृतिक वातावरण से अत्यधिक प्रभावित रहता है । व्यक्ति को जो संस्कृति विरासत में मिलती है उसे वह चाहते हुये भी मरते दम तक भुला नहीं पाता । इसी कारण सांस्कृतिक वातावरण का प्रभाव मनुष्य द्वारा उसकी आर्थिक गतिविधियों के चुनाव के समय

भी देखने को मिलता है । व्यक्ति अपने व्यवसाय का चुनाव करते समय अपने पूर्वजों से मिले ज्ञान को आधार बनाता है तथा अपनी इच्छा एवं योग्यता की अनदेखी करता है । अनेक बार वह जिस आदर्श को लेकर चलता है उसके अनुसार अपने आप को ढालने में असक्षम रहता है परिणामस्वरुप उसे असफलता हाथ लगती है । सांस्कृतिक घटक हमारे व्यय करने की प्रवृति एवं बचत एवं पूँजी निर्माण की आदत को भी प्रभावित करता है । पिछड़े देशों में अज्ञानता के फलस्वरुप व्यक्ति अपने पैसे का भोग न करके जीवनभर संचय करता रहता है । परन्तु वह अपने एकत्रित किये गये धन का लाभदायक विनियोग नहीं करता बल्कि अनुत्पादक कार्यो में व्यय करते हैं । इस प्रकार की संस्कृति से न तो व्यक्ति के जीवन स्तर में सुधार आता है और न ही उसकी उद्‌यमशीलता की प्रवृति का विकास होता है । व्यक्ति में तकनीकि इयन एवं समझ होते हुये भी वह अपनी योग्यता का सही स्थान एवं सही समय पर प्रदर्शन नहीं कर पाता ।

किसी राष्ट्र के सांस्कृतिक वातावरण का परिचय कला, साहित्य तथा जीवनशैली से मिलती है । किसी राष्ट्र के सांस्कृतिक वातावरण की झलक उस राष्ट्र के नागरिकों के मानसिक स्तर तथा नजरिये से भी झलकता है । व्यवसाय के प्रति जनता की सोच भी उनके राष्ट्र के सांस्कृतिक वातावरण से भी प्रभावित होती है । सांस्कृतिक वातावरण बाजार की माँग एवं भूमिका की शक्तियों को प्रभावित करके व्यावसायिक निर्णयों पर अपना प्रभाव डालता है ।

सांस्कृतिक वातावरण का व्यवसाय पर अत्यधिक प्रभाव को ध्यान में रख कर ही बड़ी कम्पनियाँ अपने विज्ञापनों में स्थानीय भाषा, उत्सवों एवं जीवन शैली को सम्मिलित करती हैं । इस प्रकार स्थानीय संस्कृति का व्यवसाय में उपयोग करके ये कम्पनियाँ अपने उत्पाद का स्थानीय बाजार में महत्वपूर्ण स्थान बना लेती हैं । इस व्यूह रचना से अनेक बार ऐसा धोखा होता है कि लोग बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के उत्पाद को स्थानीय उपक्रमों का उत्पाद समझने लगते हैं । **हिन्दुस्तान लीवर लिमिटेड. कोका कोला** आदि इस प्रकार के उदाहरण हैं । अनेक राष्ट्र अपनी संस्कृति एवं जीवन शैली का व्यावसायिक उपयोग करके पर्यटन एवं उस पर आधारित अनेक उद्‌योगों का विकास एवं विस्तार करने में सफल हुए हैं भारत भी उनमें से एक प्रमुख राष्ट्र हैं।

भारत के विभिन्न राज्यों में वहाँ के स्थानीय रीति-रिवाज, खान-पान, भाषा एवं उत्सवों के कारण पर्यटन उद्‌योग का विकास हुआ है । राजस्थान उनमें सर्वप्रमुख है । राजस्थान के जोधपुर जैसलमेर आदि ऐसे स्थान हैं जहाँ प्राकृतिक सौन्दर्य के कारण ही नहीं बल्कि वहाँ की संस्कृति के कारण भी पर्यटन उद्‌योग का विकास हुआ है । इसी प्रकार राजस्थान के अनेक राजपरिवारों के ठिकानों का हैरिटेज होटलों के रुप में उपयोग हो रहा है । विदेशी पर्यटक इन राजघरानों की संस्कृति से अभिभूत होकर बास्बार भारत में आने के लिए प्रेरित होते हैं । इसी प्रकार भारत के अनेक धार्मिक स्थलों, रीति रिवाजों, उत्सवों, खान-पान, रहन-सहन का व्यावसायिक उपयोग किया जा रहा है ।

2.8 निष्कर्ष (Conclusion)

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि व्यवसाय पर सामाजिक एवं सांस्कृतिक वातावरण का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है । समाज के बिना व्यवसाय का तथा व्यवसाय के बिना समाज का अस्तित्व संभव नहीं है । अनेक सामाजिक मूल्य तथा सांस्कृतिक कारक हमारे व्यवसाय को लाभ पहुँचाते है तथा व्यवसाय के सहायक सिद्ध होते हैं । परन्तु समाज में व्याप्त जाति, वर्ग, रूढ़िवादी प्रवृति, अशिक्षा आदि किसी राष्ट्र के विकास में बाधा भी डालते हैं । व्यवसाय की वर्तमान समय में अनेक जिम्मेदारियाँ

हैं । आज व्यवसाय केवल वाणिज्य एवं उद्योग तक ही सीमित नहीं हैं । व्यवसाय का उद्देश्य केवल लाभ अधिकतम करना ही नहीं है । आधुनिक समाज में व्यवसाय को लाभ के साथ-साथ अनेक सामाजिक उद्देश्यों को भी प्राप्त करना होता है । कोई भी उद्योग अपने सामाजिक दायित्वों को पूरा किये बिना दीर्घकाल में अस्तित्व में नही रह सकता । व्यावसायिक वातावरण मनुष्य के संस्कार अथवा सांस्कृतिक विरासत से भी प्रभावित होता है । मनुष्य के व्यावसायिक निर्णयों में उससे संस्कारों की भी मुख्य भूमिका रहती है । अनेक बार वह अपने निर्णयों में अपनी योग्यता एवं रुचि से अधिक संस्कृति को महत्व देता है । इस प्रकार प्रत्येक मनुष्य के व्यवसाय का उसके समाज एवं सांस्कृतिक वातावरण के साथ प्रत्यक्ष संबंध होता है ।

2.9 अभ्यास प्रश्न

1. सामाजिक एवं सांस्कृतिक वातावरण का अर्थ क्या है?
2. सामाजिक वातावरण के प्रमुख घटक कौन से हैं?
3. व्यवसाय एवं समाज में क्या संबंध हैं?
4. व्यवसाय के प्रमुख सामाजिक उद्देश्य कौन से हैं?
5. व्यवसाय उपभोक्ता के हितों की रक्षा कैसे कर सकता है?
6. व्यवसाय का श्रमिकों के प्रति क्या दायित्व है?
7. व्यवसाय समाज के हितों की रक्षा कैसे कर सकता है?
8. भारत का सामाजिक वातावरण अल्प विकास का कारण कैसे बना?
9. व्यवसाय एवं संस्कृति में क्या संबंध है?
10. व्यावसायिक निर्णयों पर सांस्कृतिक वातावरण का क्या प्रभाव पड़ता है?

2.10 संदर्भ पुस्तकें

1. भारतीय अर्थव्यवस्था: मिश्र एवं पुरी, हिमालय पब्लिशिंग हाऊस, मुम्बई ।
2. भारत में आर्थिक पर्यावरण: बी.एल. ओझा, रमेश बुक डिपो, जयपुर ।
3. बिजनस इन्वायरमेन्ट : फ्रांसिस चेरनलियम हिमालय पब्लिशिंग हाऊस, मुम्बई ।
4. इण्डियन इकोनोमी : रुद्र दत्त एवं सुन्दरम, एस. चान्द एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली ।

इकाई-3: व्यवसाय का सामाजिक उत्तरदायित्व (Social Responsibility of Bussiness)

इकाई की रूपरेखा :

3.1. उद्देश्य
3.2. विषय परिचय
3.3. सामाजिक उत्तरदायित्व का अर्थ
3.4. व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायित्व के मुख्य तत्व
3.5. व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायित्व : समेकित विश्लेषण
3.6. व्यवसाय का सामाजिक उत्तरदायित्व : द्विपक्षीय क्रिया
3.7. भारत के संदर्भ में व्यवसाय का सामाजिक उत्तरदायित्व
3.8. सारांश
3.9. स्वपरख प्रश्न
3.10. सन्दर्भ ग्रंथ

3.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन हेतु निम्नांकित उद्देश्य निर्धारित किये गये हैः-

1. विद्यार्थियों को सामाजिक उत्तरदायित्व के अर्थ को समझाना ।
2. विद्यार्थियों को व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायित्व की विशेषताओं से अवगत कराना ।
3. विद्यार्थियों को एक व्यवसायी के विभिन्न वर्गो के प्रति दायित्वों का अध्ययन कराना ।
4. वैश्वीकृत अर्थव्यवस्था में व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायित्वों का अध्ययन ।

3.2 विषय परिचय

व्यावसायिक अवधारणा में समय काल एवं परिस्थितियों के कारण तेजी से परिवर्तन दृष्टिगत हो रहा है । आय व्यवसाय की पुरानी अवधारणा "व्यावसाय का उद्देश्य केवल व्यवसाय करना" बदल चुकी है तथा आधुनिक युग मे व्यावसायिक क्रियाएं मात्र लाभ के अधिकतम करने के सामान्य उद्देश्य तक सीमित नहीं रही है । अब व्यावसायिक संस्थाएं मात्र व्यावसायिक संस्थाएं ही नहीं है । सामाजिक संस्था के रूप में जन कल्याण का उद्देश्य भी उनमें निहित होने लगा है । व्यवसाय आज मानव जीवन के सभी पक्षों को छूने लगा है । तथा वर्तमान में हम निगमित समाज (Corporate society) में रहने लगे है । इस कार्पोरेट समाज में समाज अर्थात ग्राहक का अत्याधिक महत्व है । प्रसिद्ध अर्थशास्त्री **पीटर ड्रकर** के अनुसार "व्यवसाय की केवल एक ही परिभाषा है - ग्राहक का निर्माण करना" वर्तमान में व्यवसाय की पुरातन अवधारणा लाभ, के स्थान पर **"सेवा के माध्यम से लाभ"** की नवीन अवधारणा विकसित हुई है । यहीं से व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायित्व की अवधारणा का प्रार्दुभाव होता है ।

3.3 सामाजिक उत्तरदायित्व का अर्थ (Meaning of Social Responsibility)

व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायित्व का सीधा अर्थ समाज के विभिन्न पक्षों यथा: कामगार, कर्मचारी, ग्राहक, आपूर्तिकर्ता, समाज के विविध वर्ग, राष्ट्र स्वाभिमान के प्रति आवश्यकता पूर्ति, कल्याण एवं विकास के दायित्व का पालन करने से लगाया जा सकता है । जब व्यवसायी इन वर्गो के प्रति निहित उत्तरदायित्वों का पालन करता है तो कहा जाता है कि व्यवसाय अपने सामाजिक उत्तरदायित्व का निर्वहन कर रहा है । प्रसिद्ध अर्थशास्त्री **कुन्टज**. एवं **ओ डोनेल** के अनुसार "सामाजिक उत्तरदायित्व अपने स्वयं के हित में कार्य करने वाले व्यक्ति का व्यक्तिगत उत्तरदायित्व है कि वह यह विश्वस्त हो कि सभी अन्य व्यक्तियों के अधिकार तथा न्यायोचित न टकराएँ" स्पष्ट है कि सामाजिक उत्तरदायित्व व्यक्ति का व्यक्तिगत दायित्व है जो स्वयं के हित में व्यवसाय करता है इसके अनुसार व्यक्ति अपना व्यवसाय करते हु ए अन्य के अधिकारों एवं न्यायोचित हितों को हानी नहीं पहुँचाए अर्थशास्त्री बोवेन के अनुसार ' ''व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायित्व से आशय उन नीतियों का अनुसरण करना, वे निर्णय लेना अथवा वे कार्य करना जो हमारे समाज के उद्देश्यों एवं मूल्यों की दृष्टि से वांछनीय हैं ।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि व्यवसाय से आशय सामाजिक उत्तरदायित्व से सामाज के विभिन्न वर्गो ग्राहकों, कामगारों, निवेशकों, माल पूर्तिकर्ताओं, सरकार, राष्ट्र एवं वैश्विक दृष्टि से कर्तव्यों पालन करने से लगाया जा सकता है ।

3.4 व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायित्व के मुख्य तत्व (Main features of Social Responsibility of Bussiness)

व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायित्व के मुख्य तत्व इस प्रकार हैं :-

1. व्यावसायिक क्रियाएं करने वाले प्रतिष्ठान यथा एकल व्यवसायी, साझेदारी व्यवसाय, कम्पनियां, बहु राष्ट्रीय कम्पनियां एवं निगम की क्रियाएं ही व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायित्व की अवधारणा के अन्तर्गत आते हैं ।
2. सामाजिक उत्तरदायित्व की विचारधारा निजी एवं सार्वजनिक दोनों प्रकार के संगठनों पर लागू होती है ।
3. सामाजिक उत्तरदायित्व की विचारधारा स्वहित एवं सामाज के सभी वर्गो के कल्याण से संबंधित है ।
4. सामाजिक उत्तरदायित्व की विचारधारा द्विपक्षीय (Two-Way) है, अर्थात् व्यवसाय समाज के प्रति उत्तरदायी है तो समाज भी व्यवसाय के प्रति उत्तरदायी हो जाता है ।
5. व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायित्व की अवधारणा सामाजिक संतुष्टि पर निर्भर करती है । सामाजिक असंतोष व्यवसाय के लिए हानिप्रद होता है ।

इस प्रकार व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायित्व के अंतर्गत व्यवसाय का समाज के प्रति कर्तव्य तथा समाज का व्यवसाय के प्रति कर्तव्य को शामिल किया जाता है ।

3.5 व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायित्व : समेकित विश्लेषण

व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायित्व का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि व्यवसाय व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र के प्रत्येक पहलू को प्रभावित करता है। व्यवसाय का कर्मचारी, अंशधारी ग्राहक, समुदाय के अन्य लोग, सरकार, आम जनता, वरिष्ठ नागरिक, महिलाएं, बच्चे, कृषक, नौकरी पेशा सहित प्रत्येक अंग के प्रति व्यवसाय उत्तरदायी होता है। व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायक के विविध पक्षों को संबंधित चार्ट के माध्यम से समझा जा सकता है:-

चार्ट - 01

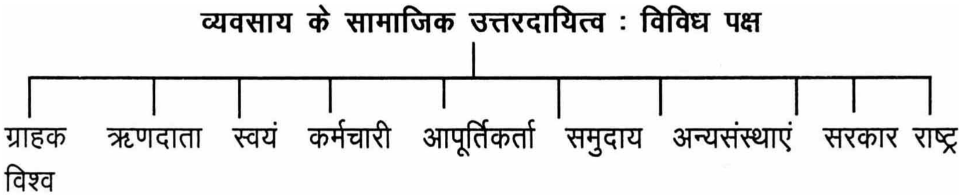

इस प्रकार व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायित्व चार्ट क्रमांक 01 में वर्णित पक्षों के प्रति निर्धारित किया जा सकता है। इन विविध पक्षों के प्रति व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायित्वों को समझने का प्रयास किया जाय। विविध पक्षों के प्रति व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायित्व का विवरण इस प्रकार है :

3.5.1. ग्राहकों के प्रति सामाजिक उत्तरदायित्व

आधुनिक युग में ग्राहक का अत्यधिक महत्त्व है। वर्तमान में ग्राहक बाजार का सर्वस्व माना जाता है। व्यवसाय की सफलता ग्राहक सन्तुष्टी पर निर्भर करती है। इस प्रकार व्यवसाय का प्रथम सामाजिक उत्तरदायित्व उसके ग्राहक के प्रति होता है। संक्षेप में व्यवसाय के अपने ग्राहक के प्रति उत्तरदायित्वों को निम्नांकित बिन्दुओं में व्यक्त किया जा सकता है -

1. श्रेष्ठ गुणवत्ता वाली वस्तुएं उचित मूल्य पर उपलब्ध कराना,
2. मांग के अनुसार नियमित रूप से वस्तुओं की उपलब्धता,
3. अनुचित लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से मिलावट नहीं करना,
4. वस्तु विक्रय हेतु अनुचित विज्ञापन एवं प्रचार का सहारा नहीं लेना,
5. ग्राहक के मनोभावों को समझना तथा उसके साथ सौहार्दपूर्ण संबन्ध स्थापित करना,
6. ग्राहक की शिकायतों का शीघ्र समाधान करना,
7. बाजार अनुसंधान के माध्यम से मांग के अनुसार नवीन वस्तुओं का निर्माण करना,
8. विक्रय उपरान्त सेवा सुनिश्चित करना,
9. माल के वितरण एवं प्रदर्शन हेतु उचित व्यवस्था करना,
10. माल की गुणवत्ता बनाए रखने हेतु उचित पैकिंग करना,
11. ग्राहक के जीवन स्तर एवं सुखों में वृद्धि हेतु प्रयास करना।

व्यवसाय के लिए ग्राहक एक महत्त्वपूर्ण पक्ष है उसके हितों का ध्यान रखना ही व्यवसाय का प्रमुख सामाजिक उत्तरदायित्व है।

3.5.2. व्यवसाय दाताओं के प्रति सामाजिक उत्तरदायित्व

व्यवसाय छोटा हो अथवा बड़ा व्यवसाय के विकास के लिए अतिरिक्त पूंजी की आवश्यकता होती है । यह अतिरिक्त पूंजी क्या के रूप में क्या दाताओं द्वारा उपलब्ध कराई जाती है । अत: व्यवसाय को ऋणदाताओं के प्रति भी सामाजिक उत्तरदायित्व निर्वाह करना होता है । व्यवसाय के ऋणदाताओं के प्रति सामाजिक उत्तरदायित्व निम्नांकित बिन्दुओं में व्यक्त किया जा सकते हैं-

1. ऋण राशि का व्यवसाय विस्तार में ही उपयोग करना,
2. ऋणदाताओं के धन की एवं ब्याज की वापसी यथा समय करना,
3. ऋणदाताओं द्वारा चाही गयी सूचनाएं, सत्य एवं समय पर उपलब्ध कराना,
4. ऋणदाताओं के प्रति सम्मान एवं उनकी प्रतिष्ठा में वृद्धि करने हेतु प्रयास करना, तथा
5. ऋणदाता की ऋण राशि व्याज इत्यादि की गोपनीयता बनाए रखना ।

जिस प्रकार ग्राहक व्यवसाय के केन्द्र बिन्दु है उसी प्रकार ऋणदाता भी व्यवसाय के महत्त्वपूर्ण पक्षकार है उनकी अवहेलना से व्यवसायिक प्रगति प्रभावित होती है । अत: इस पक्षकार के प्रति भी व्यवसाय का सामाजिक उत्तरदायित्व सुनिश्चित होता है ।

3.5.3. स्वयं के प्रति उत्तरदायित्व

व्यवसायी स्वयं भी समाज का अंग होता है अत: व्यवसाय का उत्तरदायित्व अपने स्वयं के प्रति भी होता है । व्यावसायिक उद्देश्यों को पूरा करना व्यवसाय का स्वयं के प्रति उत्तरदायित्व होता है । व्यवसाय का कुशलता पूर्वक संचालित करते हुए निर्धारित लक्ष्य प्राप्त करना व्यवसाय का स्वयं के प्रति व्यावसायिक उत्तरदायित्व है । व्यवसाय अथवा व्यवसायी का स्वयं के प्रति उत्तरदायित्व निम्नांकित बिन्दुओं में विन्यस्त किये जा सकते हैं -

1. व्यवसाय का कुशलता पूर्वक संचालन कर उचित लाभार्जन करना,
2. वस्तुओं एवं सेवाओं का मांग के अनुसार उत्पादन एवं वितरण करना,
3. व्यावसायिक नैतिक मानदण्डों का पालन करते हुए व्यवसाय की प्रतिष्ठा बनाए रखना,
4. व्यवसायी स्वयं की प्रगति के लिए आवश्यक स्वस्थ परंपरा को प्रोत्साहन देना,
5. व्यवसाय के संरक्षण हेतु आने वाली जोखिम के बचाव हेतु आवश्यक कोषो का निर्माण करना,
6. एकाधिकार की प्रवृत्ति को त्याग कर समग्र लाभ का चिन्तन करना, तथा
7. व्यावसायिक नियमों, कानूनों, प्रक्रियाओं का पालन करना ।

3.5.4 कर्मचारियों के प्रति सामाजिक उत्तरदायित्व

व्यवसाय के सुचारू रूप से संचालन, विकास एवं संरक्षण में कर्मचारियों का विशेष स्थान होता है । संस्था का विकास कर्मचारियों की कार्य कुशलता पर निर्भर करता है । अत: व्यवसायी का कर्मचारियों के हित संवर्धन का उत्तरदायित्व निहित होता है । प्रो. बालोपोल कहते है कि व्यवसायी पूंजी लगाता है, किन्तु कर्मचारी सुनहरा जीवन लगाता है । कर्मचारी व्यवसाय का भागीदार होता है अत: व्यवसाय का कर्मचारियों के प्रति सामाजिक उत्तरदायित्व निर्वाह करना आवश्यक हो जाता है । व्यवसाय का कर्मचारियों के प्रति सामाजिक उत्तरदायित्व निम्नांकित बिन्दुओं में दर्शाया जा सकता है -

1. कर्मचारियों को काम के अनुसार उचित वेतन प्रदान करना,
2. कर्मचारियों के साथ स्नेह, सौहार्द एवं मानवीय व्यवहार करना,
3. कर्मचारी का स्वाभिमान एवं प्रतिष्ठा को बनाए रखना,
4. कर्मचारियों के लिए श्रेष्ठ कार्य वातावरण उपलब्ध कराना,
5. कर्मचारियों को उचित सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना,
6. कर्मचारियों के लिए कल्याणकारी कार्यक्रम आरंभ करना,
7. कर्मचारियों को स्थायी एवं सुरक्षित सेवा लाभ प्रदान करना,
8. कर्मचारियों में गुणवत्ता विकास हेतु उचित प्रशिक्षण प्रदान करना,
9. कर्मचारियों की समस्याओं का उचित एवं सम्मानजनक रूप से निदान करना,
10. कर्मचारियों का मनोबल बढाना, कार्य सन्तुष्टी प्रदान करना, तथा
11. कर्मचारियों के श्रेष्ठ कार्य की सराहना करना तथा उन्हें प्रबन्ध में सहभागी बनाना ।

इस प्रकार कर्मचारी व्यवसाय की महत्त्वपूर्ण कड़ी है । व्यवसाय पर उसके हित, कल्याण एवं प्रगति व संतुष्टी का सामाजिक दायित्व उत्पन्न होता है ।

3.5.5. आपूर्तिकर्ताओं के प्रति सामाजिक उत्तरदायित्व

व्यवसाय के सफल संचालन हेतु आपूर्तिकर्ताओं का विशेष महत्त्व है । आपूर्तिकर्ताओं से आशय उन व्यक्तियों से है जो व्यवसाय की क्रय सम्बन्धी आवश्यकताएं पूरी करते हैं । इसमें कच्चा माल, यन्त्र, मशीनें तथा अन्य आवश्यक सामग्री सम्मिलित है । आपूर्तिकर्ताओं की क्रियाशिलता पर व्यवसाय का हित निहित होता है अत: आपूर्तिकर्ताओं के प्रति भी व्यवसाय का सामाजिक उत्तरदायित्व बनता है । आपूर्तिकर्ताओं के प्रति व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायित्व निम्नांकित बिन्दुओं में दृष्टव्य है -

1. आपूर्तिकर्ताओं को वस्तुओं का उचित क्रय मूल्य समय पर भुगतान करना,
2. आपूर्तिकर्ताओं को न्यूनतम मूल्य की गारंटी देकर उन्हें शोषण मुक्त करना,
3. आपूर्तिकर्ताओं के मध्य गुणवत्ता सुधार हेतु आवश्यक स्वस्थ प्रतिस्पर्धा बनाए रखना,
4. आपूर्तिकर्ताओं को नवीन तकनीक एवं उत्पाद लाने हेतु प्रोत्साहित करना, तथा
5. आपूर्तिकर्ताओं को किस्म सुधार, मूल्य नियंत्रण एवं नवीन तकनीक के विकास का अवसर प्रदान करना ।

3.5.6. समुदाय के प्रति सामाजिक उत्तरदायित्व

समग्र मांग उत्पन्न कर व्यवसाय को शीर्ष पर पहुंचाने में समुदाय अथवा समाज का बहुत महत्तपूर्ण स्थान है । व्यवसाय की सामाजिक स्वीकृति आवश्यक है । अत: समाज के प्रति व्यवसाय का सामाजिक उत्तरदायित्व निर्धारित होता है । समुदाय अथवा समाज के प्रति सामाजिक उत्तरदायित्वों को निम्नांकित बिन्दुओं में व्यक्त किया जा सकता है-

1. व्यवसाय करते समय सामाजिक मूल्यों एवं मर्यादाओं का ध्यान रखना,
2. समाज के समग्र मनोभावों, आवश्यकताओं एवं सामाजिक सीमाओं का ध्यान रखना,
3. व्यावसायिक क्रियाओं, विज्ञापनों के माध्यम से समाज के मानदण्डों को हानी नहीं पहुंचाना,

4. समाज की मांग एवं बदलती प्रवृत्ति का ध्यान रखते हुए उत्पाद तैयार करना, तथा
5. समाज के विभिन्न वर्गों के लिए उपयोगी वस्तुओं की आपूर्ति करना ।

व्यवसाय का मुख्य उद्देश्य ही समाज की आवश्यकता पूर्ति करना है । अत: व्यवसाय का यह सामाजिक उत्तरदायित्व बनता है कि वह समाज अथवा समुदाय की आवश्यकता पूर्ति करे । यही व्यवसाय का समाज के प्रति सामाजिक उत्तरदायित्व है ।

3.5.7. अन्य संस्थाओं के प्रति सामाजिक उत्तरदायित्व

एक व्यावसायिक संस्था का अन्य सम्बन्धित संस्था के प्रति भी सामाजिक उत्तरदायित्व निर्धारित होता है । एक व्यावसायिक प्रतिष्ठान का अन्य संस्थाओं के प्रति भी सामाजिक उत्तरदायित्व है जिनमें से प्रमुख उत्तरदायित्व इस प्रकार है-

1. अन्य संस्थाओं के साथ सहयोग एवं सहकारिता बनाए रखना,
2. अन्य संस्थाओं के हितों का ध्यान रखना,
3. अपने व्यावसायिक क्रियाकलापों से अन्य संस्था के प्रति भ्रम उत्पन्न नहीं करना,
4. व्यावसायिक सूचनाओं का आदान प्रदान करना, तथा
5. आपस में मधुर सम्बन्ध एवं विकास हेतु बल देना ।

3.5.8. सरकार के प्रति सामाजिक उत्तरदायित्व

राष्ट्र एवं राज्य सरकारों की अनुमति एवं संरक्षण द्वारा ही व्यवसाय का संचालन सम्भव है। अत: व्यवसाय का राज्य एवं केन्द्र सरकार के प्रति भी सामाजिक उत्तरदायित्व निहित होता है । सरकार के प्रति व्यवसाय का सामाजिक उत्तरदायित्व इस प्रकार निर्धारित किया जा सकता है।

1. सरकार द्वारा पारित नियमों एवं कानून का ईमानदारी से पालन करना ।
2. सरकार द्वारा चाही गयी सूचनाएं समय पर उपलब्ध करना ।
3. व्यवसाय निजी स्वार्थों की पूर्ति हेतु सरकारी संस्थानों का दुरूपयोग नहीं करें ।
4. व्यवसाय का यह दायित्व है कि वह सरकारी नीतियों के क्रियान्वयन में सहयोग करे ।
5. व्यवसाय का यह दायित्व है कि आर्थिक मन्दी के समय निजी हित त्याग कर सहयोग करे ।

3.5.9. राष्ट्र के प्रति व्यवसाय का सामाजिक उत्तरदायित्व

1. व्यवसाय का यह सामाजिक उत्तरदायित्व है कि वह राष्ट्र गौरव राष्ट्र स्वाभिमान को बनाए रखे।
2. व्यवसाय का यह सामाजिक उत्तरदायित्व है कि वह अपने व्यावसायिक हितों की पूर्ति हेतु राष्ट्र स्वाभिमान को ठेस नहीं पहुंचाए ।
3. व्यवसाय का यह उत्तरदायित्व है कि गुणवत्ता पूर्ण वस्तुओं का निर्माण कर राष्ट्र को स्वावलम्बी बनाएं ।
4. राष्ट्र प्रतीक चिन्हों, शहीदों, स्वतत्रतासेनानियो एवं राष्ट्र सम्मान का उपयोग व्यावसायिक हितों के लिए नहीं करे ।
5. राष्ट्र की स्वतंत्रता, एकता एवं अखण्डता को व्यावसायिक लाभ के लिए खंडित नहीं करे ।

3.5.10. सम्पूर्ण विश्व के प्रति व्यवसाय का सामाजिक उत्तरदायित्व

गेट समझोते के पश्चात वैश्विक अर्थव्यवस्था का युग प्रारंभ हुआ । व्यवसाय का क्षेत्र अब अन्तर्राष्ट्रीय हो चुका है । व्यवसाय का दायित्व समग्र हो गया है । व्यवसाय अब राष्ट्र की आवश्यकता पूर्ति ही नहीं करता है, वरन् सम्पूर्ण विश्व की भी आवश्यकता पूरी करना व्यवसाय का सामाजिक दायित्व हो चुका है । सम्पूर्ण विश्व के प्रति व्यवसाय का सामाजिक उत्तरदायित्व निम्नांकित बिन्दुओं से समझा जा सकता है -

1. व्यवसाय का यह दायित्व है कि सम्पूर्ण विश्व में माल आपूर्ति को बनाए रखे ।
2. व्यवसाय का यह दायित्व है कि विश्व स्तर पर स्वस्थ प्रतिस्पर्धा का निर्माण करे ।
3. व्यवसाय का यह सामाजिक दायित्व है कि वह अन्य देशों के साथ ईमानदारी बनाए रखे ।
4. व्यावसायिक क्रियाएं करते समय सम्बन्धित राष्ट्र के नियमों एवं कानून का पालन करें ।
5. व्यवसाय का यह दायित्व है कि व्यावसायिक दायित्वों का निर्वहन करते समय अन्तर्राष्ट्रीय कानून का पालन करे ।
6. व्यवसाय का यह दायित्व है कि भूमंडलीकरण, उदारीकरण तथा निजीकरण का लाभ विश्व स्तर पर उठाए ।

3.6 व्यवसाय का सामाजिक उत्तरदायित्व : द्विपक्षीय क्रिया

व्यवसाय का समाज के प्रति उत्तरदायित्व सुनिश्चित है । सामाजिक उत्तरदायित्व की यह विचारधारा एक पक्षीय न होकर द्विपक्षीय है । अर्थात् व्यवसाय का समाज के प्रति उत्तरदायित्व है तो समाज का भी व्यवसाय के प्रति उत्तरदायित्व बनता है । व्यवसाय समाज की आवश्यकता पूर्ति करता है । रोजगार प्रदान करता है, कल्याणकारी कार्य में सहयोग करता है । सरकार को विविध 'कर' अदा करता है । इस प्रकार सम्पूर्ण सामाजिक संरचना व्यावसायिक क्रियाओं पर निर्भर करती है । अत: यह आवश्यक हो जाता है कि समाज भी व्यवसाय के प्रति अपना उत्तरदायित्व वहन करें । यह सामाजिक उत्तरदायित्व की प्रक्रिया द्विपक्षीय होती है । सरकार समाज के भिन्न-भिन्न वर्ग व्यवसाय में विविध प्रकार से सहयोग करें । ग्राहक संचयी प्रवृत्ति त्यागे । ऋणदाता व्यवसाय को उदार शर्तो पर ऋण प्रदान करें । मंदी काल में ऋण वापसी हेतु दबाव नहीं दे । सरकार भी व्यवसाय के लिए आवश्यक सुविधाएं उपलब्ध कराए, करों में कटौती करें तथा व्यवसाय निर्माण एवं संयंत्र हेतु आवश्यक वातावरण उपलब्ध करावे । जनता व्यवसाय हेतु उचित स्थान उपलब्ध करावें । सरकार सुदृढ़ आर्थिक नीति का निर्माण करें । व्यावसायिक हितों को ध्यान में रखते हुए मौद्रिक एवं राजकोषीय नीतियों का निर्माण किया जाय। वैश्विक स्थिति में हितकारी औद्योगिक नीति का निर्माण किया जाय ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि समाज भी व्यवसाय के प्रति सामाजिक उत्तरदायित्व का निर्वहन करें।

3.7 भारत के संदर्भ में व्यवसाय का सामाजिक उत्तरदायित्व

भारत जैसे जनसंख्या बहुल देश में व्यवसाय का सामाजिक उत्तरदायित्व अत्यधिक महत्वपूर्ण हो जाता है । व्यवसाय का समाज के विभिन्न वर्गो के प्रति हित सवंर्धन का उत्तरदायित्व निर्धारित होता हैं भारतीय व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायित्व की व्याख्या राजनीतिज्ञों द्वारा की गयी सर्वोदय नेता जय प्रकाश नारायण के अनुसार "देशवासियों की सन्तुष्टि हेतु व्यवसाय को अपने दायित्वों की

पूर्ति करनी चाहिए ।" इसी प्रकार प्रसिद्ध उद्योगपति धनश्याम दास बिडला ने कहा कि "यदि व्यवसाय ने देश की जनता के हितों की ओर सर्वोपरि ध्यान नहीं दिया तो उनकी भी कोई परवाह नहीं करेगा। "फेडरेशन आफ चेम्बर आफ कामर्स के पूर्व अध्यक्ष मदन मोहन मंगलदास ने कहा कि "व्यवसायों को अपना उत्तरदायित्व समझ कर उसका पालन करना चाहिए ।" विभिन्न निसरोगियो के माध्यम से भारतीय व्यवसायों को सामाजिक उत्तरदायित्व के प्रति सजग किया गया । व्यवसाइयों के लिए एक आचार संहिता भी बनाई गयी । सन् 1966 में नव सूत्री उचित व्यापार आचार संहिता का निर्माण किया गया ।

इस प्रकार व्यवसाय का सामाजिक उत्तरदायित्व सुनिश्चित करने हेतु विभिन्न प्रयास किये गये । भारत के संदर्भ में व्यवसायों को सामाजिक उत्तरदायित्वों को वहन करने हेतु सजग करने के लिए निम्नांकित सुझाव उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं ।

1. व्यावसायिक संघ आचार संहिता का निर्माण करें ।
2. प्रसिद्ध उद्योगपति इस क्षेत्र में पहल कर व्यवसाइयों द्वारा अनेक दायित्वों का निर्वाह करें ।
3. सेमिनार एवं कार्यक्रमों के माध्यम से व्यवसाइयों को सामाजिक उत्तरदायित्वों की महत्ता बताया।
4. सामाजिक उत्तरदायित्व भली भांति अपनाने वाले व्यवसायों को सम्मानित किया जाय ।
5. सरकार द्वारा समय पर व्यवसाइयों को सामाजिक उत्तरदायित्व निभाने हेतु बाध्य किया जाए।

3.8 सारांश

व्यावसायिक अवधारणा में परिवर्तन हो रहा है । व्यवसायिक संस्थाएं सामाजिक संस्था के रूप में जन कल्याण के भी करने लगी है।

- **सामाजिक उत्तरदायित्व से आशय**

व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायित्व से आशय समाज के विभिन्न वर्गो, ग्राहकों, कामगारों, निवेशकों, आपूर्तिकर्ताओं, सरकार, राष्ट्र एवं संपूर्ण विश्व के प्रति कर्तव्य पालन करने से लगाया जा सकता है ।

- **मुख्य तत्व**
  - व्यावसायिक क्रिया करने वाला व्यवसायी इसकी परिभाषा में आता है ।
  - सामाजिक उत्तरदायित्व की विचारधारा निजी एवं सार्वजनिक संस्थाओं पर लाग होती है ।
  - सामाजिक उत्तरदायित्व की विचारधारा द्विपक्षीय है ।
  - सामाजिक उत्तरदायित्व की विचारधारा, समाजिक संतुष्टि पर निर्भर करती है ।
  - व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायित्व के पक्ष

ग्राहक, ऋणदाता, स्वयं, कर्मचारी, आपूर्तिकरता, समुदाय, अन्य संस्थाएं, सरकार, राष्ट्र एवं विश्व।

- **व्यवसाय का सामाजिक उत्तरदायित्व द्विपक्षीय क्रिया**

व्यवसाय का सामाजिक उत्तरदायित्व यर्थात: द्विपक्षीय किया है । जहां व्यवसाय का सामाजिक दायित्व है वहीं समाज का भी व्यवसाय के प्रति सामाजिक उत्तरदायित्व निहित करता है।

- **भारतीय संदर्भ में व्यवसाय का सामाजिक उत्तरदायित्व**

भारत जैसे देश में जहां जनसंख्या की अधिकता है वहां व्यवसाय का सामाजिक उत्तरदायित्व और भी अधिक महत्वपूर्ण होता है । देश में सामाजिक उत्तरदायित्व विकसित करने हेतु प्रयास किया जाना आवश्यक है ।

3.9 स्वपरख प्रश्न

1. व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायित्व से आप क्या समझते हैं?
2. "व्यवसाय का सामाजिक उत्तरदायित्व द्विपक्षीय क्रिया हैं" व्याख्या कीजिये ।
3. भारतीय व्यवसाइयों के सामाजिक उत्तरदायित्वों का मूल्यांकन कीजिये ।
4. समाज का व्यवसाय के प्रति क्या उत्तरदायित्व है? समझाइये ।
5. व्यवसाय के ग्राहकों एवं कर्मचारियों के प्रति क्या उत्तरदायित्व है? विवेचना कीजिये ।
6. व्यवसाय में व्यक्तिगत लाभ के अतिरिक्त एक व्यवसायी का कुछ सामाजिक दायित्व होता है । ये दायित्व कौन से हैं? समझाइये ।

3.10 संदर्भ ग्रंथ

व्यवसायिक संगठन	-	शर्मा एवं शर्मा, जयपुर पब्लिशिंग हाउस, जयपुर
Principles of Business Management	-	S.A Sherlekar Himalya Publishing House, Bombay
Business of Management	-	Koontz and O' Donnel
Business of Society-		Davis.Blomstrom
Business and Society	-	stainer Cs.

इकाई-4: राजनीतिक वातावरण (Political Environment)

इकाई की रूपरेखा:

4.1 प्रस्तावना

4.2 राजनीतिक वातावरण का आशय

4.3 राजनीतिक वातावरण के घटक

4.4 राज्य की आर्थिक भूमिका

4.5 राजनीतिक वातावरण का महत्त्व

4.6 राजनीतिक प्रणालियां

4.7 निर्णयन प्रक्रिया एवं प्रजातान्त्रिक संस्थान

4.8 राजनीतिक वातावरण के स्त्रोत

4.8.1 मूल अधिकार

4.8.2 नीति निदेशक तत्त्व

4.9 शक्तियों का विभाजन

4.10 नियोजन, आर्थिक विकास एवं वृद्धिशील राजकीय हस्तक्षेप

4.11 राजनीतिक वातावरण एवं आर्थिक सुधार

4.12 स्वपरख प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

एक अर्थव्यवस्था के मुख्यत: चार क्षेत्र होते हैं- घरेलू व्यवसाय, बाह्य क्षेत्र, सरकार तथा ये सभी क्षेत्र समस्त आर्थिक किया-कलापों को प्रभावित करते हैं। इनमें वर्तमान में सरकार क्षेत्र ने सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान ग्रहण कर लिया है। औद्योगिक क्रांति के पश्चात् विश्व में राजशाही की समाप्ति का आरम्भ हो गया और विश्व के अनेक भागों में एक नवीन राजनीतिक व्यवस्था की शुरुआत हुई। फलस्वरूप, विश्व के विभिन्न भागों में जन उत्तरदायी शासन प्रणालियों का उदय हुआ, जिसने आगे चलकर अनेक राजनीतिक आंदोलनों, व्यवस्थाओं, संगठनों, विचारों तथा संस्थानों को जन्म दिया। यही राजनीतिक व्यवस्था आज सरकारों और उनकी शासन प्रणाली को निर्धारित करने वाला प्रमुख घटक है। प्रस्तुत अध्याय का मुख्य उद्देश्य राजनीतिक व्यवस्था, संस्थानों तथा विकास क्रम का आर्थिक पर्यावरण के प्रभावी घटक के रूप में परीक्षण एवं निर्वचन करना है।

4.2 राजनीतिक वातावरण का आशय

इस प्रकार राजनीतिक वातावरण में उन सभी तत्वों एवं कारकों का प्रबन्ध सम्मिलित होता है जो एक व्यावसायिक संगठन या आर्थिक इकाई को प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं। राजनीति एक सार्वभौमिक घटक है जो व्यावसायिक वातावरण को समग्र रूप में प्रभावित करता है। राजनीतिक वातावरण एक व्यापक विचार है जिसमें मुख्य रूप से राजनीतिक आंदोलन, सोच, संगठन, पार्टियां, निर्वाचन प्रणाली तथा सम्बन्धित संगठन सम्मिलित होते हैं, जो व्यावसायिक वातावरण का

एवं उसकी निर्णयन प्रक्रिया को प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से समग्र रूप में प्रभावित करते हैं । राजनीतिक वातावरण एक गतिशील विचार है जिसमें निरन्तरता तथा परिवर्तनशीलता दोनों ही समाहित होते हैं।

4.3 राजनीतिक वातावरण के घटक

राजनीतिक वातावरण में निम्नलिखित तत्त्वों का समावेश होता है

1. **राजनीतिक प्रणाली एवं उसकी विशेषताएं -** प्रत्येक देश की एक विशिष्ट राजनीतिक प्रणाली होती है । यह राजनीतिक प्रणाली उस देश के राजनीतिक वातावरण को एक विशिष्टता प्रदान करती है । यह राजनीतिक प्रणाली राजनीतिक तंत्र की प्रकृति, राजनीतिक दलों, उनके राजनीतिक दर्शन, शक्ति के केंद्रों का सम्मिलित स्वरूप होती है । एक देश के राजनीतिक तंत्र तथा उसकी अवधारणा, सामाजिक मूल्य, सांस्कृतिक धरती, परम्पराएं, सामाजिक एवं आर्थिक संरचनाएं, जिनके आधार पर एक सरकार देश में उपलव्य संसाधनों का आवंटन करती है । इन तत्वों से एक देश में राजनीतिक एवं सामाजिक मूल्य निर्धारित होते हैं जो संसाधनों के अभीष्ट आवंटन में मार्गदर्शक का कार्य करते हैं ।

2. **राजनीतिक संरचना -** राजनीतिक संरचना में राजनीतिक स्थायित्व एवं उसमें निहित जन विश्वास मुख्य है । आर्थिक वातावरण के निर्माण में राजनीतिक स्थायित्व एवं जन विश्वास प्रमुख शर्त है । राजनीतिक तन्त्र के अस्थिर होने से जन विश्वास एवं समर्थन में कमी आती है । यह जनता की राजनीतिक तन्त्र में सक्रिय भावना को सुनिश्चित करता है । बार-बार चुनाव होना, सरकारों का बदलना आर्थिक वातावरण को कमजोर एवं अस्थिर करता है । वास्तव में जन विश्वास एवं जनता का समर्थन ही प्रजातांत्रिक व्यवस्था के निर्माण की प्रथम एवं मूलभूत शर्त है । राजनीतिक वातावरण में राजनीतिक संस्थान तथा उनमें जन विश्वास भी सम्मिलित है । इसमें मुख्यत: राजनीतिक पार्टियां तथा उनके अनुषांगी संगठन, निर्वाचन संस्थान, निर्वाचन प्रणाली, दबाव समूह आदि सम्मिलित होते हैं जो एक राष्ट्र की वित्तीय एवं आर्थिक व्यवस्था को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं ।

3. **राजनीतिक प्रक्रियाएं -** राजनीतिक वातावरण के निर्माण में राजनीतिक दलों का प्रमुख स्थान होता है । इन राजनीतिक दलों की स्वयं की संचालन प्रक्रिया, उनका दर्शन, चुनावों में कोषों की उपलखता जैसे महत्त्वपूर्ण कारक राजनीतिक प्रक्रियाओं को निर्धारित करते हैं । सदन के संचालन में विपक्ष की भूमिका उसका दर्शन, राजनीतिक एवं आर्थिक दिशा एवं दशा के निर्धारण में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं । राजनीतिक, वातावरण व्यावसायिक गतिविधियों को दीर्घकालीन परिपेक्ष्य में प्रभावित करता है । इस सम्बन्ध में यह भी महत्त्वपूर्ण है कि व्यवसाय का संगठन किस प्रकार का है । छोटे संगठन यथा एकल या साझेदारी फर्म की अपेक्षा वृहद संगठन यथा कम्पनी कारपोरेशन या बहु राष्ट्रीय कम्पनियां राजनीतिक वातावरण से अधिक प्रभावित होते हैं ।

4. **राजनीतिक क्षेत्र -** वर्तमान में राजनीतिक वातावरण का क्षेत्र भी एक राष्ट्र की भौगोलिक सीमाओं से भी परे हो गया है । यह न केवल अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक एवं आर्थिक वातावरण को प्रभावित करता है बल्कि स्वयं भी उससे प्रभावित होता हैं । इस सन्दर्भ में विश्व व्यापार संगठन का उदाहरण समीचीन है जिसके गठन के पश्चात अनेक राष्ट्रों की राजनीतिक विचारधारा में आमूल चूल परिवर्तन दृष्टिगत हुए हैं । भारत एवं चीन इसके प्रमुख उदाहरण हैं ।

5. **राजनीतिक गतिशीलता -** राजनीतिक वातावरण एवं व्यवसाय के आपसी सम्बन्ध दोहरी पथ पद्धति पर आधारित हैं जिसमें दोनों ही ग्रहणकर्ता तथा आदाता समय-समय पर होते हैं । व्यवसाय प्रत्यक्ष

एवं अप्रत्यक्ष रूप से राजनीतिक विचारों एवं आंदोलनों से प्रभावित होता है साथ ही वह राजनीतिक विचारधारा को प्रभावित भी करता रहता है ।

4.4 राज्य की आर्थिक भूमिका

एक अर्थव्यवस्था के चार स्तम्भों यथा घरेलू क्षेत्र, व्यवसाय क्षेत्र, बाह्य क्षेत्र तथा सरकार क्षेत्र में से सरकार क्षेत्र ही वर्तमान में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि पूंजीवादी तथा समाजवादी अर्थव्यवस्था दोनों में ही आर्थिक समस्याओं के हल में राज्य की भूमिका महत्त्वपूर्ण हो गयी है । एक अर्थव्यवस्था में राज्य मुख्यत: तीन प्रकार के कार्य निष्पादित करता है:-

- न्यूनतम कार्य
- माध्यमिक कार्य
- क्रियाशील या सक्रिय कार्य

न्यूनतम कार्य राज्य के आधारभूत कार्य होते हैं तथा ये अर्थव्यवस्था की प्रकृति एवं दशा से अप्रभावित होते हैं । कैसी भी राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक व्यवस्था हो, इन न्यूनतम कार्यो को प्रत्येक राज्य को सम्पादित करना ही पड़ता है । कानून एवं व्यवस्था को बनाए रखना तथा देश की सुरक्षा करना राज्य के प्राथमिक दायित्व हैं । आज आर्थिक विकास एवं निवेश काफी हद तक सुस्थिर कानून व्यवस्था एवं सुरक्षा का ही प्रतिफल है । लेकिन आज जब कि कल्याणकारी राज्य की स्थापना की भावना बलवती हो रही है ऐसी स्थिति में राज्य के न्यूनतम कार्यो में अन्य कार्य भी सम्मिलित हो गये हैं । इनमें मुख्य रूप से न्यूनतम आवश्यक जीवन निर्वहन वस्तुओं एवं सेवाओं की उपलब्धता यथा स्वच्छ जल, आधारभूत सेवाएं - सड़क, स्वास्थ्य की उपलखता को सुनिश्चित करना आदि हैं । इसके अतिरिक्त सम्पत्ति अधिकारों की सुरक्षा तथा जन वस्तुओं की सुनिश्चितता भी राज्य के न्यूनतम कार्यो में आते हैं ।

मध्यस्थ कार्य वे कार्य होते हैं जो एक अर्थव्यवस्था में बाजार की अपूर्णताओ को समाप्त करते हैं । इसमें मुख्यत: सामाजिक सुरक्षा सेवाओं का प्रावधान यथा - बीमा, पेंशन आदि, एकाधिकारी प्रवृत्तियों का नियंत्रण तथा बाह्य अपूर्णताओं को समाप्त करना मुख्य है । राज्य का अन्तिम कार्य क्रियाशील या सक्रिय कार्यो के रूप में होता है जिसमें राज्य की भूमिका उत्पेरक के रुप में होती है । ये कार्य मुख्यत: निजी क्रियाओं को समन्वय करने के लिए किये जाते हैं जिसके माध्यम से अर्थव्यवस्था में बाजार का विकास एवं विस्तार होता है । इन कार्यो में सरकार उन कार्यो को सम्पादित करती है जिनसे समाज में सम्पत्ति एवं धन का पुनर्वितरण होता है । इन तीनों कार्यो को सम्पादित करने के लिए राज्य अर्थव्यवस्था में संस्थात्मक ढांचे को विकसित करता है । इस संस्थात्मक संगठन के माध्यम से ही विधानों तथा नियंत्रणों को क्रियान्वित किया जा सकता है । इन संस्थानों में जन विश्वास की मात्रा राज्य की सुदृढ़ता का प्रतीक होती है ।

4.5 राजनीतिक वातावरण का महत्त्व

एक देश का राजनीतिक वातावरण, राजनीतिक पार्टियों की विचारधारा, सिद्धान्त तथा उनकी कार्यप्रणाली, व्यावसायिक वातावरण की निर्धारित करने वाले प्रमुख घटकों में से एक है ।आज जबकि विश्व स्तर पर प्रजातांत्रिक मूल्यों का बोलबाला है ऐसे समय में राजनीतिक नेतृत्व की उपादेयता स्वत: ही बढ़ जाती है । व्यावसायिक वातावरण राजनीतिक उच्चावचनों, परिवर्तनों तथा उथल-पुथल के प्रति

बेहद संवेदनशील होता है एवं राजनीतिक वातावरण आर्थिक क्रिया की दिशा एवं दशा को निर्धारित करता है । अन्तर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय स्तर पर पूंजी एवं श्रम का प्रवाह निवेश की मात्रा तथा तकनीक की गतिशीलता राजनीतिक वातावरण का दशा का परिणाम होते हैं । राजनीतिक वातावरण का महत्त्व निम्नलिखित बिन्दुओं में स्पष्ट किया जा सकता है:- प्रथम सरकार राजनीतिक वातावरण का सर्व प्रमुख अंग है । सरकार की संरचना, संगठन, आर्थिक दर्शन, नीति का निर्धारण राजनीतिक वातावरण से निर्धारित होता है । एक प्रजातांत्रिक राज व्यवस्था मे सत्ताधारी पार्टी व्यवसाय के स्वामित्व, प्रबन्ध तथा आकार को निर्धारित एवं नियमित करती है । सरकार एक देश में निम्नलिखित भूमिका निभाती है:

1. सरकार व्यावसायिक क्रियाओं के नियामक के रूप में,
2. सरकार व्यावसायिक क्रियाओं के प्रवर्तक के रूप में,
3. सरकार उद्यमी के रूप में, तथा
4. सरकार नियोजनकारी भूमिका में ।

1. **सरकार व्यावसायिक क्रियाओं की नियामक के रूप में :** सरकार आर्थिक गतिविधियों की नियामक सर्वोच्च संस्था है जो उद्योग, व्यापार तथा आर्थिक गतिविधियों पर अनेक प्रावधानों के माध्यम से नियमन करती है । इनके माध्यम से सरकार सार्वजनिक क्षेत्र व निजी क्षेत्र, लघु उद्योग तथा वृहत उद्योग, घरेलू व्यापार तथा विदेशी व्यापार की सीमाओं एवं उनके कार्य क्षेत्र को परिभाषित करती है । इसके लिए सरकार प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष नियंत्रणों का सहारा लेती है । प्रत्यक्ष नियंत्रण प्रभाव में अधिक कठोर होते हैं जिसमें सरकार किसी भी उद्योग विशेष को प्रत्यक्ष रूप से तथा मात्रात्मक नियंत्रणों के माध्यम से नियंत्रित कर सकती है । अप्रत्यक्ष नियंत्रणों के अन्तर्गत वित्तीय एवं मौद्रिक उपायों के माध्यम से नियंत्रण स्थापित किया जाता है । प्रत्यक्ष नियंत्रणों में मुख्य रूप से बड़े व्यावसायिक उपक्रमों का नियंत्रण, एकाधिकार प्रवृत्तियों पर अंकुश, सार्वजनिक क्षेत्र का विकास, सामाजिक-आर्थिक संरचना के निर्माण के लिए न्यूनतम जन सेवाओं की स्थापना, बहुराष्ट्रीय कम्पनियों पर नियंत्रण मुख्य है । अप्रत्यक्ष नियंत्रणों में लघु उद्योगों व ग्रामीण उद्योगों को प्राथमिकता, कृषि पर विशेष बल, कीमत पर नियंत्रण, समाज में आय का पुनर्वितरण जैसी नियंत्रणात्मक क्रियाएं मुख्य हैं । विकास के आरम्भिक काल में सरकार की नियंत्रणात्मक एवं नियामक भूमिका स्वाभाविक रूप से अधिक प्रभावकारी होती है, क्योंकि अविकसित अर्थव्यवस्था में बाजार की अपूर्णताए अधिक होती हैं जो बचत एवं निवेश, श्रम की गतिशीलता को बाधित करती हैं तथा जिन्हें प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष नियंत्रणों से ही नियंत्रित किया जा सकता है । कालान्तर में सरकार की यह भूमिका सीमित होती जाती है । भारतीय अर्थव्यवस्था में नियोजन के आरम्भिक काल में सरकार की नियंत्रणात्मक भूमिका अधिक थी, जो वैश्वीकरण की प्रक्रिया में स्वत: ही कम होती चली गई ।

2. **सरकार व्यावसायिक क्रियाओं के प्रवर्तक के रूप में:** सरकार की प्रवर्तक के रूप में भूमिका प्रोत्साहन मूलक होती है । प्रोत्साहन मूलक भूमिका में सरकार की निजी क्षेत्र को प्रोत्साहित करने में विशेष भूमिका होती है । निजी क्षेत्र की शर्मीली पूंजी को उन्मुक्त बाजार में लाना सरकार का मुख्य प्रोत्साहन मूलक कार्य है । इसके लिए सरकार विशेष उपायों के माध्यम से राजकोषीय एवं मौद्रिक प्रोत्साहन दे सकती है । आधारभूत संरचना की स्थापना कर सकती है तथा विशिष्ट प्रावधानों के माध्यम

से निवेश, बचत, आदि को अर्थव्यवस्था के किसी क्षेत्र विशेष में प्रवाहित कर सकती है । प्रत्येक अर्थव्यवस्था में विशिष्ट प्राथमिकता क्षेत्र विद्यमान होते हैं जिनमें सामाजिक एवं आर्थिक कारणों से विशेष प्रयासों की महत्ती आवश्यकता होती है । इन प्रोत्साहन मूलक कार्यो के द्वारा सरकार बाजार अपूर्णताओं को समाप्त करके निवेश के विस्तार प्रभावों को अधिक सुदृढ़ करती है । प्रोत्साहन मूलक कार्यो के आयाम अति विस्तृत हैं जिसमें आधारभूत संरचना का विकास, वित्तीय एवं बैंकिंग सेवाओं का विकास, लघु उद्योगों को प्राथमिकता, समाज के कमजोर वर्गो को प्राथमिकता, शोध एवं प्रविधि का विकास, तकनीकी उन्नयन, आधुनिकीकरण जैसी क्रियाएं सम्मिलित हैं । बजट, सरकार के प्रोत्साहन मूलक भूमिका को प्रकट करने का मुख्य उपकरण है । बजट में विभिन्न उपायों के माध्यम से प्रोत्साहन मूलक उपायों को लागू किया जा सकता है ।

3. **सरकार उद्यमी के रूप में** : कल्याणकारी राज्य की स्थापना में सरकार की भूमिका एक अलग ही हो जाती है । आर्थिक विकास के आरम्भिक चरण में निजी पूंजी अनेक कारणों से सीमितता के आवरण में सिमटी रहती है जिसके कारण अर्थव्यवस्था में आर्थिक एवं सामाजिक असंतुलन उत्पन्न हो जाते हैं । ये असंतुलन सरकार की उद्यमी भूमिका से ही ठीक किये जा सकते हैं । निजी क्षेत्र की लाभ प्रदान करने वाले क्षेत्रों में ही निवेश की प्रवृत्ति, कुछ क्षेत्रों में निवेश का अभाव, ऊंची जोखिम वाले क्षेत्रों में निवेश की तटस्थता, बाजार में निजी एकाधिकारी प्रवृत्ति का होना, उपभोक्ताओं एवं श्रमिकों का शोषण, निजी उद्यमिता का अभाव, विदेशों द्वारा सरकार को ही ऋण आदि ऐसे अनेक कारण हैं, जिनके चलते सरकार को एक उद्यमी का दायित्व निर्वहन करना पड़ता है ।

ऐसे उद्योग जो लोक महत्त्व के होते हैं तथा लोक वस्तुओं का उत्पादन करते हैं, जिनमें अत्यधिक पूंजी विनियोजित होने से जोखिम की मात्रा अधिक होती है, जिन उद्योगों के लिए बंधी हुई (Tied aid) विदेशी सहायता प्राप्त होती है, जिन उद्योगों की उत्पादन अवधि (Gestation period) लम्बा होने के कारण प्रत्याय दर कम होती है, जिन उद्योगों को देश में संतुलित विकास की अवधारणा से स्थापित किया जाता है उन उद्योगों में सरकार एक उद्यमी की भूमिका निभाती है । भारत में आर्थिक विकास का आधारभूत ढांचा सरकार की उद्यमशीलता के कारण ही सम्भव हुआ है तथा उदारीकरण के पश्चात् भी अर्थव्यवस्था के अनेक क्षेत्र ऐसे हैं जहां सरकारी एवं निजी क्षेत्र विद्यमान हैं लेकिन अभी भी आम जनता के मानस में सरकारी उत्पादन के प्रति अधिक विश्वास विद्यमान है । नवीन आर्थिक नीति के अन्तर्गत भारतीय अर्थव्यवस्था में सरकार की उद्यमशीलता की भूमिका को सीमित कर दिया गया है ।

4. **सरकार की नियोजनकारी भूमिका : लियोनल रॉबिन्स के शब्दों में,** "नियोजन हमारे युग की समस्त आर्थिक समस्याओं के निराकरण की एक अचूक रामबाण औषधि है ... कल्याणकारी राज्य के आदर्श की प्राप्ति का एक मात्र साधन है । "उनके अनुसार नियोजन से अभिप्राय "राज्य द्वारा उत्पादन के साधनों पर किसी न किसी प्रकार का नियंत्रण है ।" वस्तुत: विश्व के समस्त राष्ट्रों में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में आर्थिक नियोजन विद्यमान है क्योंकि वित्तीय एवं भौतिक संसाधनों की सीमितता के कारण नियोजन एक राष्ट्रीय आवश्यकता बन गया है । इस प्रकार एक राज्य की भूमिका न केवल राष्ट्रीय स्तर पर वरन् अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर नियोजनकारी हो गई है । भारतीय योजना आयोग के अनुसार

"आर्थिक नियोजन साधनों के संगठन की वह विधि है जिसके द्वारा संसाधनों का अधिकतम लाभप्रद उपयोग निश्चित सामाजिक लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु किया जाता है ।"

नियोजन वस्तुतः एक व्यापक दृष्टिकोण आधारित एक सतत् प्रक्रिया है जिसमें अनेक चरणों का समावेश होता है और वह राज्य के कुशल एवं दूरदर्शी नेतृत्व के द्वारा ही सम्पादित की जा सकती है । नियोजन में राज्य की भूमिका इस प्रकार है:-

1. राज्य द्वारा राष्ट्र के समस्त प्राकृतिक, भौतिक, वित्तीय तथा मानवीय संसाधनों तथा उनकी सापेक्षिक उपयोगिता का आकलन ।
2. राष्ट्र के संसाधनों के सदुपयोग हेतु संतुलित नियोजन का निर्माण ।
3. राष्ट्र एवं समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप प्राथमिकताओं का निर्धारण तदनुरूप उद्देश्यों व लक्ष्यों का निर्धारण।
4. प्राथमिकताओं, उद्देश्यों एवं लक्ष्यों के अनुरूप संसाधनों का चरणबद्ध सृजन एवं आवंटन ।
5. उन कारकों एवं तत्त्वों की पहचान जो नियोजन प्रक्रिया को बाधित कर सकते हैं । इन कारकों के प्रभाव को सीमित करना ।
6. राष्ट्रीय नियोजन, क्रियान्वयन व समन्वय मशीनरी की स्थापना करना जो नियोजन को चरणबद्ध रूप में क्रियान्वित करेगी ।
7. नियोजन प्रक्रिया को सतत् मूल्यांकन, निरीक्षण तथा पुनरावर्तन के लिए सुदृढ़ तंत्र की स्थापना।

वस्तुतः आज प्रजातान्त्रिक शासन व्यवस्था में प्रत्येक राष्ट्र की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक व्यवस्थाएं इतनी अधिक जटिल हो गयी है कि कोई भी सरकार नियोजन के अभाव में राष्ट्र का संचालन ही नहीं करती है तथापि यह नियोजन भिन्न-भिन्न राष्ट्रों में प्रेरित नियोजन, स्वायत नियोजन, केन्द्रीयकृत नियोजन या प्रजातान्त्रिक नियोजन के रूप में अलग-अलग हो सकता है ।

द्वितीय : आर्थिक वातावरण के निर्माण में राजनीतिक स्थायित्व एक महत्वपूर्ण घटक है । आर्थिक एवं व्यावसायिक गतिविधियां वहां फलती फूलती हैं जहां राजनीतिक स्थायित्व होता तथा सरकार की आर्थिक नीतियों को जन समर्थन प्राप्त होता है । राजनीतिक स्थायित्व दीर्घकालीन निवेश का महत्वपूर्ण तत्त्व है ।

तृतीय: भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में आर्थिक वातावरण के सन्दर्भ में कल्याणकारी राज्य की अवधारणा अति महत्वपूर्ण है । भारतीय संविधान एवं राज व्यवस्था का आधार ही कल्याणकारी राज्य की स्थापना है जिसके लिए संविधान में विशिष्ट प्रावधानों की व्यवस्था की गई है । ये विशिष्ट प्रावधान सरकार को विशेष नियंत्रणात्मक एवं नियामक शक्तियां एवं अधिकार प्रदान करते हैं । व्यावसायिक एवं आर्थिक गतिविधियां इसके विपरीत कार्यान्वित नहीं की जा सकती हैं । कल्याणकारी राज्य की अवधारणा सरकार के लिए विशिष्ट दायित्वों को निर्धारित करती है । साथ ही इन दायित्वों को पूरा करने के लिए विशेष कार्य करने के लिए मार्गदर्शन करती है ।

कल्याणकारी राज्य की स्थापना एक ऐसी अवधारणा है जिसमें व्यक्ति एवं समाज के लिए एक न्यूनतम जीवन स्तर सरकार के सामाजिक दायित्व के रूप में सुनिश्चित किया जाता है । भारत जैसे देश में जहां अभी भी जनसंख्या का एक बड़ा भाग गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन करता है वहां कल्याणकारी राज्य की विचारधारा स्वतः ही महत्त्वपूर्ण हो जाती है ।

चतुर्थ : आज वैश्वीकरण का युग है । ऐसी स्थिति में आर्थिक वातावरण के निर्माण में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों, संधियों एवं एक राष्ट्र की अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति का सर्वप्रमुख स्थान होता है ।

एक देश की राजनीतिक विचारधारा उसकी अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति के निर्धारण में महत्त्वपूर्ण कारक है । घरेलू राज व्यवस्था की अन्तर्राष्ट्रीय स्वीकार्यता राष्ट्र के प्रति शेष विश्व के दृष्टिकोण को निर्धारित करती है ।]

4.6 राजनीतिक प्रणालियां

राजनीति मूलत: एक प्रक्रिया है जो सरकार की सत्ता के माध्यम से आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक असंतुलनों में सुधार, परिवर्तन या उनका निर्धारण कर सकती है । वस्तुत: राजनीति आज अन्तर्विरोधों को संतुलित करने की प्रक्रिया बन गई है । राजनीतिक सत्ता दो रूपों में परिलक्षित हो सकती है:

प्रथम: अधिकारात्मक राजनीतिक प्रणाली जिसमें अन्तर्विरोधों को स्थापित सत्ता या शक्ति केन्द्र के नियमों, नियंत्रणों तथा आदेशों को लागू करके निष्पादित या समाप्त किया जाता है । यह सत्ता एकीकृत, व्यैक्तिक (राजा) या समेकित (राजनीतिक पदों) के रूप में हो सकती है । इस सत्ता में निर्णयन में अन्य तत्त्वों की भागीदारी अति सीमित होती है तथा लिए गये निर्णयों का विरोध भी अल्प होता है । विश्व में प्रजातान्त्रिक मूल्यों के विकास के कारण इन सकलात्मक शासन प्रणालियां का प्रचलन कम होता जा रहा है ।

द्वितीय. प्रजातांत्रिक राजनीतिक प्रणाली जिसमें विरोधों या अन्तर्विरोधों का विवेकपूर्ण विचार-विमर्श के माध्यम से हल निकालने का प्रयत्न किया जाता है तथा अन्तिम हल सभी की सहमति से या बहुमत से निकाला जाता है तथा अधि संख्य या सभी को स्वीकार्य होता है । चूंकि निर्णयन प्रक्रिया में भाग लेने वालों की संख्या अत्यधिक होती है अत: निर्णयन प्रक्रिया को चुने हुए प्रतिनिधियों की प्रतिभागिता के द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से निष्पादित किया जाता है ।

4.7 निर्णयन प्रक्रिया एवं प्रजातान्त्रिक संस्थान

प्रजातान्त्रिक राजनीतिक प्रणाली को विकसित एवं सुस्थापित करने में प्रजातान्त्रिक संस्थानों की अहम् भूमिका होती है । ये संस्थान जन विश्वास की अभिव्यक्ति का रूप होते है तथा सरकार की सुस्थापना एवं स्थिरता हेतु अनिवार्य रूप से वांछनीय होते है । आर्थिक वातावरण के सन्दर्भ में ये संस्थान वाणिज्यिक गतिविधियां को सुचारू रूप से सम्पादित करते हैं । ये प्रजातांत्रिक संस्थान निम्नलिखित रूप में हो सकते हैं:-

1. विभिन्न राजनीतिक दल- राजनीतिक प्रक्रिया के लिए ।
2. मतदाता आधार स्वतन्त्र एवं निष्पक्ष चुनाव- निष्पक्ष सरकार की स्थापना के लिए ।
3. स्वतन्त्र एवं निष्पक्ष न्यायिक प्रणाली- मूलभूत अधिकारों की रक्षा हेतु ।
4. विचारों की अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता- व्यैक्तिक विकास के लिए ।
5. दबाव समूहों की उपस्थिति- नियन्त्रण एवं संतुलन के लिए ।
6. राजनीतिक दलों का स्वतन्त्र संगठन एवं संवहन. सलाह. शिक्षा. मोलभाव. स्पष्टीकरण. समझौते की स्वाभाविक प्रक्रिया- सर्व स्वीकार्यता के लिए ।
7. अल्पसंख्यों की भावनाओं का सम्मान- आपसी समझदारी एवं बंधुता के विकास हेतु ।

ये सभी संस्थान संयुका रूप से एक राज्य की सरकार को प्रजातान्त्रिक स्वरूप प्रदान करते हैं । सरकार के कार्य की समीक्षा संसद के द्वारा की जाती है । संसद सम्पूर्ण जनता का प्रतिनिधित्व करती हैं तथा कानूनी या नियामक प्रस्तावों को स्वीकृत या अस्वीकृत करती है । साथ ही कानूनों को लाग करने वाली कार्यकारी सत्ता को नियन्त्रित करती है । इस सम्पूर्ण व्यवस्था में प्रतिनिधित्व का प्रवाह जनता से सरकार की ओर तथा दायित्वों का प्रवाह सरकार से जनता की ओर होता है, ताकि निर्णयन प्रक्रिया में नियंत्रण एवं संतुलन को स्थापित किया जा सके । इन नियंत्रणों एवं संतुलनों को स्थापित करने में विपक्ष, सरकार तथा द्वि सदनात्मक व्यवस्था की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है ।

4.8 राजनीतिक वातावरण के स्त्रोत

भारतीय संविधान, राजनीतिक शक्ति के उद्भव का सर्वप्रमुख स्त्रोत है । भारतीय संविधान में प्रस्तावना, मूलभूत अधिकार तथा नीति निदेशक तत्व राजनीतिक वातावरण के निर्माण की रूपरेखा तय करते हैं । भारतीय संविधान केन्द्र एवं राज्य सरकारों के आर्थिक अधिकार एवं दायित्वों को स्पष्ट रूप से विभाजित एवं परिभाषित करता है ।

प्रस्तावना : प्रस्तावना प्रत्येक राष्ट्र के संविधान का निर्देशक दर्शन होता है जो राज व्यवस्था की आस्थाओं एवं प्रेरणाओं के मूलभूत आदर्शो को निर्धारित करता है । भारतीय संविधान की प्रस्तावना के अनुसार- हम भारत के लोग भारत को सम्प्रभुता सम्पन्न समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक गणतन्त्र के रूप में स्थापित करते हैं जो सभी नागरिकों के लिए-

न्याय	–	सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक ।
स्वतन्त्रता	–	विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास तथा उपासना की ।
समानता	–	प्रतिष्ठा एवं अवसर की ।
भाईचारा	–	व्यक्ति की गरिमा तथा राष्ट्र की एकता एवं अखंडता को प्रोत्साहित एवं सुनिश्चित करने वाली बंधुता ।

को निरूपित करता है । ये बातें संविधान की मूल भावनाएं हैं जो सिद्धान्तः राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक एवं आर्थिक मूल्यों को स्थापित करती हैं । सरकार का प्रत्येक कार्य इन मूल्यों की स्थापना, उनके विकास एवं विस्तार के लिए होगा । राज्य की कार्यप्रणाली में न्याय, स्वतन्त्रता, समानता तथा भाईचारा मुख्य आधार होंगे ।

4.8.1 मौलिक अधिकार

भारतीय संविधान के भाग तीन में मूलभूत अधिकारों का उल्लेख किया गया है जो प्रत्येक नागरिक को व्यक्तिगत रूप से तथा सामूहिक रूप से जीवन व अवसर की मूलभूत स्वतन्त्रता प्रदान करते है यद्यपि यह स्वतन्त्रता सापेक्ष है निरपेक्ष नहीं । ये सभी अधिकार एक सभ्य समाज में व्यैक्तिक विकास के लिए नितान्त वांछनीय है । इन मौलिक अधिकारों का सार यह है कि राष्ट्र के भौतिक संसाधनों का यथा सम्भव समानता के आधार पर न्यायपूर्ण आवंटन होगा तथा आर्थिक संसाधनों एवं शक्ति का संकेन्द्रण कुछ ही वर्गो तक सीमित नहीं होगा । मौलिक अधिकार 6 है जो इस प्रकार हैं:

1. समानता का अधिकार,

2. स्वतन्त्रता का अधिकार,
3. शोषण के विरूद्ध के अधिकार,
4. धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार,
5. सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक अधिकार, तथा
6. संवैधानिक उपचार का अधिकार ।

पूर्व में सम्पत्ति का अधिकार भी मौलिक अधिकार था जिसे 44वे संविधान संशोधन के द्वारा समाप्त कर दिया गया । सम्पत्ति का अधिकार आज कानूनी अधिकार है ।

इन मौलिक अधिकारों द्वारा अनेक राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक अधिकारों का स्वत: ही सृजन होता है । समानता का अधिकार आर्थिक अवसरों में समान भागीदारी का आधार प्रस्तुत करता है जिसमें धर्म, जाति, लिंग, स्थान के आधार पर रोजगार अवसरों में भेदभाव नहीं किया जा सकता है । यद्यपि कल्याणकारी राज्य की स्थापना की अवधारणा पर इन पर आरक्षण के रूप में सीमाएं हैं।

स्वतन्त्रता का अधिकार पेशे, व्यवसाय, आर्थिक क्रिया, व्यापार की गतिशीलता की स्वतन्त्रता प्रदान करता है । शोषण के विरूद्ध अधिकार आर्थिक शोषण के ऊपर अंकुश लगाता है । साथ ही यह मानव तस्करी आदि घटनाओं को नियंत्रित करने में सहायक होता है ।

इन मौलिक अधिकारों को भारतीय संविधान का मेरुदंड कहा गया है क्योंकि ये अधिकार प्रत्येक नागरिक के आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक विकास को सुनिश्चित करते हैं । यद्यपि राज्य सरकारें जनहित में मौलिक अधिकार को नियंत्रण करने के लिए स्वतन्त्र हैं । इसी कारण से आज भारत में आवश्यकता से अधिक वैधानिक नियन्त्रण विद्यमान हैं और इन्हें उद्यम तथा व्यवसाय के विकास में बड़ी बाधा माना जाता है और अनेक परिस्थितियों में सरकार की भूमिका प्रवर्तक से परिवर्तित होकर नियन्त्रक की हो गयी है । अनेक राज्य सरकारों की नियंत्रणकारी नीतियां आर्थिक सीमितता को नियंत्रित कर रही है । उदाहरण के लिए कृषि उत्पादों के विपणन पर अनेक आर्थिक नियंत्रण विद्यमान हैं ।

कल्याणकारी राज्य की अवधारणा वास्तव में आर्थिक विचार की बजाय राजनीतिक विचार अधिक हैं । कल्याणकारी राज्य की स्थापना की अवधारणा सरकार के उत्तरदायित्वों को एक नये रूप से पुन: परिभाषित करती है जिसकी शुरूआत द्वितीय विश्व युद्ध के बाद हुई । वस्तुत द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् अर्थव्यवस्थाओं के सामाजिक एवं आर्थिक पुनर्निर्माण में राजनीतिक सोच एवं दृष्टिकोण की भूमिका अधिक हो गई । ये चाहे भारत की नियोजित विकास की परिकल्पना हो या वियतनाम् का संघर्ष या चीन की विकास यात्रा है ।

कल्याणकारी राज्य की स्थापना के **तीन आधार होते हे- शोषण से मुक्ति. भय से मुक्ति तथा अति आवश्यकता से मुक्ति ।** वास्तव में कल्याणकारी राज्य वह शासन व्यवस्था है जिसमें राज्य प्रत्येक नागरिक के आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक उत्थान के लिए समान तथा सर्वांगीण अवसर प्रदान करता है । इस कल्याणकारी राज्य की स्थापना के लिए सरकार दो प्रयास मुख्य रूप से करती है: प्रथम सामाजिक सुरक्षा की स्थापना करना तथा द्वितीय व्यैक्तिक या पारिवारिक इकाईयों को न्यूनतम आर्थिक अंशदान को सुनिश्चित करना, चाहे उनका बाजार संरचना में योगदान शून्य भी क्यों न हो।

4.8.2 भारतीय राज्य नीति में नीति निदेशक तत्त्व

भारत में कल्याणकारी राज्य की स्थापना के विचार भारतीय संविधान के नीति निदेशक तत्त्वों में समाहित हैं । ये नीति निदेशक तत्त्व राज्य को उसके क्रियाकलापों के लिए एक विशिष्ट निर्देश देते हैं । ये सभी नीति निदेशक तत्त्व विधायिका और कार्यपालिका दोनों पर मार्गदर्शी अंकुश की तरह कार्य करते हैं, यद्यपि इन्हें उच्चतम न्यायालय के माध्यम से लागू नहीं कराया जा सकता है । लेकिन शासन एवं विधि का आधार बनाने में इनको लागू करना राज्य का कर्त्तव्य होगा । {अनुच्छेद-37}

नीति निदेशक तत्त्वों की व्याख्या अनुच्छेद 36 से 51 के अन्तर्गत की गई है । नीति निदेशक तत्त्वों के आर्थिक निहितार्थ निम्न प्रकार हैं:-

1. सभी संस्थान न्यायिक, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक सुरक्षा एवं संरक्षा की अवधारणा को मजबूत करने के लिए कार्य करेंगे । {अनुच्छेद-38 (2)}
2. राज्य व्यैक्तिक एवं सामूहिक आर्थिक असमानता को समाप्त करने के प्रयास करेगा तथा विशिष्ट अवसरों का सृजन करेगा । {अनुच्छेद-38(2)}
3. राज्य निम्नलिखित प्रयासों के द्वारा कल्याणकारी राज्य की स्थापना को बढ़ावा देगा । {अनुच्छेद-39} :

(i) सभी नागरिकों को जीविकोपार्जन का समान अधिकार होगा ।

(ii) राष्ट्र के संसाधनों के लिए स्वामित्व, नियंत्रण एवं वितरण इस प्रकार किया जायेगा वे सम्मिलित हितों में वृद्धि करें।

(iii) आर्थिक प्रक्रिया एवं तंत्र का संचालन इस प्रकार किया जायेगा जो आर्थिक शक्ति का संकेन्द्रण एवं एकाधिकारी प्रवृति को नियंत्रित करें ।

(iv) सभी को समान कार्य के लिए समान वेतन की व्यवस्था होगी ।

(v) बाल श्रम पर प्रतिबन्ध रहेगा तथा श्रम की महत्ता स्थापित की जायेगी ।

4. राज्य न्याय प्रदान करने वाले तन्त्र को स्थापित करेगा तथा आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग के लोगों को न्याय प्रदान करने में सहयोग करेगा {अनुच्छेद-38ए}
5. स्वराज की स्थापना के लिए राज्य पंचायती राज्य तन्त्र को विकसित एवं सुदृढ़ करेगा । {अनुच्छेद-40}
6. राज्य समाज के कमजोर तबकों जैसे बेरोजगार, बुजुर्ग, बीमार तथा अपंगों के लिए कार्य, शिक्षा तथा सहायता की व्यवस्था करेगा । {अनुच्छेद-41}
7. मातृत्व के लिए राज्य मानवीय एवं न्यायिक दशाओं को स्थापित करेगा । {अनुच्छेद-42}
8. राज्य एक उचित विधान या आर्थिक संगठन के माध्यम से सभी श्रमिकों के लिए एक न्यूनतम मजदूरी, न्यूनतम जीवन यापन स्तर भुगतान को सुनिश्चित करेगा तथा ग्रामीण क्षेत्रों में कुटीर उद्योगों एवं सहकारिता को प्रोत्साहित करेगा। {अनुच्छेद-43}
9. राज्य औद्योगिक संस्थानों में प्रबन्ध में श्रमिक सहभागिता को प्रोत्साहित करेगा ।
10. राज्य समाज के कमजोर वर्गो विशेषत: अनुसूचित जाति एवं जन जाति के लोगों को सामाजिक एवं आर्थिक अन्याय एवं शोषण से मुक्ति के लिए विशेष व्यवस्था करेगा । {अनुच्छेद-46}

11. राज्य सामाजिक स्वास्थ्य, जीवन स्तर तथा पोषण स्तर को विकसित करेगा तथा विशेषत: स्वास्थ्य के लिए हानिकारक पदार्थो के उपयोग को हतोत्साहित करेगा । {अनुच्छेद-47}

12. राज्य कृषि एवं पशुपालन को आधुनिक आधार पर विकसित करने के लिए पर्याप्त कदम उठायेगा तथा गोवध पर प्रतिबन्ध लगाएगा । {अनुच्छेद48}

13. राज्य पर्यावरण, वन्य जीवन तथा वनों को सुरक्षित, विकसित तथा संरक्षित करेगा । {अनुच्छेद-48ए},

संविधान में मौलिक अधिकारों एवं नीति निदेशक तत्त्वों के साथ मौलिक कर्त्तव्यों का भी उल्लेख अनुच्छेद 5 व में किया गया है यद्यपि राजनीतिक वातावरण के निर्माण में उनकी व्यवहारिक भूमिका नगण्य है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि नीति निदेशक तत्व ने केवल आर्थिक बल्कि सामाजिक जीवन को प्रभावित करने वाले प्रमुख मार्गदर्शी तत्त्व हैं । समय-समय पर इन नीति निदेशक तत्त्वों में वृद्धि की जाती रही हैं तथा इनका टकराव मौलिक सिद्धान्तों से होता रहा है क्योंकि अनेक नीति निदेशक तत्त्व राज्य को मौलिक सिद्धान्तों के विरूद्ध जाकर कार्य करने की स्थिति बनाते हैं । आरम्भिक काल में तो मौलिक अधिकार की श्रेष्ठता स्थापित की गई लेकिन 'केशवानन्द **भारती' केस** में निर्णय के पश्चात् नीति निदेशक तत्त्व कल्याणकारी राज्य की स्थापना में अधिक अपरिहार्य एवं पवित्र हो गये।

संक्षेप में नीति निदेशक तत्त्व सामाजिक एवं आर्थिक जीवन दर्शन में राज्य के हस्तक्षेप के पर्याप्त अवसर प्रदान करते हैं । इन नीति निदेशक तत्त्वों के उपरान्त भी भारतीय सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक परिदृश्य एक अलग ही दिशा पकड़ता जा रहा है जिसमें राज्य की भूमिका अत्यन्त ही कमजोर एवं पंगु साबित हुई है । उत्तर दक्षिण विवाद, भाषायी विवाद, उत्तर पूर्व विवाद ऐसे प्रसंग हैं जो भारतीय आर्थिक एवं सामाजिक वातावरण को प्रदूषित कर रहे हैं तथा आर्थिक विकास में सर्वप्रमुख बाधक तत्त्व सिद्ध हो रहे है ।

4.9 शक्तियों का विभाजन

भारत अनेक राज्यों का संघीय गणराज्य है जिसमें शक्तियों का विभाजन राज्यों और संघ के मध्य किया गया है । राज्य तथा संघ दोनों ही किसी भी विषय पर कानून बनाने के लिए स्वतंत्र हैं लेकिन अन्तिम सर्वोच्चता संघ की रखी गई है । भारतीय संघीय स्वरुप में संविधान के अन्तर्गत शक्तियों का विभाजन त्रिस्तरीय रुप में किया गया है विधायिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका । जिसमें प्रत्येक अंग स्वतन्त्र एवं स्वायत्त है लेकिन विधायिका को लोकतंत्रीय स्वरुप में सर्वोच्चता प्रदान की गई है ।

विधायिका के लिए भारतीय संविधान तीन रुप में शक्तियों का विभाजन करता है:- **संघीय सूची. राज्य सूची एवं समवर्ती सूची** । संघीय सूची के विषयों पर केन्द्र तथा राज्य, राज्य सूची के विषयों पर विधान बनाते हैं । सामान्यतया केन्द्र राज्य सूची के विषयों पर विधान नहीं बनाता है लेकिन विशेष परिस्थितियों अथवा राज्यों के अनुरोध पर केन्द्र राज्य सूची के विषयों पर कानून बना सकता है । समवर्ती सूची के विषयों पर केन्द्र तथा राज्य दोनों ही विधान का निर्माण कर सकते हैं, लेकिन ऐसी स्थिति में केन्द्र का विधान ही मान्य होगा ।

4.10 नियोजन. आर्थिक विकास एवं वृद्धिशील राजकीय हस्तक्षेप

भारतीय योजना आयोग की स्थापना के साथ ही भारत में नियोजित विकास की प्रक्रिया आरम्भ हो गयी जिसमें मानव संसाधन, पूंजी तथा भौतिक संसाधनों को राज्य के हस्तक्षेप के माध्यम से श्रेष्ठतम तरीके से उपयोग करने का प्रयत्न किया गया, जिसके लिए प्राथमिकताओं को परिभाषित किया गया और उन्हीं के अनुरुप संसाधनों को आवंटित किया गया । नियोजन के क्रियान्वयन हेतु देश में एक वृहद एवं सुदृढ़ प्रशासनिक तंत्र को स्थापित एवं विकसित किया गया ।

नियोजन के प्रथम 4 दशकों में राज्य के हस्तक्षेप में उत्तरोत्तर अभिवृद्धि हुई । यद्यपि भारतीय संविधान में प्रत्येक नागरिक को व्यवसाय, उद्योग आदि की स्वतन्त्रता प्रदान की गई है लेकिन संविधान में अनेक संशोधनों के माध्यम से राज्य द्वारा इनको सीमित करने का प्रयास किया गया । औद्योगिक नीति, कर नीति के माध्यम से सार्वजनिक क्षेत्र को विकसित किया गया तथा निजी क्षेत्र का विस्तार एवं विकास अत्यन्त सीमित कर दिया गया । निजी क्षेत्र के समक्ष राष्ट्रीयकरण का भय सदैव बना रहा तथा एकाधिकारात्मक एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापार अधिनियम ने निजी क्षेत्र के विकास को बाधित किया । बाजार की अपूर्णताओं को दूर करने के लिए राज्य ने मांग प्रबन्ध पर अधिक बल दिया जिसके लिए अनेक आर्थिक अधिनियमों एवं प्रतिबन्धों का समावेश किया गया जिसमें मुख्य रुप से औद्योगिक (विकास एवं नियमन) अधिनियम, कम्पनी अधिनियम, पूंजी निर्गम नियंत्रण अधिनियम, प्रतिभूति (अनुबन्ध) अधिनियम, एकाधिकार एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार अधिनियम, आवश्यक वस्तु अधिनियम, विदेशी विनिमय अधिनियम, आयात एवं निर्यात (नियंत्रण) अधिनियम जैसे अधिनियम मुख्य हैं ।

सरकार ने मांग पक्ष के प्रबन्ध को नियंत्रित करने के लिए अलग से एक सार्वजनिक वितरण प्रणाली को विकसित किया । इसके संचालन के लिए अनेक उद्योगों पर मात्रात्मक एवं गुणात्मक प्रतिबन्ध आरोपित किये गये । साथ ही सरकार ने अनेक वस्तुओं की कीमतों को निर्धारित किया ।

अनेक औद्योगिक एवं श्रम अधिनियमों को पारित किया गया जो मुख्यतया मजदूरी, वेतन, श्रम प्रबन्ध, बोनस, कार्य की दशाओं, श्रम कल्याण तथा श्रम सुरक्षा के सन्दर्भ नियोक्ताओं एवं श्रमिकों के सम्बन्धों की व्याख्या करते थे जिसमें श्रमिकों के हितों को, श्रम सम्बन्धों की स्थापना में विशेष प्राथमिकता दी गई ।

वित्तीय एवं पूंजी बाजारों को पूर्णतया सरकारी नियंत्रण में रखा गया जिसके नियंत्रण के लिए रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया की स्थापना की गयी । बाद में बैंकिंग कम्पनी अधिनियम 1949, सहकारिता अधिनियम जैसे विधान पारित किये गये । वर्ग बैंकिंग से जन बैंकिंग के लिए राज्य के द्वारा बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया तथा व्याज दरों को पूर्णतः राज्य के द्वारा निर्देशित एवं निर्धारित किया गया ।

राज्य ने विकास एवं बचत जैसी गतिविधियों को प्रभावित करने के लिए उपरोक्त वर्णित प्रत्यक्ष उपायों के अतिरिक्त अनेक अप्रत्यक्ष प्रयासों का भी सहारा लिया । बचत, निवेश को प्राथमिकता क्षेत्रों यथा ग्रामीण विकास, कृषि, लघु उद्योगों, पशुपालन आदि में प्रवाहित करने के लिए वित्तीय एवं मौद्रिक नीतियों के द्वारा परिमाणात्मक एवं गुणात्मक नियंत्रण लागू किये गये जिनके माध्यम से इन क्षेत्रों में बचत एवं निवेश को बढ़ावा देने के लिए अनेक मात्रात्मक एवं गुणात्मक प्रोत्साहन दिये गये । कीमत

स्तर को नियंत्रित करने के लिए राजकोषीय एवं मौद्रिक नीतियों का सहारा लिया गया तथा मुद्रा के प्रवाह को अवांछनीय गतिविधियों में जाने से रोका गया । पिछड़े क्षेत्रों के विकास, लघु उद्योगों के उत्थान, निर्यातों को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से अनेक मौद्रिक, वित्तीय, राजकोषीय तथा भौतिक प्रोत्साहन की घोषणा की गई । संक्षेप में नियोजन के प्रथम 4 दशकों में राज्य ने सार्वजनिक क्षेत्र के विकास के माध्यम से तथा समाजवादी विकास के दर्शन के आधार पर आर्थिक गतिविधियों में राज्य की भागीदारी को सुनिश्चित कर दिया तथा आर्थिक क्षेत्र में एक महत्ती जिम्मेदारी स्वयं ग्रहण कर ली । यहां तक कि खाने की ब्रेड से लेकर टेलीविजन एवं होटल चलाने का दायित्व भी राज्य का ही हो गया । इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि नियोजन के पूर्वाद्ध के 40 वर्षा राज्य की भूमिका नियंत्रणकारी अधिक और प्रोत्साहनमूलक कम हो गयी तथा निवेश, विकास की व्यूह रचना तथा प्राथमिकताओं के निर्धारण में राज्य की महत्त्वपूर्ण भागीदारी रही । इस अवधि में निजी क्षेत्र तथा बाजार शक्तियों को प्रभावपूर्ण तरीके से नियंत्रित एवं नियोजित करके उन्हें पूर्व निर्धारित आर्थिक व सामाजिक लक्ष्यों की ओर प्रेरित किया गया । तथापि सम्पूर्ण निवेश में निजी क्षेत्र का ही वर्चस्व रहा । इस अवधि में निजी क्षेत्र का निवेश में योगदान 55 प्रतिशत तथा जबकि सार्वजनिक क्षेत्र का योगदान 45 प्रतिशत रहा । इसमें घरेलू बचत का योगदान सर्वाधिक था ।

नियोजित आर्थिक विकास के देश में अनेक राजनीतिक प्रभाव भी दृष्टिगत हुए हैं । यद्यपि समग्र देश के सम्यक आर्थिक विकास में नियोजित विकास की उपयोगिता निर्विवाद है तथापि भारत में नियोजन के कारण राज्य के कार्य योजनागत एवं गैर योजनागत कार्यों में विभक्त हो गए हैं । जिसके कारण केवल योजनागत कार्यो को ही प्रमुखता दी गई और व्यष्टि स्तर पर विभागीय कार्यक्रम गौण होकर रह गए । नियोजन के परिणामस्वरूप केन्द्र एवं राज्यों के सम्बन्ध भी प्रतिकूल रूप से प्रभावित हुए हैं । भारत में राज्यों के आर्थिक एवं वित्तीय संसाधन सीमित हैं तथा वे अपनी वित्तीय आवश्यक्ता की पूर्ति के लिए केन्द्र पर आश्रित रहते हैं । केन्द्र व राज्यों में अलग-अलग राजनीतिक दलों की सरकार होने से यह स्थिति और अधिक विकट हो जाती है फलस्वरूप राज्य एवं केन्द्र के मध्य राजनीतिक एवं आर्थिक असहयोग की भावना पनपती है । भारत में नियोजित प्रक्रिया के कारण अनेक परिस्थितियों में आर्थिक निर्णयों में राजनीतिक दर्शन एवं सोच ही आर्थिक सिद्धान्तों पर हावी रहे है ।

4.11 राजनीतिक वातावरण एवं आर्थिक सुधार

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि नियोजन के पूर्वाद्ध में भारतीय अर्थव्यवस्था का स्वस्वरुप नियंत्रणकारी, प्रतिबन्धात्मक अधिक तथा प्रोत्साहनमूलक कम हो गया जिससे अर्थव्यवस्था में बाजार शक्तियां क्षीण होकर निजी क्षेत्र के लिए गैर उतेरक हो गई । आर्थिक विकास में निजी क्षेत्र की भागीदारी को सुनिश्चित करने के लिए तथा राज्य की प्रोत्साहनमूलक भूमिका में वृद्धि करने के लिए विशिष्ट नीतिगत परिवर्तनों की आवश्यकता महसूस की गई । संरचनात्मक समायोजनों के माध्यम से उदारीकरण, निजीकरण तथा भूमण्डलीकरण की नीतियों का समावेश राज्य की भूमिका को परिवर्तित करने के लिए किया गया जिसमें आर्थिक सुधारों के अन्तर्गत भारत में उद्योगों, व्यापार, करारोपण, मौद्रिक, बैंकिंग, वित्त, विनिमय, बीमा, कृषि, श्रम आदि से सम्बन्धित विभिन्न क्षेत्रों में अनेक प्रकार के नियंत्रणों, प्रतिबन्धों तथा विनियमों की समाप्ति से निजी क्षेत्र को स्वतंत्र रुप से विकसित होने का अवसर दिया गया । यद्यपि भारतीय अर्थव्यवस्था के उत्तरोत्तर उदारीकरण एवं भूमण्डलीकरण की सम्पूर्ण प्रक्रिया उपभोक्तावाद पर आधारित बाजारोन्मुखी अर्थप्रणाली स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात भारत

में अपनाई गई आयोजनात्मक मिश्रित अर्थप्रणाली की आधारभूत आर्थिक एवं सामाजिक अवधारणाओं के दर्शन का अतिक्रमण करती है । परिणामस्वरुप भारतीय अर्थव्यवस्था का स्वरुप नियोजित एवं नियंत्रित अर्थव्यवस्था से बदलकर बाजारोज़खी तथा स्वतन्त्र अर्थव्यवस्था वाला हो गया है जिसमें पूर्तिपक्ष के प्रबन्ध की अवधारणा अधिक बलवती है । आर्थिक सुधारों के अन्तर्गत औद्योगिक नीति, राजकोषीय नीति, मौद्रिक नीति, बीमा क्षेत्र, व्यापार, वित्तीय बैंकिंग क्षेत्र में अनेक सुधार लागू किये गये । प्रमुख सुधार इस प्रकार हैं:-

औद्योगिक नीति में सुधार

- सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार की सीमितता
- औद्योगिक क्षेत्रों की आरक्षित संख्या में कमी
- लघु उद्योग निवेश सीमा में वृद्धि
- सार्वजनिक उद्योगों का निजीकरण
- बहु राष्ट्रीय कम्पनियों के प्रवेश की अनुमति
- एकाधिकारात्मक एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार अधिनियम की समाप्ति
- संरचनात्मक उद्योगों में निजी क्षेत्र में प्रवेश को प्रोत्साहन

वित्तीय एवं बैंकिंग क्षेत्र के सुधार

- वित्तीय संस्थानों के लिए पूंजी पर्याप्तता मानक लागू
- राष्ट्रीय बैंकों को पूंजी बाजार से पूंजी प्राप्त करने की अनुमति
- निजी क्षेत्र में बैंकों की स्थापना की छूट
- सस्ती मुद्रा नीति की घोषणा
- बीमा एवं विकास अधिनियम की घोषणा

पूंजी बाजार में सुधार

- भारतीय प्रतिफूतइ एवं विनिवेश बोर्ड की स्थापना
- पूंजी निर्गम नियंत्रण अधिनियम की समाप्ति
- विदेशी वित्तीय संस्थानों को भारतीय पूंजी बाजार में प्रवेश की अनुमति
- भारतीय कम्पनियों को विदेशी पूंजी बाजार से पूंजी प्राप्त करने की अनुमति

बाहय क्षेत्र के सुधार

- रुपये का अवमूल्यन
- विदेशी व्यापार से मात्रात्मक प्रतिबन्धों की समाप्ति
- विदेशी विनिमय प्रबन्ध अधिनियम की स्थापना
- सीमा शुल्क में उदारता
- प्रत्यक्ष विदेशी निवेश सीमा में वृद्धि

इन आर्थिक सुधारों के माध्यम से भारतीय अर्थव्यवस्था में राज्य की भूमिका को पूर्णत: परिवर्तित कर दिया गया जो अब मुख्य रूप से प्रोत्साहनमूलक हो गयी है । आर्थिक सुधारों के कारण निजी क्षेत्र देश के आर्थिक विकास में प्रमुख भूमिका निभा रहा है तथा जनसामान्य का मानस भी निजी क्षेत्र की कार्यप्रणाली एवं अपेक्षाओं के अनुरूप परिवर्तित हो रहा है । निजी क्षेत्र की क्षमता एवं गुणवता के प्रति जनता का पूर्व में विद्यमान संकुचित दृष्टिकोण अब एक सुदृढ़ विश्वास एवं भावना में व्यक्त हो रहा है ।

4.12 स्वपरख प्रश्न

1. राजनीतिक वातावरण से क्या आशय है? राजनीतिक वातावरण के महत्व को समझाइये ।
2. राजनीतिक वातावरण एवं शासन प्रणालियों के सम्बन्ध को स्पष्ट कीजिए ।
3. आर्थिक वातावरण के निर्माण में राज्य की क्या भूमिका होती है? स्पष्ट कीजिए ।
4. "भारत में सरकार की भूमिका आर्थिक विकास में नियंत्रणकारी से प्रोत्साहनमूलक हो गयी है ।" क्या आप सहमत है अपने उत्तर की पुष्टि उदाहरणों सहित कीजिए ।
5. राजनीतिक वातावरण के सन्दर्भ में संवैधानिक स्त्रोतों की व्याख्या कीजिए ।
6. राजनीतिक वातावरण एवं आर्थिक सुधारों पर एक लेख लिखिए ।
7. टिप्पणी कीजिए-
   (i) निर्णयन प्रक्रिया एवं प्रजातांत्रिक संस्थान ।
   (ii) आर्थिक वातावरण एवं मूल मौलिक अधिकार ।
   (iii) आर्थिक वातावरण एवं नीति निदेशक ।

इकाई-5: नियमन नीति एवं व्यवस्था (Regulatory Policy and Framework)

इकाई की रूपरेखा :

5.1 उद्देश्य

5.2 पृष्ठ भूमि

5.3 व्यावसायिक नियमन व्यवस्था - एक अवलोकन

5.4 वैधानिक नीति

5.5 प्रमुख विधान

5.6 सारांश

5.7 स्वपरख प्रश्न

5.8 संदर्भ।

5.1 उद्देश्य:

प्रस्तुत अध्याय हेतु निम्नांकित उद्देश्य निर्धारित किये जाते हैं:-

1. विद्यार्थी को व्यवसायिक नियमन नीति की सामान्य जानकारी प्रदान करना ।
2. प्रमुख व्यावसायिक सन्नियमों की सामान्य जानकारी प्रदान करना ।
3. वैधानिक नीति के सम्बन्ध में ज्ञान प्रदान करना ।

5.2 पृष्ठभूमि:

व्यावसायिक नियमन व्यवस्था व्यावसायिक वर्ग द्वारा किये जाने वाले क्रियाकलापों को वैधानिक स्वरुप प्रदान करती है । जिसके फलस्वरुप समाज प्रत्येक वर्ग द्वारा किये गए आपसी व्यवहारों का नियमन किया जाता है तथा विधिक प्रभाव रोकने वाले प्रत्येक व्यवहार में जुड़े विविध पक्षकारों के अधिकार एवं दायित्वों का निर्धारण किया जाता है । सरल शब्दों में कहा जाए तो व्यवसायिक नियमन नीति व्यवसायिक जगत का अत्यधिक महत्वपूर्ण पक्ष है । इसके अन्तर्गत व्यवसायिक गतिविधियों के सुचारु संचालन हेतु कानून के अनुसार विषय क्षेत्र का निर्धारण किया जाता है जैसे क्रय-विक्रय व्यवहार, बैंकिंग एवं वित्तीय व्यवहार, औद्योगिक सम्बन्ध, नियोक्ता सम्बन्धी व्यवहार, आपसी अधिकार व्यवहार इन सबके क्रियान्वयन में कानून एवं सरकार की भूमिका को स्पष्ट करता है । व्यावसायिक नियमन नीति एवं व्यवस्था ऐसा विषय है जो शब्दश: कानूनी भाषा में उपलव्य है जिसका उपयोग लगभग उन्हीं शब्दों में प्रयोग करना पड़ता है । उसमें कोई परिवर्तन किया जाना सम्भव नहीं होता है । अत: इस अध्याय में सम्मिलित किये गये अधिनियम प्रावधानों को उसके मूल स्वरुप को बनाये रखते हुए सरल शब्द में यहां प्रस्तुत किया गया है ।

5.3 व्यावसायिक नियमन व्यवस्था - एक अवलोकन:

सरकार द्वारा देश में सामान्य जनजीवन व्यवस्थित रुप से संचालित करने मानवीय व्यवहार का नियमन करने के लिये सरकार द्वारा जो नियम बनाये जाते हैं वे सभी नियम सम्मिलित रुप में

नियमन व्यवस्था कहलाते हैं । नियमन व्यवस्था से तात्पर्य सरकार द्वारा तैयार किये गए एवं स्वीकृत नियमों एवं सिद्धांतों से है जिसका वह उपयोग कानूनी प्रशासन के लिये किया जाता है । व्यावसायिक नियमन व्यवस्था के अन्तर्गत वे सभी सन्नियम आते हैं जो व्यवसाय एवं उद्योग के कार्यक्षेत्र से सम्बन्धित है, इन्हीं सन्नियमों को समेंकित रुप से वाणिज्यिक एवं व्यापारिक सन्नियम कहा जाता है ।

व्यावसायिक सन्नियम की कुछ प्रमुख **परिभाषाएँ** इस प्रकार हैं -

ए.के.सेन के अनुसार "वाणिज्यिक विधि के अन्तर्गत वे नियम सम्मिलित होते हैं जो व्यावसायियों एवं बैंकिंग संस्थाओं के सामान्य व्यवहारों से संभण्डित है तथा जो सम्पत्ति के अधिकारों एवं व्यवसाय में संलग्न व्यक्तियों के व्यवहारों से सम्बन्धित होता है ।

ए.के.बनर्जी के अनुसार "वाणिज्यिक सन्नियम से आशय जो व्यवसाय में संलग्न व्यक्तियों एवं व्यापारियों के मध्य हुए सौदों से उत्पन्न दायित्वों, कर्तव्यों अथवा अधिकारों का वर्णन करते हैं।"

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि व्यापारिक सन्नियम नियम एवं उपबन्ध है जिसका प्रत्यक्ष सम्बन्ध व्यवसाय एवं वाणिज्य से होता है । इनके माध्यम से सम्बन्धित पक्षकारों में व्यवसाय से सम्बन्धित सौदों के प्रति प्रतिबद्धता उत्पन्न होती है ।

व्यावसायिक नियमन व्यवस्था का क्षेत्र :

व्यावसायिक नियमन व्यवस्था के अन्तर्गत व्यवसाय जगत से सम्बन्धित नियमन एवं अधिनियम आते हैं । सामान्यत: निर्धारित अधिनियम इसके क्षेत्र का निर्धारण करते हैं । प्रमुख अधिनियम इस प्रकार है

- भारतीय अनुबन्ध अधिनियम 1872
- वस्तुविक्रय अधिनियम 1930
- साझेदारी अधिनियम 1932
- उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम व 966
- भारतीय कारखाना अधिनियम 1948
- कर्मचारी भविष्य निधी अधिनियम
- विदेशी विनिमय प्रबन्ध अधिनियम 2000

इस प्रकार व्यवसाय, व्यापार से सम्बन्धित वे अधिनियम जिनका प्रभाव सामान्य व्यक्तियों पर पड़ता है, वे सभी अधिनियम व्यवसायिक नियमन व्यवस्था के अन्तर्गत आते हैं । उपर्युक्त उल्लेखित अधिनियमों के अतिरिक्त बैंकिंग नियमन अधिनियम, वाहन अधिनियम, पंच निर्णय अधिनियम, दिवालिया अधिनियम, पेटेन्ट एवं कॉपी राईट अधिनियम, कम्पनी अधिनियम, समुद्री बीमा अधिनियम, एकाधिकार एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापार अधिनियम, किराया क्रय अधिनियम, सामान्य बीमा राष्ट्रीयकरण अधिनियम, आवश्यक वस्तु अधिनियम आदि हैं । अध्ययन की दृष्टि से पूर्ण उल्लेखित अनुबन्ध अधिनियम, वस्तु विक्रय अधिनियम, उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, भारतीय कारखाना अधिनियम, विदेशी विनिमय प्रबन्धन अधिनियम का विस्तार पूर्वक वर्णन किया जा रहा है । विद्यार्थी इन प्रमुख अधिनियमों का गम्भीरता पूर्वक अध्ययन करें । इनके मूल पाठ को मूल रुप में ही याद करें तथा परीक्षा में उसी रुप में प्रस्तुत, करें ।

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम 1872:

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम 1872 का उद्देश्य व्यापारिक व्यवहारों में निश्चितता लाना तथा उसे व्यवस्थित करना है । इस अनुबन्ध अधिनियम के लागू होने से पूर्व व्यापारिक सौदों में पारस्परिक परम्पराओं का निर्वहन किया जाता था । यह अधिनियम व्यवसायिक नियमन व्यवस्था की महत्वपूर्ण शाखा है क्योंकि इसका सम्बन्ध न केवल व्यापारिक वर्ग से ही वरन् सामान्य व्यक्ति, चिकित्सक. शिक्षक, सैनिक, कर्मचारी आदि सभी व्यक्ति प्रतिदिन कोई न कोई ठहराव अवश्य करते हैं । किन्तु यह अनुबन्ध अधिनियम व्यापारिक वर्ग के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण है । क्योंकि व्यवसाय से सम्बन्धित कार्य विभिन्न अनुबन्धों पर ही आधारित होते हैं । इस अनुबन्ध के माध्यम से पक्षकारों को सुरक्षा मिलती है तथा वे वचनपालन के लिये बाध्य होते हैं । यह अधिनियम 1872 में लागू किया गया । 25 अप्रेल, 1872 को भारतीय संसद में इसे पारित किया गया जो, 1 सितम्बर, 1872 से लागू किया गया । यह जग- कश्मीर राज्य को छोड़कर सम्पूर्ण देश में लागू है ।

अनुबन्ध अधिनियम के मुख्य तत्व:

इस अधिनियम में आरम्भ में 266 धाराएं तथा 11 अध्याय थे । बाद में 1930 में वस्तुविकय अधिनियम (धारा 76 से 123) एवं भारतीय साझेदारी अधिनियम 1932 (धारा 239 से 266) अलग कर दिये गए । इस परिवर्तन के पश्चात् भारतीय अनुबन्ध अधिनियम 1872 के अन्तर्गत निम्नांकित धाराएं सम्मिलित की गई है -

1. **धारा 1 से 75 :-** इन धाराओं के अन्तर्गत ठहराव वैद्य अनुबन्ध के लक्षण अनुबजों का निष्पादन, संयोग अनुबन्ध, अनुबन्ध भंग करना आदि सम्मिलित किये जाते हैं ।
2. **धारा 124 से 238 :-** हानि रक्षा एवं प्रत्याभूतइ अनुबन्ध (धारा 124 से 147) निक्षेप एवं गिरवी अनुबन्ध (धारा 148 से 181), एजेन्सी के अनुबन्ध (धारा 182 से 238)

इसके अतिरिक्त इस अनुबन्ध में समय-समय पर कई संशोधन भी हुए हैं, वर्ष 1886,1891, 1899,1930,1932.1951,1988 एव 1992 में आवश्यक संशोधन किये गये ।

इस प्रकार भारतीय अनुबन्ध अधिनियम के अन्तर्गत दो या दो से अधिक व्यक्ति किसी उद्देश्य से किसी कार्य को पूर्ण करने के लिये आपस में समझौता करते हैं । इस समझौते के क्रियान्वयन के लिये इस अधिनियम में विस्तारपूर्वक विभिन्न धाराओं के माध्यम से विस्तार पूर्वक नियम बनाए गए हैं, जिनका पालन करना अनुबन्दकर्ताओं के लिये अनिवार्य है । इस अधिनियम के सम्बन्ध में यह भी कहा जाता है कि यह अधिनियम काफी पुराना है तथा एक शताब्दी बीत जाने के बाद भी इसमें कोई विशेष बदलाव नहीं किये जाने तथा बीमा, वस्तुविक्रय, विनिमय साध्य विलेख आदि विषयों पर अलग से अधिनियम पारित किये जा चुके हैं । फलस्वरुप इस अनुबन्ध अधिनियम का क्षेत्र काफी सीमित हो गया है।

वस्तु विक्रय अधिनियम 1930:

1930 से पूर्व भारतीय अनुबन्ध अधिनियम 1872 के अन्तर्गत वस्तु विक्रय से सम्बन्धित प्रावधान रखे गए थे किन्तु देश के आर्थिक विकास, बढ़ते व्यावसायिक सौदे एवं नवीन व्यापार व्यवस्था के कारण अनुबन्ध अधिनियम के अन्तर्गत रखे गए वस्तु विक्रय से सम्बन्धित प्रावधान वांछित आवश्यकता पूरी करने में असमर्थ थे, उन प्रावधानों से तात्कालीन आवश्यकता की पूर्ति नहीं हो पा रही थी । अत: अनुबन्ध अधिनियम के प्रावधानों को समाप्त कर वस्तु विक्रय के सम्बन्ध में पृथक

अनुबन्ध पारित किया गया । इस हेतु 15 मार्च 1930 को भारत के तत्कालीन गवर्नर जनरल द्वारा बिल स्वीकृत किया गया फलस्वरुप 1 जुलाई 1930 से वस्तु विक्रय अधिनियम प्रभावी हुआ । वस्तुत यह अधिनियम अंग्रेजों के वस्तु विक्रय अधिनियम व 893 के अनुरुप ही था । आरम्भ में इस अधिनियम का नाम भारतीय वस्तु विक्रय अधिनियम रखा गया । जिसे वर्ष 1963 में संशोधित कर भारतीय शब्द को हटा दिया गया । वर्तमान में यह अधिनियम वस्तु विक्रय अधिनियम व 930 कहलाता है । इसमें कुल 66 धाराऐं हैं जो वस्तुओं के क्रय-विक्रय एवं इससे सम्बन्धित विविध क्रियाओं को सम्पन्न करने हेतु कानूनी आधार प्रदान करता है ।

वस्तु विक्रय अधिनियम के मुख्य तत्व:

वस्तु विक्रय अधिनियम 1930 की धारा 4(1) के अनुसार वस्तु विक्रय अनुबन्ध एक ऐसा अनुबन्ध है जिसके अन्तर्गत विक्रेता एक निश्चित मूल्य के बदले क्रेता को माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण करता है अथवा हस्तान्तरित करने के लिये सहमत हो जाता है । अत: स्पष्ट है कि इस अनुबन्ध के अनुसार एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को प्रतिफल के बदले माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण करता है अथवा उसके लिये सहमत होता है । इस अधिनियम के मुख्य तत्व इस प्रकार हैं -

1. **दो पक्षों का होना -** इस अधिनियम के अन्तर्गत अनुबन्ध करने के लिये क्रेता तथा विक्रेता दो पक्षकार का होना आवश्यक है ।
2. **अनुबन्ध करने की योग्यता -** दोनों पक्षकार वयस्क तथा स्वस्थ मस्तिष्क के होने चाहिये तथा अनुबन्ध करने के लिये अयोग्य घोषित नहीं किये गए हों ।
3. **क्रय-विक्रय हेतु माल की उपलब्धता** - वस्तु विक्रय अधिनियम के अन्तर्गत अनुबन्ध हेतु क्रय-विक्रय के लिये माल उपलव्य होना चाहिये, इसके अभाव में अनुबन्ध किया जाना संभव नहीं है । इस अधिनियम के अन्तर्गत चल सम्पत्ति का ही क्रय-विक्रय किया जाता है ।
4. **मुद्रा में मूल्य निर्धारण -** इस अधिनियम के अन्तर्गत माल का विक्रय मूल्य मुद्रा में निर्धारित किया जाता है।
5. **स्वामित्व का हस्तान्तरण -** इस अधिनियम के अन्तर्गत विक्रेता से क्रेता को वस्तु के स्वामित्व का हस्तान्तरण किया जाता है ।
6. **स्पष्ट अथवा गर्भित अनुबन्ध -** वस्तु विक्रय अधिनियम के अन्तर्गत अनुबन्ध स्पष्ट अथवा गर्भित हो सकते हैं । यह अनुबन्ध मौखिक अथवा लिखित हो सकता है जो पक्षकारों के आचरण से परिलक्षित होता है ।
7. **अनुबन्ध अधिनियम 1872 की धारा लागू होना -** इस अधिनियम के अन्तर्गत अनुबन्ध अधिनियम 1872 की सम्बन्धित धाराऐं सम्मिलित की गई । इसके अतिरिक्त वे व्यवस्थाऐं जो विक्रय अनुबन्ध की धाराओं के विपरित न हो, वे अनुबन्ध अधिनियम की ही लागू होगी ।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि वस्तु विक्रय अधिनियम देश में व्यावसायिक सौदों के नियमन करने, उनके व्यवस्थित क्रियान्वयन के लिये पारित किया गया । वर्तमान में यह काफी पुराना अधिनियम होते हुए भी उतना ही महत्व रखता है ।

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986

देश में तीव्रगति से व्यावसायिक सौदों की बढ़ोतरी, संचार माध्यमों का त्वरित् विकास, विज्ञापन एवं प्रचार साधनों की महत्ता को देखते हुए उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा करना कल्याणकारी सरकार

का दायित्व बनता जा रहा है । नये-नये उत्पादों का आविष्कार, मूल्यों की विविधता के कारण एक बाजार विभ्रम उत्पन्न हो रहा है । ऐसी स्थिति में उपभोक्ता की स्थिति दयनीय हो जाती है । विक्रेता आधारित बाजार के कारण क्रेता के हितों का संरक्षण राज्य द्वारा किया जाना जरुरी हो जाता है क्योंकि विक्रेता आधारित बाजार में किसी न किसी रुप में क्रेता अथवा उपभोक्ता की अनदेखी की जाती है, जैसे माप तोल में कमी, घटिया किस्म, दूषित वस्तु, जमाखोरी, मुनाफाखोरी आदि प्रवृतियां बाजार में उभरने लगती है । इन सबसे उपभोक्ताओं को संरक्षण प्रदान करने तथा शोषित होने पर उचित क्षतिपूर्तिा दिलाने हेतु उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 में पारित किया गया । राजस्थान में इसके क्रियान्वयन का दायित्व खाद्य एवं रसद विभाग को सौंपा गया है । इस अधिनियम के अन्तर्गत उपभोक्ता परिषदों एवं न्यायिक मंचों के माध्यम से त्वरित न्याय व्यवस्था सुरक्षित की गई है । इस अधिनियम के अन्तर्गत दण्डात्मक व्यवस्था के स्थान पर क्षतिपूर्ति की व्यवस्था को अधिक महत्व दिया गया है । इस अधिनियम में कुल 31 धाराऐं हैं । इसके मुख्य तत्व इस प्रकार हैं

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम के मुख्य तत्व:

1. **धारा 1 से 3 के उपबन्ध -** इसके अन्तर्गत अधिनियम से सम्बन्धित सामान्य परिभाषाऐं लागू होने की तिथि यथा 15 अप्रेल, व 1987, सेवा दोष, उपभोक्ता विवाद, न्याय सम्बन्धी त्रिस्तरीय व्यवस्था यथा जिला मंच, राज्य आयोग तथा राष्ट्रीय आयोग सम्बन्धी उपबन्ध दिये गऐ हैं ।
2. **धारा 4 से 8 के उपबन्ध** - इन धाराओं के अन्तर्गत केन्द्रीय उपभोक्ता संरक्षण परिषदें जो केन्द्र सरकार द्वारा स्थापित की जाती है तथा राज्य सरकार द्वारा स्थापित राज्य उपभोक्ता संरक्षण परिषदों से सम्बन्धित उपबन्ध दिये गए हैं ।
3. **धारा 9 से 27 के उपबन्ध -** इसके अन्तर्गत उपभोक्ता विवाद निवारक अभिकरण से सम्बन्धित धाराओं का वर्णन किया गया है । इसमें उपभोक्ता विवाद निवारक अभिकरण सम्बन्धी प्रावधान धारा 9 में दिये गये हैं । जिला मंच संरचना सम्बन्धी धारा 10 में तथा जिला मंच क्षेत्राधिकार सम्बन्धी धारा व व तथा शिकायत सम्बन्धी उपबन्ध धारा व 3 में तथा निर्णय से सम्बन्धित उपबन्ध धारा 15 में, राज्य आयोग से सम्बन्धित उपबन्ध धारा व 6 से 19 में एवं राष्ट्रीय आयोग सम्बन्धी उपबन्ध धारा 20 से 27 में दिये गए हैं ।
4. **अन्य धाराएँ -** सद्भावनापूर्ण की गई कार्यवाही के लिये संरक्षण धारा 28, इस अधिनियम के अन्तर्गत उत्पन्न होने वाली कठिनाईयों को दूर करने की शक्ति सम्बन्धी प्रावधान धारा 29, केन्द्र तथा राज्य सरकारों को नियम बनाने की शक्ति सम्बन्धी धारा 30 तथा नियमों को संसद में प्रस्तुत करने सम्बन्धी प्रावधान धारा 31 में दिये गए हैं ।

इस प्रकार इस अधिनियम के पारित होने के पश्चात् उपभोक्ताओं में नवीन शक्ति का संचार हु आ है । उपभोक्ताओं को उनके अधिकारों के सम्बन्ध में जानकारी प्रदान करना, उन्हें जागरुक बनाना, धोखाधड़ी, छलकपट तथा उपभोक्ता के हितों की अनदेखी करने वाले विक्रेताओं पर अंकुश लगाने की दृष्टि से इस अधिनियम का व्यवसायिक नियमन व्यवस्था में विशेष महत्व है ।

विदेशी विनिमय प्रबन्ध अधिनियम 2000

भारत जैसे विकासशील देश में आर्थिक उदारता होना आवश्यक है । वैश्वीकरण के पश्चात आर्थिक उदारीकरण को प्रोत्साहन देने की दृष्टि से फेरा (FERA) अधिनियम का पुनरावलोकन किया

गया तथा इस दृष्टि से एक केन्द्रीय स्तर पर समिति का गठन भी किया गया । इस समिति की अनुशंसा के आधार पर फेरा अधिनियम में आवश्यक संशोधन कर उसके स्थान पर 1 जून, 2000 से विदेशी विनिमय प्रबन्धन लागू किया गया ताकि देश में विदेशी विनिमय का नियमन सही तरीके से हो सके। इस अधिनियम में कुल 49 धाराऐं हैं । अधिनियम के मुख्य तत्व इस प्रकार हैं -

विदेशी विनिमय प्रबन्ध अधिनियम 2000 के मुख्य तत्व :

1. **अधिनियम का विस्तार एवं क्षेत्र -** यह अधिनियम सम्पूर्ण भारत में लागू होता है । भारत के निवासी सहित किसी भी व्यक्ति के स्वामित्व अथवा नियन्त्रण वाली भारत के बाहर सभी शाखाओं, कार्यालयों तथा एजेन्सियों पर लागू होता है ।
2. **अधिनियम के उद्देश्य -** इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य आर्थिक उदारीकरण को प्रोत्साहन देकर कानून को सुदृढ़ बनाना, साथ ही देश में विदेशी विनिमय का बेहतर प्रबन्धन करना, उदारीकरण की नीतियों का प्रभावी क्रियान्दयन करना, विदेशी विनियोगों को प्रोत्साहित करना तथा विदेशी मुद्रा बाजार का भारत में सुव्यवस्थित विकास करना ।
3. **विदेशी विनिमय का नियमन एवं प्रबन्ध -** 1991 के बाद विदेशी विनिमय की नियमन व्यवस्था का पुनरावलोकन किया गया तथा कई संशोधन करते हुए नए प्रावधान जोड़े गए, इनमें - विदेशी विनिमय व प्रतिभूति व्यवहार, विदेशी विनिमय नियन्त्रण, चालू खाता व्यवहार, पूँजी खाता व्यवहार, माल एवं सेवाओं के निर्यात सम्बन्धी प्रावधान, विदेशी विनिमय की वसूली एवं प्रत्यावर्तन व्यवहार तथा छूट सम्बन्धी प्रावधान प्रमुख हैं ।

इस प्रकार इस कानून के अन्तर्गत धारा 7 के अधीन रिजर्व बैंक को विशेष शक्तियां प्रदान की गई । धारा 8 के अन्तर्गत विदेशी विनिमय की वसूली एवं प्रत्यावर्तन सम्बन्धी प्रावधान जोड़े गए, धारा 10 के अन्तर्गत अधिकृत व्यक्ति को परिभाषित किया गया । धारा 11 में अधिकृत व्यक्ति को निर्देश देने की रिजर्व बैंक की शक्तियों सम्बन्धी प्रावधान दिये गए हैं । धारा 13 में उल्लंघन एवं दण्ड अथवा शस्तियां संभनदधि प्रावधान दिये गए है । धारा 14 में न्यायिक प्रावधिकारी के आदेश का प्रवर्तन संबंधी प्रावधान दिये गए हैं । धारा 18 के अन्तर्गत निर्णय एवं पुर्नविचार के प्रावधान दिये गए हैं । धारा 17 में पुर्नविचार याचिका सम्बन्धी उपबंध दिये गए हैं । धारा 18 व 19 में अपील अधिकरण संबन्धी प्रावधान दिये गये हैं । धारा 36 में प्रवर्तन निदेशालय संभबंधी प्रावधान तथा धारा 39 से 49 तक फेमा 2000 के अन्तर्गत अन्तिम अध्याय में अन्य पहलुओं के सम्बन्ध में विविध प्रावधान दिये गए हैं । जैसे कुछ प्रलेखों के सम्बन्ध में परिकल्पना अधिनियम के क्रियान्दयन पर रोक सम्बन्धी प्रावधान. केन्द्र सरकार के अधिकार, मृत्यु या दिवालियापन का प्रभाव आदि प्रमुख हैं ।

कारखाना अधिनियम 1948

औद्योगीकरण के प्रारम्भिक काल से ही देश के कारखानों में कार्यरत श्रमिकों की कार्यदशाओं रोजगार एवं कल्याण हेतु विशेष प्रावधानों के सम्बन्ध में मांग उठती रही है । ब्रिटिश सरकार ने सर्वप्रथम 1881 व में कारखाना अधिनियम पारित किया था । स्वाधीनता के पश्चात् 28 अगस्त 1948 में देश के औद्योगिक विकास श्रम शक्ति को विकसित करने तथा कल्याणकारी कार्यो की दृष्टि से कारखाना अधिनियम पारित किया गया जो 1 अप्रेल, 1949 से लागू हुआ । इसमें सन् 1954,1976 व 1988 में आवश्यक संशोधन भी किये गए ।

इस अधिनियम में 120 धाराऐं हैं । इसके प्रमुख प्रावधान इस प्रकार हैं -

कारखाना अधिनियम 1948 के प्रमुख प्रावधान

1. **क्षेत्र सम्बन्धी प्रावधान -** यह अधिनियम सम्पूर्ण भारत में लागू होता है । ऐसे कारखाने जहां शक्ति का प्रयोग होता है तो 10 व्यक्ति तथा जहां शक्ति का प्रयोग नहीं होता वहां 20 व्यक्ति कम से कम कार्यरत हों ।
2. **लाइसेन्स का पंजीयन एवं सम्बन्धी प्रावधान -** धारा 6 व 7 में कारखानों के पंजीयन सम्बन्धी प्रावधानों का वर्णन किया गया है ताकि कारखानों पर प्रभावी नियन्त्रण स्थापित किया जा सके।
3. **निरीक्षण एवं प्रमाणन सम्बन्धी प्रावधान -** अधिनियम की धारा 8 एवं 9 में कारखाना निरीक्षकों की नियुक्ति, कर्तव्यों एवं अधिकारों सम्बन्धी प्रावधान दिये गए हैं ।
4. **श्रमिकों की सुरक्षा** - अधिनियम के चतुर्थ अध्याय में सुरक्षा सम्बन्धी प्रावधान दिये गए हैं । इसके अन्तर्गत खतरनाक मशीनें. आग व धुऐं व गैसों से सुरक्षा की व्यवस्था दी गई है ।
5. **स्वास्थ्य सम्बन्धी प्रावधान -** अधिनियम के तृतीय अध्याय में कारखानों में अवशिष्ट पदार्थो की निकासी सफाई, प्रकाश. हवा. स्वच्छ पानी. शौचालय, मूत्रालय सम्बन्धी प्रावधान दिये गए हैं ।
6. **श्रम कल्याण संबंधी प्रावधान -** अधिनियम के पंचम अध्याय में श्रमिकों के कल्याण सम्बन्धी विशेषव्युवस्थाऐं की गई है । इसके अन्तर्गत स्नान. घर. बैठने की सुविधा. आराम कक्ष तथार शिशु गृह सुविधा उपलव्य कराने सम्बन्धी प्रावधान हैं । 500 या इससे अधिक श्रमिक होने पर श्रम कल्याण अधिकारी की नियुक्ति के प्रावधान हैं ।
7. **कार्य घंटे संबंधी प्रावधान** - अधिनियम के छठे अध्याय में कार्य के घण्टे सम्बन्धी प्रावधान दिये गए हैं, जिसमें एक पारी में 9 घण्टे व सप्ताह में 48 घण्टे कार्य करने का प्रावधान रखा गया है। साथ ही सप्ताह में एक दिन सवैतनिक अवकाश का प्रावधान
8. **महिलाओं एवं बच्चों संबंधी विशेष प्रावधान -** कारखाने में महिला व बच्चे श्रमिकों की नियुक्ति के सम्बन्ध में विशेष प्रावधान रखे गए हैं । व 4 वर्ष से कम उम्र के बच्चे को काम पर नहीं लगाया जा सकता है । बच्चों से साढ़े चार घण्टे से अधिक काम नहीं कराया जा सकता है । महिला श्रमिकों से रात्रि 7 बजे से प्रात: 6 बजे तक काम करने पर प्रतिबन्ध है ।
9. **अन्य प्रावधान -** कारखाना अधिनियम में श्रमिकों से सम्बन्धित कई प्रावधान रखे गए हैं । इसके अन्तर्गत सवैतनिक वार्षिक अवकाश, विशिष्ट बीमारियों सम्बन्धी प्रावधान तथा श्रम अधिकारियों के दायित्वों का निर्धारण किया है ।

इस प्रकार कारखाना अधिनियम के अन्तर्गत कारखाने में कार्यरत श्रमिकों की कार्य दशाओं, सेवा शर्तो. श्रम-कल्याण आदि परिस्थितियों के संदर्भ में प्रावधान किया गया है ।

5.6 सारांश

प्रस्तुत अध्याय का उद्देश्य विद्‌यार्थियों को व्यावसायिक नियमन नीति की सामान्य जानकारी तथा विविध सन्नियमों के प्रमुख प्रावधानों से अवगत कराना है ।

पृष्ठभूमि

व्यावसायिक नियमन व्यवस्था व्यवसाय वर्ग द्‌वारा किये जाने वाले व्यवहारों का वैधानिक स्वरुप है । इसके अन्तर्गत व्यावसायिक गतिविधियों को सुचारु रुप से संचालित करने हेतु कानून के अनुसार विशेष क्षेत्र का निर्धारण किया जाता है ।

व्यावसायिक नियमन व्यवस्था का क्षेत्र :

- भारतीय अनुबन्ध अधिनियम 1872
- वस्तु विक्रय अधिनियम 1930
- साझेदारी अधिनियम व 1932
- उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986
- भारतीय कारखाना अधिनियम व 1948
- कर्मचारी भविष्य नीधि अधिनियम
- विदेशी विनिमय प्रबन्धन अधिनियम 2000

इस प्रकार व्यावसायिक नियमन व्यवस्था के अन्तर्गत भारतीय अनुबन्ध अधिनियम, 1872, वस्तु विक्रय अधिनियम 1930, उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम व 1986, विदेशी विनिमय प्रबन्धन अधिनियम, 2000 कारखाना अधिनियम 1948 का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। विद्यार्थी इन अधिनियमों के प्रमुख प्रावधानों का विस्तार पूर्वक अध्ययन करें।

5.7 अभ्यास प्रश्न

1. व्यावसायिक सन्नियम से क्या आशय है?
2. भारतीय अनुबन्ध अधिनियम 1872 का विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिये।
3. वस्तु विक्रय अधिनियम के प्रमुख प्रावधान बताइये।
4. उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम की प्रभावशीलता का वर्णन कीजिये।
5. विदेशी विनिमय प्रबन्धन अधिनियम के मुख्य तत्व बताइये।
6. कारखाना अधिनियम 1948 के प्रमुख प्रावधान समझाइये।

5.8 संदर्भ पुस्तकें

1. व्यावसायिक नियमन व्यवस्था - नवलखा, माथुर
2. व्यावसायिक सन्नियम व्यवस्था - कुन्द्ज, ओडोनेल (अंग्रेजी)
3. व्यावसायिक सन्नियम अधिनियम - जैन, श्रीमाली. खींचा
4. व्यावसायिक नियम व्यवस्था - जैन, शर्मा

इकाई-6 : कम्पनी अधिनियम के मूल तत्व (Element of Company Law)

इकाई की रूपरेखा :

6.1 उद्देश्य
6.2 संक्षिप्त परिचय
6.3 कम्पनी अधिनियम, 1956
6.4 कम्पनी की विशेषताऐं या लक्षण
6.5 समामेलन का पर्दा उठाना या बेनकाब करना
6.6 कम्पनी का वर्गीकरण
6.7 पार्षद सीमा नियम
6.8 पार्षद अन्तर्नियम
6.9 आन्तरिक प्रबन्ध का सिद्धान्त
6.10 संचालक
6.11 प्रबन्धक
6.12 कम्पनी का समापन
6.13 अभ्यासार्थ प्रश्न
6.14 संदर्भ पुस्तकें

6.1 उद्देश्य:

- कम्पनी अधिनियम की सामान्य विशेषताओं की जानकारी
- पार्षद सीमानियम एबं पार्षद अन्तर्नियमों के मुख्य तत्वों का अध्ययन
- कम्पनी का निर्माण, सदस्यता एवं प्रविवरण सम्बन्धित प्रावधानों का अध्ययन
- कम्पनी के संचालन प्रबन्ध, समापन सबंधी प्रावधानों का अध्ययन

6.2 संक्षिप्त परिचय

भारत वर्ष में कम्पनी विधान का मूल स्त्रोत इंग्लैण्ड का कम्पनी विधान है । इसके अतिरिक्त भारत में व्यावसायिक स्वामित्व के कम्पनी प्रारुप की स्थापना करने का श्रेय भी अंग्रेजों को ही प्राप्त है जिन्होंने भारत से व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करने के उद्देश्य से सन् 1600 ई० में "'शाही अधिकार पत्र," द्वारा ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना की । सन् 1884 में इंग्लैण्ड में पहला कम्पनी अधिनियम पारित हु आ जिसके द्वारा संयुका पूँजी की कम्पनियों का रजिस्ट्रीकरण सूम्मव हो सका । इसी अधिनियम के आधार पर सर्वप्रथम भारत में सन् 1850 में संयुक्त पूँजी कम्पनी अधिनियम पारित हु आ । संयुक्त पूँजी कम्पनी अधिनियम, 1857, ने 'सीमित दायित्व के सिद्धान्त को सर्वप्रथम मान्यता दी। परन्तु बीमा एवं बैंकिंग कम्पनियों के ऊपर यह अधिनियम लागू नहीं किया गया । पुन: सन् 1860 में नया कम्पनी अधिनियम पारित किया गया जिसमें बैंकिंग एवं बीमा कम्पनियों को भी सीमित दायित्व के

तत्व को मान्यता ' की गयी । इंग्लैण्ड में अंग्रेजी कम्पनी (एकीकरण) अधिनियम, सन् 1908 पारित किया, जिसके आधार पर भारत में सन् 1913 में भारतीय अधिनियम 1913 पारित हुआ जो वर्तमान कम्पनी अधिनियम, 1956 के लिए आधार बना ।

6.3 कम्पनी अधिनियम, 1956

सन् 1950 में श्री ए०एच० भाभा की अध्यक्षता में एक उच्चस्तरीय "भाभा समिति," की गई। इस समिति की रिपोर्ट के आधार पर 2 सितम्बर 1953 में कम्पनी अधिनियम (संशोधन) विधेयक प्रस्तुत किया गया । 18 जनवरी. 1956 को राष्ट्रपति की स्वीकृति के साथ ही. 1 अप्रेल. 1956 से भारतीय कम्पनी अधिनियम, 1956 लागू हुआ । भारतीय कम्पनी अधिनियम, 1956 में 658 धाराऐं व 15 अनुसूचियॉ हैं जो 13 खण्डों में विभक्त है । यह अधिनियम उन सभी भारतीय कम्पनियों पर लागू किया गया है जिसका समामेलन इस अधिनियम अथवा इससे पूर्व के किसी भी कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत हुआ है । यह अधिनियम भारत के बाहर समामेलित होने वाली उन कम्पनियों पर भी लागू किया गया है जिनका भारत में कारोबार है । उपर्युक्त अधिनियम अनेक बार संशोधित किया जा चुका है । संसद द्वारा 1998,1999, 2000, 2001,2002 में कम्पनी संशोधन विधेयक पारित करके आवश्यकता अनुसार परिवर्तन किये हैं । इतने संशोधनों के बाद भी कम्पनी अधिनियम, 1956, वर्तमान परिस्थितियों के अनुरुप नहीं कहा जा सकता है । अत: इसके स्थान पर एक नये कम्पनी अधिनियम की आवश्यकता अनुभव की जा रही है ।

कम्पनी : परिभाषा एवं प्रकार :

कम्पनी शब्द का तात्पर्य समान उदेदश्य के लिए व्यक्तियों के ऐसे ऐच्छिक संघ से लगाया जाता है जो सामान्यत: व्यवसाय संचालन द्वारा लाभ प्राप्त करने के लिए बनाया गया हो । आजकल कम्पनियों का आशय ऐसे संघ से है जिसमें संयुक्त पूँजी होती है । कम्पनी अधिनियम, 1956 की धारा 3(1) (i) एवं (ii) के अनुसार कम्पनी से आशय ऐसी कम्पनी से है जो इस अधिनियम के अन्तर्गत निर्मित एवं पंजीकृत है अथवा किसी ऐसी विद्यमान कम्पनी से है जिसका निर्माण तथा पंजीयन भारत में प्रभावी इसमें पूर्व के किसी भी कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत हुआ हो ।

मुख्य न्यायाधीश मार्शल का कम्पनी से अभिप्राय एक अदृश्य, अमूर्त, कृत्रिम व्यक्ति से है जिसका अस्तित्व केवल कानून की दृष्टि में ही है । इसकी वे ही विशेषताऐ होती है जो इसको जन्म देने वाला अधिकार-पत्र प्रदान करता है । अमरत्व और व्यक्तित्व (immoratality and individuality) इसकी प्रमुख विशेषताऐं हैं जिसके कारण की निरन्तर बदलने वाले व्यक्तियों के समूह को अपरिवर्तित माना जाता है और इसलिए यह एक व्यक्ति की भांति कार्य करती है ।

6.4 कम्पनी की विशेषताएँ या लक्षण

1. **व्यक्तियों का ऐच्छिक संघ**
2. **विधान द्वारा निर्मित कृत्रिम व्यक्ति**
3. **पृथक अस्तित्व**
4. **शाश्वत उत्तराधिकार**
5. **सीमित दायित्व**
6. **सामान्य मुद्रा**

7. शेयरों का अस्तान्तरणायता

क्या कम्पनी को एक नागरिक का दर्जा प्राप्त है?

भारतीय एवं नागरिक अधिनियम केवल वास्तविक व्यक्तियों को ही नागरिक मानकर चलते हैं । कम्पनी को सामान्य नागरिक के मूल अधिकार प्राप्त नहीं है, फिर भी कम्पनियाँ अपने अधिकारों के संरक्षण के लिए न्यायालय की शरण ले सकती हैं । Prithvi cotton Mills V Bronch Borough Munipality AIR (1968).

6.5 समामेलन का पर्दा उठाना या बेनकाब करना (Lifting or Piercing of Corporate veil)

कम्पनी के निगमन के बाद कम्पनी का अपना पृथक विधिक अस्तित्व हो जाता है तथा कम्पनी अपने सदस्यों के व्यक्तिगत कार्यो के लिए उत्तरदायी नहीं होती । किन्तु जब कम्पनी का कार्य राष्ट्र-हितों अथवा ऋणदाताओं अथवा लोकनीति एवं न्याय के विरुद्ध, उसके सदस्य / संचालक द्वारा संचालित किया जाता है तो न्यायालय को यह अधिकार होता है कि वह कम्पनी के पृथक वैधानिक अस्तित्व को स्वीकार न करे तथा दोषी व्यक्तियों के विरुद्ध व्यक्तिगत रुप से कार्यवाही करें ।

सामान्यत: समामेलन को बेनकाब दो परिस्थितियों में किया जा सकता है ।

I वैधानिक व्यवस्थाओं के अधीन II न्यायिक परिस्थितियों के अधीन

I. वैधानिक व्यवस्थाओं के अधीन

1. सदस्यों का न्यूनतम वैधानिक संख्या से कम होना (धारा 45)
2. कपटपूर्ण व्यवहार (धारा 542)
3. प्रतिवरण में मिथ्यावर्णन की दशा में (धारा 62)
4. कम्पनी के स्वामित्व की जाँच करने के लिए (धारा 247)
5. विनिमय साध्य विलेखों पर व्यक्तिगत हस्ताक्षरों की दशा में (धारा 147)
6. असीमित दायित्व वाले संचालकों की दशा में (धारा 322)
7. कर भुगतान न करने की दशा में (आयकर अधिनियम की धारा 170)

II. न्यायिक परिस्थितियों के अधीन

1. कपट या अनुचित आचरण पर रोक - Jones V Jipman (1962)All E.R. 342.
2. यदि कम्पनी एक छलावा मात्र है - Gilford Montor Co.Ltd, V jipman(IT 33)Ch 953 C.A.
3. राजस्व की रक्षा - Sir Dinshaw Manickjee Patel,A.I.R. (1927)Bom 371.
4. वैधानिक दायित्व से बचने के लिए बनाई गई कम्पनी की दशा में : Re F.G. Films Ltd.,(1953) 1 WLR 483.
5. कम्पनी, शेयरधारियों के एजेन्ट के रुप में Smith Stone & Kinght Ltd V Brinengham Corporation (1939) 4 All E.R.116.
6. जब कोई कम्पनी शत्रु कम्पनी बन जाती है । Daimler Co. Ltd., V. Continental Tyres etc.(1916) 2 A.C.307

6.6 कम्पनियों का वर्गीकरण

कम्पनियों को कई वर्गो में वर्गीकृत किया जा सकता है । निम्नलिखित चार्ट इसे स्पष्ट करता है :

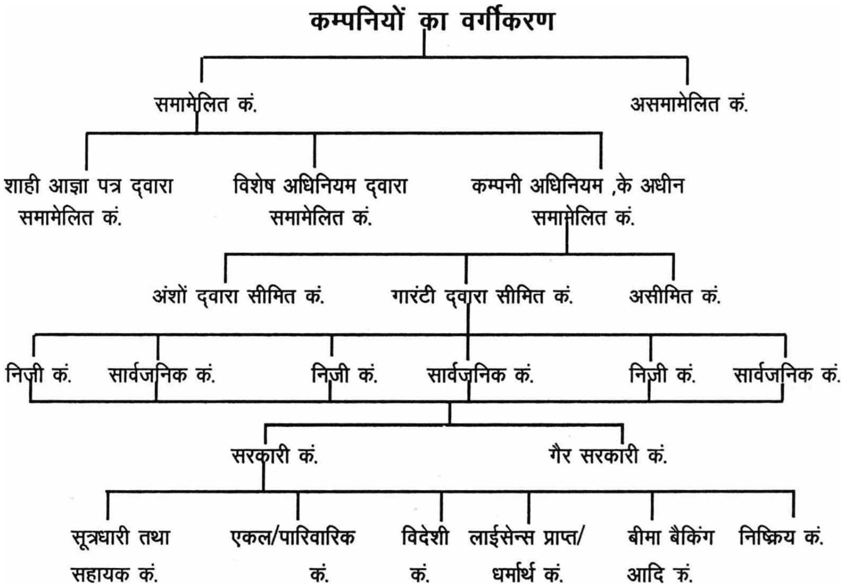

(1) **समामेलित कम्पनियां -** व्यापार संचालन के उद्देश्य से गठित तथा कम्पनी अधिनियम, 1956 अथवा इससे पहले के किसी अधिनियम के अन्तर्गत समामेलित कम्पनी को समामेलित कम्पनी कहते हैं ।

ऐसी कम्पनियॉ निम्नांकित में से किसी प्रकार से समामेलित हो सकती है :

(i) **राजाज्ञा/शाही आज्ञा द्वारा** - ये वे कम्पनियां हैं जो कि राज्य आज्ञा-पत्र (Royal Charter) के अधीन समामेलित की जाती है । ऐसी कम्पनी का उदाहरण ईस्ट इण्डिया व बैंक ऑफ इंग्लैण्ड है । भारत में इस तरह की कम्पनियों का निर्माण नहीं होता है ।

(ii) **विशेष अधिनियम द्वारा -** इन कम्पनियों का निर्माण संसद के विशेष अधिनियमों द्वारा होता है। यह कम्पनियां राष्ट्रीय महत्व का व्यापार करने के लिए स्थापित की जाती है । जैसे भारतीय स्टेट बैंक. जीवन बीमा निगम, भारतीय रिजर्व बैंक, भारतीय यूनिट ट्रस्ट आदि ।

(iii) **कम्पनी अधिनियम द्वारा -** यह वे कम्पनियां हैं जिनका पंजीयन वर्तमान कम्पनी अधिनियम अथवा पूर्ववर्ती किसी भी कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत हुआ है ।

(2) दायित्व के आधार पर वर्गीकरण :

(i) **सीमित कम्पनियां -** अंशों द्वारा सीमित एवं गारण्टी या प्रत्याभूति द्वारा सीमित कम्पनियों में वर्गीकृत किया जा सकता है ।

(ii) **असीमित कम्पनियां -** इस प्रकार की कम्पनियों में सदस्यों का दायित्व असीमित होता है । प्रत्येक कम्पनी अपने हित के अनुपात में कम्पनी के ऋणों के लिये उसी प्रकार दायी होता है । वर्तमान में इस प्रकार की कम्पनियां प्राय: देखने को नहीं मिलती

(3) सदस्यों की संख्या के आधार पर वर्गीकरण :

(i) **निजी कम्पनी** - एक निजी कम्पनी से आशय एक ऐसी कम्पनी से है जिसकी न्यूनतम प्रदत्त पूएजी 1 लाख रुपये अथवा अधिक राशि की निर्धारित की गई है तथा जो अपने पार्षद अन्तर्नियम द्वारा:

(i) अंश हस्तान्तरण के अधिकार पर प्रतिबन्ध लगा सकती है ।

(ii) अपने सदस्यों की संख्या 50 तक सीमित रखती है ।

(iii) कम्पनी अपने अंशों या ऋण-पत्रों के विक्रय के लिए जनता को आमन्त्रित करने एवं स्वीकार करने पर निषेध लगाती है ।

(iv) अपने सदस्यों, संचालकों अथवा उनके रिश्तेदारों के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों से निक्षेप आमन्त्रित करने तथा स्वीकार करने पर निषेध लगाती है । [धारा 3(i)(iii)]

(i) **सार्वजनिक कम्पनी : कम्पनी संशोधित अधिनियम, 2000 की धारा 3(i) (iv)**:

(i) जो एक निजी कम्पनी नहीं हो

(ii) जिसकी न्यूनतम प्रदत्त पूँजी 5 लाख रुपये अथवा अधिक राशि की निर्धारित की गई हो, अथवा

(iii) जो एक निजी कम्पनी है जो किसी निजी कम्पनी की सहायक नहीं है. अर्थात् सार्वजनिक कम्पनी की सहायक निजी कम्पनी है ।

सार्वजनिक कम्पनी का अन्तर्नियमों में निम्नलिखित बातों के सम्बन्ध में छूट होती है :

(i) कम से कम 7 सदस्य [धारा 12(i)]

(ii) अंशों का अन्तरण के अधिकार पर प्रतिबन्धित नहीं करती है ।

(iii) सदस्य संख्या 50 तक सीमित नहीं करती है ।

(iv) अपने अंशों या ऋण-पत्रों की बिक्री हेतु जनता को आमंत्रित कर सकती है ।

(4) स्वामित्व के स्वरुप के आधार पर वर्गीकरण :

(i) **सरकारी कम्पनी (धारा 617) -** सरकारी कम्पनी का आशय एक ऐसी कम्पनी से है जिसकी प्रदत्त अंश पूँजी के कम से कम 51 प्रतिशत भाग केन्द्रीय सरकार अथवा अंशत: : केन्द्रीय और अंशत: एक या अधिक राज्य सरकारों के अधिकार में हो ।

(ii) **गैर सरकारी कम्पनी -** जिस कम्पनी में सम्पूर्ण या अधिकांश पूँजी निजी क्षेत्र के साहसी तथा जनता द्वारा लगायी जाती है, गैर सरकारी कम्पनी कहते हैं ।

(5) नियंत्रण के आधार पर वर्गीकरण

(i) **सूत्रधारी एवं सहायक कम्पनी -** धारा 4(4) के अनुसार एक कम्पनी की सूत्रधारी तभी मानी जायेगी, जबकि वह दूसरी कम्पनी उसकी सहायक हो । यदि किसी कम्पनी के प्रबन्ध एवं संचालन पर किसी दूसरी कम्पनी का नियन्त्रण है, अथवा पहली कम्पनी के अधिकांश अंश किसी दूसरी कम्पनी के पास है तो ऐसी दूसरी कम्पनी सूत्रधारी कहलाती है तथा पहली कम्पनी सहायक कम्पनी कहलाती है ।

(ii) **एकल व्यक्ति एक जन या पारिवारिक कम्पनी -** इस तरह की कम्पनी में लगभग सारे या अधिकांश अंश किसी एक ही व्यक्ति के पास होते हैं । कम्पनी का संचालन उसी एक व्यक्ति की इच्छा एवं निर्देश के अनुसार किया जाता है । सालोमन बनाम सालोमन एण्ड कम्पनी ।

(6) **असमामेलित कम्पनियाँ -** ये वे कम्पनिया हैं, जिनका किसी भी अधिनियम के अन्तर्गत पंजीयन नहीं किया हुआ होता है । बड़ी-बड़ी साझेदारी संस्थाओं को अनिगमित कम्पनियां कहते हैं ।

कम्पनी का निर्माण: कम्पनी के निर्माण की प्रक्रिया कम्पनी की स्थापना के विचार से लेकर कम्पनी के व्यापार प्रारम्भ करने तक चलती है ।

उस समय से, जबकि कम्पनी के निर्माण का विचार आता है, उस समय तक, जबकि कम्पनी अपना कार्य आरम्भ कर देती है, जितनी कार्यवाही की जाती है उसे तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है : (1) प्रवर्तन, (2) निगमन और (3) व्यापार का प्रारम्भ ।

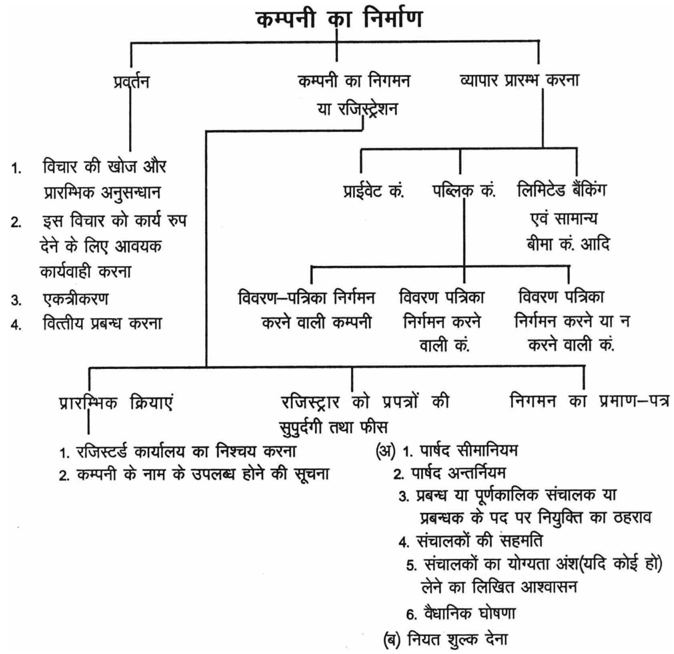

I. **प्रवर्तन अवस्था -** यह कम्पनी के निर्माण की प्रथम अवस्था है एवं कम्पनी निर्माण के लिए किये जाने वाले कार्यो की एक शृंखला है । इस शृंखला में कम्पनी की स्थापना की तैयारी करने, उसके व्यवसाय का क्षेत्र निश्चित करने, उसकी लाभदेयता का अनुमान लगाने, उसके साधनों का समुचित उपयोग करने की योजना बनाने तथा इस हेतु आवश्यक वैधानिक औपचारिकताओं को पूरा करने से संबंधित अनेक कार्य सम्मिलित है । इस प्रकार कम्पनी की स्थापना के विचार उत्पन्न होने से लेकर कम्पनी की स्थापना करने तक के समस्त कार्य प्रवर्तन में सम्मिलित है । प्रवर्तन के कार्य को पूर्ण करने वाले व्यक्तियों को "प्रवर्तक" कहा जाता है, जो कि प्रत्यक्ष रुप से कम्पनी के निर्माण के लिये कार्य करते हैं तथा उन कार्यो के लिये उत्तरदायी होते हैं । प्रवर्तक न तो कम्पनी के एजेन्ट होते हैं न ही स्वामी अथवा प्रन्यासी । प्रवर्तक का कम्पनी के साथ विश्वासाश्रित संबंध होता है ।

II. **कम्पनी का समामेलन/पंजीयन-**प्रवर्तक द्वारा कम्पनी रजिस्ट्रार के पास आवश्यक प्रपत्र एवं निर्धारित शुल्क जमा कराने के पश्चात् रजिस्ट्रार द्वारा उस कम्पनी का नाम अपने रजिस्टर में लिखकर कम्पनी को इस आशय का एक प्रमाण-पत्र निर्गमित करने की प्रक्रिया को ही कम्पनी का समामेलन कहा जाता है ।

कम्पनी का समामेलन होने के पश्चात् ही कम्पनी कानून की दृष्टि में विधान द्वारा निर्मित कृत्रिम व्यक्ति होता है और उसका पृथक एवं स्थायी अस्तित्व होता है ।

(i) **प्रारंभिक कार्यवाही -** प्रवर्तक द्वारा कम्पनी के समामेलन के पूर्व की जाने वाली कार्यवाही को प्रारम्मिक कार्यवाही कहते हैं । प्रारम्मिक कार्यवाही में निम्नलिखित औपचारिकताऐ एवं कार्य सम्मिलित किये जाते हैं:

(i) रजिस्टर्ड कार्यालय का स्थान निर्धारण

(ii) कम्पनी का नाम निर्धारण करना

(iii) औद्योगिक लाईसेन्स प्राप्त करना

(iv) प्रारंभिक अनुबंध प्राप्त करना

(v) प्रारंभिक सदस्यों को निर्धारित करना

(vi) पार्षद सीमानियम तथा अन्तनियमो को तैयार करना आदि ।

(ii) **रजिस्ट्रार को प्रपत्रों की सुपुर्दगी तथा फीस -** कम्पनी के रजिस्ट्रार को कम्पनी के समामेलन से संबंधित आवश्यक प्रपत्र सुपुर्द किये जाते हैं । प्रमुख प्रपत्र निम्नलिखित होते हैं

पार्षद सीमानियम, पार्षद अन्तर्नियम, संचालकों की सूची, प्रबन्धकीय कर्मचारियों की नियुक्ति के अनुबन्ध, संचालकों की लिखित सहमति एवं उनका विवरण, योग्यता अंश लेने की प्रतिज्ञा आदि।

कम्पनी के समामेलन के लिए प्राप्त शुल्क भारत सरकार के खाते में जमा होता है, व रसीद समामेलन के लिए प्रार्थना पत्र में संलग्न होती है ।

(iii) **निगमन का प्रमाण-पत्र** - जब कम्पनी का रजिस्ट्रार कम्पनी के समामेलन के लिए प्राप्त प्रलेखों से सन्तुष्ट हो जाता है तथा जब सभी वैधानिक कार्यवाहियां पूरी कर दी जाती है तो रजिस्ट्रार कम्पनी का समामेलन कर देता है, जिसे "**समामेलन का प्रमाण-पत्र**" कहते हैं । यह इस बात का निश्चयात्मक प्रमाण होता है कि कम्पनी का पंजीयन हो चुका है । (धारा 35) **मूसा गुलाम अरिफ बनाम इब्राहिम गुलाम आरिफ**।

कम्पनी द्वारा व्यवसाय प्रारम्भ करना : एक निजी कम्पनी समामेलन का प्रमाण-पत्र प्राप्त करते ही व्यवसाय प्रारम्भ नहीं कर सकती है जब तक कि उसे व्यवसाय प्रारम्भ करने का प्रमाण-पत्र प्राप्त करने के लिए धारा 149 के प्रावधानों के अनुसार वैधानिक कार्यवाहियां पूरी करनी पड़ती है ।

6.7 पार्षद सीमा नियम

कम्पनी का सीमा नियम एक आधारभूत दस्तावेज है । यह कम्पनी का राजपत्र है, जो कम्पनी का कार्यक्षेत्र तथा उन आधारभूत शर्तों को निश्चित करता है जिनके अनुसार कम्पनी समामेलित की जाती है । इस प्रकार सीमानियम न केवल कम्पनी के हितों एवं अधिकारों के क्षेत्र की परिभाषा देता है बल्कि उनकी सीमा का निर्धारण भी करता है । इससे बाहरी व्यक्तियों को कम्पनी के उद्देश्य व अधिकार की जानकारी प्राप्त होती है । **Catman V Broughm (1918) A.C. 514.**

सीमानियम का अर्थ संस्था के मूल रुप से बने हुए अथवा कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत संशोधित, सीमानियम से है [धारा 2(28)] पार्षद सीमानियम की व्यवस्थाओं से परे कम्पनी कोई कार्य नहीं कर सकती, चाहे उसकी कितनी भी आवश्यकता क्यों न हो । कम्पनी के पार्षद सीमा नियम का परिवर्तन उसी समय सम्भव है, जबकि अधिनियम के अधीन विशेष शती को पूरा किया गया है व विशेष विधि का पालन किया गया हो । सीमानियम छपे हुए, अंकित, पैराग्राफों में विभाजित तथा सात अभिदाताओं द्वारा हस्ताक्षरित होना चाहिए । निजी कम्पनी की दशा में उस पर दो अभिदाताओं के

हस्ताक्षर होने चाहिए । प्रत्येक अभिदाता के हस्ताक्षर, कम से कम एक गवाह की उपस्थिति में होने चाहिए । गवाह को यह हस्ताक्षर प्रमाणित कर स्वयं अपने हस्ताक्षर करने चाहिए तथा अपना पता, व्यवसाय आदि सम्बन्धी विवरण भी देना चाहिये ।

पार्षद सीमानियम की विषय सामग्री

कम्पनी अधिनियम की धारा 13 के अनुसार प्रत्येक कम्पनी के पार्षद सीमानियम में निम्नलिखित विवरण होना आवश्यक है :

(1) **कम्पनी का नाम:** पब्लिक लिमिटेड कम्पनी होने की दशा में *लिमिटेड* शब्द तथा प्राइवेट लिमिटेड होने की दशा में ^प्राईवेट लिमिटेड* शब्द नाम के अन्त में लिखना आवश्यक है । सामानियम में कम्पनी के नाम का उल्लेख स्पष्ट रुप से किया जाना चाहिए । कम्पनी का नाम प्रवर्तक अपनी अच्छानुसार रख सकते हैं, लेकिन कम्पनी का नाम केन्द्र सरकार की दृष्टि में अवांछनीय नहीं होना चाहिए ।

(2) **राज्य का नाम जहां कम्पनी का रजिस्टर्ड कार्यालय हो**: उस राज्य का नाम उल्लिखित करना चाहिए जिसमें कम्पनी का रजिस्टर्ड कार्यालय स्थापित है ।

(3) **कम्पनी का उद्देश्य:** (अ) ऐसी कम्पनी की दशा में: जो कम्पनी (संशोधन) अधिनियम, 1965 के पहले से हो कम्पनी के उद्देश्यों को इकट्ठा लिखा जाता है ।

(ब) ऐसी कम्पनी की दशा में जो कम्पनी (संशोधन) अधिनियम, 1965 के बाद बनी हो: (ii) मुख्य उद्देश्य एवं मुख्य उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए सहायक उद्देश्य, तथा (ii) अन्य उद्देश्य जो उपर्युक्त में शामिल नहीं है ।

(स) ऐसी कम्पनी की दशा में, जो ट्रेडिंग कॉरपोरेशन न हो और जिसके उद्देश्य लाग होंगे ।

(4) **दायित्व -** अंशों अथवा गारण्टी द्वारा सीमित कम्पनी होने की दशा में भी लिखा होना चाहिए कि सदस्यों का दायित्व सीमित है ।

(5) **गारण्टी द्वारा सीमित कम्पनी की दशा में इसके परि-**समापन पर सदस्य द्वारा दी जाने वाली अधिकतम राशि - गारण्टी द्वारा सीमित कम्पनी होने की दशा में यह लिखा होना चाहिए कि कम्पनी का प्रत्येक सदस्य कम्पनी का परि-समापन उसकी सदस्यता के समय या सदस्यता समाप्त होने के एक वर्ष के अन्दर होने पर कम्पनी की परि-सम्पत्तियों में कम्पनी के ऋण एवं दायित्वों के भुगतान के लिए या ऐसे ऋणों और दायित्वों के भुगतान के लिए जो उसकी सदस्यता समाप्त होने के पहले के हों वसा जैसे दशा हो, और परि-समापन के व्यय एवं लागत के भुगतान के लिए तथा धन दाताओं के आसपास के अधिकारों को समायोजित करने के लिए, कितनी अधिकतम धनराशि हो, देगा । परन्तु यह राशि एक निर्धारित राशि से अधिक नहीं होनी चाहिए ।

(6) **पूंजी-अंश पूंजी वाली कम्पनी की दशा में** (असीमित दायित्व वाली कम्पनी को छोडकर) रजिस्टर्ड पूंजी की धनराशि तथा अंशों की संख्या, जिसमें वह विभाजित की जायेगी, का उल्लेख होना चाहिए।

अधिकारों के बाहर भाक्तिबाहय का सिद्धांत: 'अधिकारों के बाहर' का सिद्धान्त यह कहता है कि यदि कोई कम्पनी अपने सीमानियम द्वारा प्रदत्त अधिकार सीमा के बाहर कोई कार्य अथवा अनुबन्ध करती है तो वह कार्य व्यर्थ होता है । अधिकारों के बाहर किये जाने वाले कार्यो तथा अनुबन्धों से कम्पनी का कोई वैधानिक दायित्व उत्पन्न नहीं होता है । इन अनुबन्धों को बाद में किसी भी प्रकार से वैध

भी नहीं बनाया जा सकता है और न इन कार्यो तथा अनुबन्धों की पुष्टि या अनुसमर्थन (retification) ही किया जा सकता है । इतना ही नहीं, यदि **कम्पनी के सभी सदस्य मिलकर सर्वसम्मति से 'अधिकारों के बाहर' के कार्यो का पुष्टिकरण या अनुसमर्थन करने का प्रस्ताव भी पारित करें तो भी कार्यो को वैध नहीं बनाया जा सकता है ।**

एशबरी रेलवे केरीज एण्ड आईरन कम्पनी लि. बनाम रिके ।

शक्तिबाहम सिद्धान्त के अपबाद (Exceptions to the doctrine of ultra vires)

1. यदि कोई कार्य संचालकों के लिए शक्तिबाह्य है, किन्तु कम्पनी के अधिकार-क्षेत्र के अन्तर्गत है, तो कम्पनी उसकी पुष्टि कर सकती है ।
2. यदि कोई कार्य कम्पनी के अन्तर्नियमों के लिए शक्तिबाह्य है, तो उस कार्य की कम्पनी के अधिकारो में शामिल करने के उद्देश्य से अन्तर्नियमों में परिवर्तन किया जा सकता है ।
3. यदि कोई कार्य कम्पनी के अधिकार-क्षेत्र के अंतर्गत तो है किन्तु अनियमित ढंग से किया गया है, तो सारे शेयरधारी मिलकर उसकी पुष्टि कर सकते हैं ।
4. यदि कोई व्यक्ति एक शक्तिबाह्य अनुबंध के अन्तर्गत कम्पनी से रुपया उधार लेता है, तो रुपये की वसूली के लिए कम्पनी उस पर दावा कर सकती है ।
5. यदि कम्पनी ने एक शक्तिबाह्य ऋण के अन्तर्गत किसी अन्य पक्ष से कोई संपत्ति खरीदी है, तो ऐसा अन्य रुप में हो ।

6.8 पार्षद अन्तर्नियम

कम्पनी अधिनियम की धारा 2(2) के अनुसार अन्तर्नियमों का आशय एक कम्पनी के उन पार्षद अन्तर्नियमों से है जो किसी पिछले अधिनियम अथवा अधिनियम के अधीन मूल रुप से बनाया गया अथवा समय-समय पर परिवर्तित किया गया है ।

पार्षद अन्तर्नियम कम्पनी के आन्तरिक नियम होते हैं अत: एक कम्पनी के पार्षद अन्तर्नियम में साधारणतया उन सब व्यवस्थाओं का प्रावधान किया जाता है, जो कम्पनी के आन्तरिक प्रबन्ध एवं संचालन से संबंधित होती है इसमें कम्पनी एवं अंशधारियों के तथा अंशधारियों के आपस में अधिकारों तथा दायित्वों के बारे में भी विनिमय बनाए जाते हैं । अनुसूची । की सारणी 'क' के अनुसार विषयों से सम्बन्धित विनियम होने चाहिए ।

कम्पनी किसी भी समय अपनी साधारण सभा में विशेष प्रस्ताव पारित करके अन्तर्नियमों में परिवर्तन कर सकता है । कम्पनी के अन्तर्नियमों में परिवर्तन करना कम्पनी का मौलिक अधिकार है जिसे कोई भी कानून छीन नहीं सकता है । अन्तर्नियमों के परिवर्तनों पर लगाई गई रोक अवैध होती है । अन्तर्नियमों में परिवर्तन हो जाने के बाद कम्पनी के सभी सदस्य उन परिवर्तित अन्तर्नियमों से ठीक उसी प्रकार से बाध्य होते हैं मानों वे परिवर्तित अन्तर्नियम उनके सदस्य बनने से पहले ही विद्यमान थे (धारा 31(2)

6.9 आन्तरिक प्रबन्ध का सिद्धान्त

कम्पनी से व्यवहार करने वाले बाहरी व्यक्तियों को यह मान लेने का अधिकार है कि कम्पनी की प्रत्येक आन्तरिक कार्यवाही नियमित ढंग से की गई है । उनको यह उत्तरदायित्व तो है कि वे कम्पनी के पंजीकृत दस्तावेजों को पढ़ कर इस बात का पता लगाऐं कि प्रस्तावित व्यवहार तथा उन दस्तावेजों

में कोई असंगति या विरोधाभास नहीं है, किन्तु वे इससे अधिक कुछ करने के लिए बाध्य नहीं है । प्रलक्षित सूचना के सिद्धान्त की इस मर्यादा को आन्तरिक प्रबन्ध का सिद्धांत अथवा **Royal Britist Bank V Turquand (1856) 25 L.S.Q.B. 317** के मामले में प्रतिपादित नियम कहते हैं ।

आन्तरिक प्रबन्ध के सिद्धान्त के अपवाद :

1. जब अनियमितता की जानकारी हो,
2. अनियमितता का संदेह हो,
3. जालसाजी की दशा में - रुबेन बनाम ग्रेट कन्सोलिडेटेड लि.,
4. अन्तर्नियमों की जानकारी न होने पर,
5. प्रत्यक्ष अधिकार के बाहर कार्य हो,
6. जब जांच पड़ताल करना आवश्यक हो,
7. यदि अनुबन्ध कम्पनी के व्यापार से असंगत हो ।

प्रविवरण या विवरण पत्रिका :

प्रविवरण का आशय एक ऐसे प्रपत्र से है जो कम्पनी द्वारा अपने समामेलन के पश्चात् प्रविवरण के रुप में वर्णित अथवा अन्य प्रपत्र सम्मिलित किये जाते हैं जो संस्था के अंशों या ऋण-पत्रों के खरीदने अथवा निक्षेपों के लिए जनता से प्रस्ताव आमंत्रित करते हैं ।

भारतीय कम्पनी अधिनियम, 1958 की धारा 64(1)2 के अनुसार :

जब कम्पनी अपने अंशों अथवा ऋण-पत्रों को इस उद्देश्य से निर्गमन करती है या निर्गमित करने के लिए सहमत होती है कि उन अंशों या ऋण-पत्रों में से समस्त या कुछ जनता को विक्रय करने के लिए प्रस्ताव किया जाता है, सभी उद्देश्यों के लिए कम्पनी द्वारा निर्गमित प्रविवरण की तरह माना जाता है।

प्रविवरण कम्पनी के एजेन्टों द्वारा भी निर्गमित किया जा सकता है । निर्गमित विवरण पत्रिका पर तिथि अवश्य पड़ी होनी चाहिए । यह तिथि ही इसके निर्गमन की तिथि मानी जाती है । (धारा 55) इसके अलावा निर्गमन के लिए प्रविवरण की एक प्रतिलिपि प्रत्येक ऐसे संचालक द्वारा हस्ताक्षरित जिनका नाम विवरण पत्रिका में दिया हुआ हो कुछ अन्य प्रपत्रों के साथ रजिस्ट्रार के पास रजिस्ट्रेशन के लिए भेजा जाना चाहिए ।

प्रविवरण में भूल तथा मिथ्यावर्णन

प्रविवरण एक अत्यन्त महत्वपूर्ण सार्वजनिक प्रलेख है, जो किसी कम्पनी और अंशधारियों के मध्य अनुबन्ध का आधार है । इसमें वर्णित बातों एवं तथ्यों पर विश्वास करके ही जनता कम्पनी के अंशों एवं ऋण-पत्रों के क्रय के लिए प्रेरित होती है ।

अत: इसने किसी प्रकार की भूल, असत्य कथन एवम् किसी भी बात को छिपाने का प्रयास नहीं होना चाहिए ।

कम्पनी के दायित्व या कम्पनी के विरुद्ध अधिकार

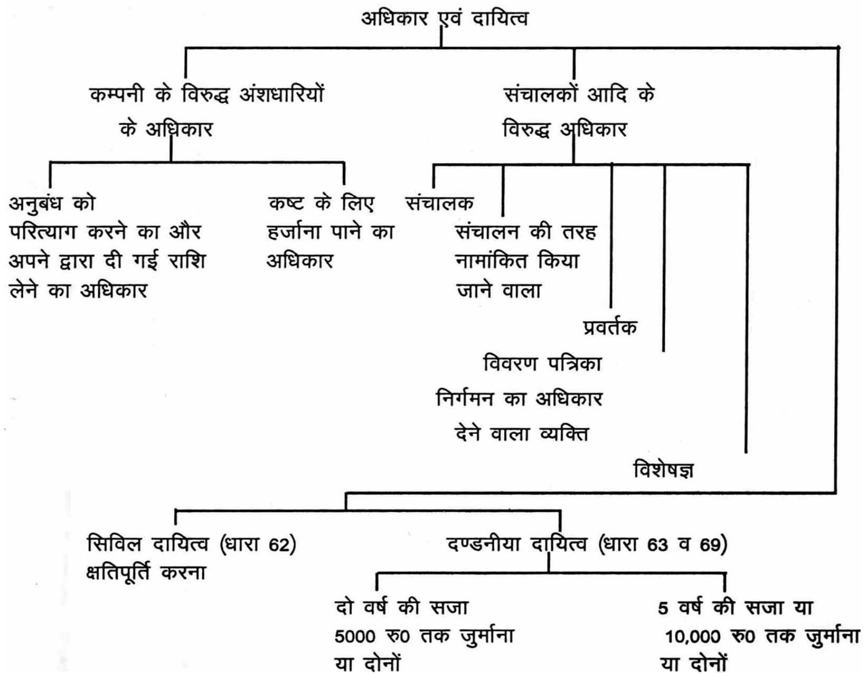

कम्पनी की सदस्यता :

वह प्रत्येक व्यक्ति जिसका नाम कम्पनी के सदस्यों के रजिस्टर अथवा डिपोजिटरी अभिलेख में हितधारी स्वामी के रुप में लिखा हुआ हो एवं जिसने कम्पनी का सदस्य बनने के लिए लिखित रुप में सहमति दी हो, कम्पनी का सदस्य कहलाता है ।

धारा 41(i) के अनुसार -

कम्पनी के पार्षद सीमानियम पर हस्ताक्षर करने वाले व्यक्ति कम्पनी के सदस्य माने जाते हैं तथा कम्पनी के रजिस्ट्रेशन के पश्चात् सदस्यों के रजिस्टर में उनका नाम सदस्यों की तरह लिखा जाता है ।

कम्पनी के सदस्य तथा शेयरधारी शब्दों को एक दूसरे के समानार्थी शब्द के रुप में प्रयुक्त किया जाता है । अंश द्वारा सीमित कम्पनी, शेयर-पूँजी वाली गारंटी द्वारा सीमित कम्पनी तथा निर्धारित शेयर में विभाजित पूंजी वाली असीमित कम्पनी की स्थिति में सचमुच वे शब्द समानार्थी ही है । किन्तु किसी असीमित कम्पनी अथवा गारंटी द्वारा सीमित कम्पनी के सदस्य उसके शेयरधारी भी हो, यह आवश्यक नहीं क्योंकि ऐसी कम्पनियों के लिए अंशपूंजी रखना पूर्णतया ऐच्छिक है ।

सदस्य कौन हो सकता है?

अनुबन्ध करने हेतु सक्षम प्रत्येक व्यक्ति कम्पनी का सदस्य बन सकता है । किन्तु यह कम्पनी के अन्तर्नियमों में निर्दिष्ट प्रावधानों के अनुसार होता है । सदस्य बनने के लिए क्षमता के सम्बन्ध में अनुबन्ध अधिनियम के "अनुबन्ध करने की क्षमता" सम्बन्धी प्रावधान लाग होती है । सामान्यत: निम्नलिखित प्रकार के व्यक्ति कम्पनी के सदस्य बनाये जा सकते हैं :

1. **अनुबन्ध करने की क्षमता रखने वाला व्यक्ति** एक व्यस्क, स्वथ्य मस्तिष्क का व्यक्ति तथा प्रत्येक ऐसा व्यक्ति जिसे राजनियम द्वारा अनुबन्ध करने के अयोग्य घोषित नहीं किया गया है, कम्पनी

का सदस्य बन सकता है । अवयस्क व्यक्ति अनुबन्ध करने की क्षमता नहीं रखता है और उसके द्वारा किया गया ठहराव प्रारम्भ से ही व्यर्थ होता है ।

2. **साझेदारी फर्म** - कोई भी साझेदारी फर्म सामान्यत: किसी भी कम्पनी की सदस्य नहीं बन सकती है क्योंकि साझेदारों का साझेदारी फर्म से पृथक अस्तित्व नहीं होता है । धारा 25 के अधीन स्थापित कम्पनियां जैसे कि कला, वाणिज्य, विज्ञान आदि के विकास के लिए स्थापित कम्पनी में साझेदारी फर्म भी सदस्य हो सकती है ।

3. संयुक्त हिन्दू परिवार.

4. विवाहित स्त्री,

5. विदेशी व्यक्ति,

6. **अनिवासी व्यक्ति** - धारा 19, विदेशी विनिमय नियमन अधिनियम, 1973 के अनुसार अनिवासी व्यक्ति भारत में समामेलित किसी भी कम्पनी का सदस्य भारतीय रिजर्व बैंक की आज्ञा के बिना नहीं बन सकता है ।

7. कम्पनी.

8. **सहायक कम्पनी -** कोई सहायक कम्पनी अपनी सूत्रधारी कम्पनी की सदस्य नहीं बन सकती है।

9. प्रन्यासी ।

10. पंजीकृत समिति ।

11. **काल्पनिक व्यक्ति -** कोई व्यक्ति किसी काल्पनिक नाम से कम्पनी के अंश नहीं खरीद सकता है और न कम्पनी से अंश आवंटन के लिए प्रार्थना-पत्र ही दे सकता है ।

सदस्य बनने की विधियाँ (धारा 41)

कम्पनी में सदस्यता प्राप्त करने की अनेक विधियां है, प्रमुख विधियाँ निम्नलिखित हैः-

1. सीमा नियम पर अभिदान द्वारा सदस्यता ।

2. आवेदन तथा पंजीकरण द्वारा सदस्यता - किसी व्यक्ति के नाम का कम्पनी सदस्य के रुप में पंजीकरण निम्नलिखित में से किसी एक पद्धति से उत्पन्न हो सकता है :

(i) आवेदन तथा आवंटन द्वारा ।

(ii) हस्तान्तरण द्वारा ।

(iii) उत्तराधिकार द्वारा ।

(iv) मौन सम्मति अथवा निषेध द्वारा ।

3. योग्यता-शेयरों द्वारा सदस्यता ।

सदस्यता की समाप्ति :

कम्पनी की सदस्यता उस समय समाप्त हो जाती है जब पर्याप्त एवं उचित कारणों से उसका नाम सदस्यों के रजिस्टर में से हटा दिया जाता है । निम्नलिखित दशाओं में से किसी भी दशा में एक व्यक्ति की सदस्यता समाप्त हो जाती है :

1. अंश हस्तान्तरण द्वारा,
2. अंश हरण या जब्त द्वारा,
3. अंशों के समर्पण द्वारा,

4. अनुबन्ध को निरस्त करके,
5. अंशधारी की मृत्यु हो जाने पर,
6. शोध्य पूर्वाधिकार अंशों के शोधन द्वारा,
7. अंश अधि-पत्र लेने पर,
8. सदस्य के दिवालिया होने पर,
9. अनियमित आवंटन पर,
10. न्यायालय अथवा ट्रिब्यूनल के आदेश से अंश वापिस लेने पर,
11. कम्पनी की समाप्ति होने पर,
12. अंशों के पुन: क्रय द्वारा ।

6.10 संचालक

संचालकों की परिभाषा तथा अर्थ -

कम्पनी अधिनियम की धारा 2(13) के अनुसार, संचालक से ऐसे व्यक्ति से तात्पर्य है, जो संचालक का स्थान ग्रहण किये हुये हो, चाहे उसे जिस नाम से भी पुकारा जाये । इस प्रकार संचालक वह व्यक्ति होता है जो कम्पनी के निदेशन, व्यवहारों, प्रबन्ध तथा देख-रेख पर नियन्त्रण रखता है।

कम्पनी अधिनियम में संचालकों की न्यूनतम संख्या तो निर्धारित की गयी है किन्तु अधिकतम संख्या नहीं । संचालकों की न्यूनतम व अधिकतम संख्या कम्पनी के अन्तर्नियम द्वारा निर्धारित की जा सकती है ।

धारा (259) के अनुसार एक पब्लिक या एक ऐसी प्राईवेट कम्पनी में, जो पब्लिक कम्पनी की सहायक है, संचालकों की संख्या को (12 से अधिक) केन्द्र सरकार की सहमति के बिना नहीं बढ़ाया जा सकता है । कम्पनी में केवल व्यक्ति ही संचालक की तरह नियुक्त किये जा सकते हैं ।

कोई भी व्यक्ति एक समय में 20 से अधिक कम्पनियों में संचालक के रुप में कार्य नहीं कर सकता है (धारा 275)।

संचालकों की नियुक्ति की विधियॉ

संचालकों की नियुक्ति निम्नलिखित रीतियों से की जा सकती है.

I. **प्रथम संचालकों की नियुक्ति -** प्रथम संचालक को प्रवर्तकों द्वारा नियुक्त संचालकों के नाम से पुकारा जाता है और इनकी नियुक्ति कम्पनी के अन्तर्नियमों की व्यवस्थाओं के अनुसार ही की जाती है । यदि अन्तनियम पंजीकृत न हो तो सीमानियम पर हस्ताक्षर करने वाले सभी व्यक्ति कम्पनी के प्रथम संचालक माने जायेंगे (धारा 2घ54)

II. सदस्यों द्वारा सामान्य सभा में नियुक्ति ।

III. संचालक मण्डल द्वारा अतिरिक्त संचालकों, आकस्मिक रिक्तता की स्थिति में नियुक्ति व वैकल्पिक संचालकों की नियुक्ति की जा सकती है ।

IV. तृतीय पक्षकार जैसे कि ऋण-पत्रधारियो बैंक अन्य वित्तीय संस्थाओं आदि के द्वारा भी कम्पनी के संचालकों की नियुक्ति की जा सकती है परन्तु इस प्रकार नियुक्त संचालकों की संख्या संचालक मण्डल की कुल सदस्य संख्या के 1/3 भाग से अधिक नहीं होनी चाहिये ।

V. केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्ति - कम्पनी (संशोधन) अधिनियम, व1988 की धारा 408 के अनुसार केन्द्र सरकार कम्पनी विधान मण्डल के आदेश से कम्पनी, जनता अथवा अंशधारियों के हितों की प्रभावकारी ढंग से सुरक्षा हेतु संचालक नियुक्त कर सकती है ।

VI. आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली द्वारा नियुक्ति ।

संचालकों को हटाना

कम्पनी के संचालकों को अंशधारियों द्वारा (धारा 284), केन्द्रीय सरकार द्वारा (धाराऐ338-B से 338-E) कम्पनी विधान मण्डल द्वारा (धारा 397,398 से 402) द्वारा हटाया जा सकता है ।

कम्पनी अधिनियम के अनुसार किसी भी कम्पनी के संचालकों के लिए योग्यता अंश लेना अनिवार्य नहीं है परन्तु कम्पनी (स्वतन्त्र निजी कम्पनी को छोडकर) अपने अन्तर्नियमों में योग्यता अंशों की संख्या निर्धारित कर सकती है । (धारा 275)

प्रबन्ध संचालक / पूर्णकालिक संचालन

धारा 2(26) के अनुसार प्रबन्ध संचालक का आशय एक ऐसे संचालक से है, जिसे कम्पनी के साथ हुए अनुबन्ध के द्वारा था । कम्पनी की सामान्य सभा में पारित प्रस्ताव द्वारा या संचालक मण्डल के द्वारा पारित प्रस्ताव या कम्पनी के पार्षद सीमानियम या पार्षद अन्तर्नियमों द्वारा जिसे प्रबन्ध के पर्याप्त अधिकार दिये जाते हैं, जिन्हें कि वह ऐसा न होने पर प्रयोग नहीं कर सकता या, इसमें ऐसा संचालक भी शामिल किया जाता है जो कि प्रबन्ध संचालक का स्थान ग्रहण किये हुए हो और चाहे उसे किसी भी नाम से पुकारा जाता हो ।

एक कम्पनी का कोई संचालक ही प्रबन्ध संचालक बन सकता है अन्य कोई व्यक्ति नहीं । एक सार्वजनिक कम्पनी अथवा उसकी सहायक निजी कम्पनी जिसकी चुकता पूँजी 5 करोड़ रुपये या अधिक है, उन कम्पनियों में एक प्रबन्ध संचालक / पूर्णका।लेक संचालक / प्रबन्धक की नियुक्ति करना अनिवार्य है । [धारा 269(i)]

प्रबन्ध संचालक को पारिश्रमिक के रुप में मासिक आधार पर एक निश्चित धनराशि अथवा कम्पनी के शुद्ध लाभों के निश्चित प्रतिशत अथवा दोनों ही तरीकों से भुगतान किया जा सकता है । किन्तु केन्द्रीय सरकार की अनुमति के बिना प्रबन्ध संचालक का पारिश्रमिक किसी भी दशा में शुद्ध लाभों के पाँच प्रतिशत से अधिक नहीं हो सकता है । (धारा 309)

6.11 प्रबन्धक

गिब्सन बनाम वर्टन के मामले में **न्यायाधीश ब्लेकबर्न** के अनुसार प्रबन्धक एक ऐसा व्यक्ति होता है जो कम्पनी के प्रबन्ध सम्बन्धी लगभग सम्पूर्ण अधिकार अथवा शक्ति रखता है । वह किसी विशेष कार्य के लिए एजेण्ट नहीं है और न आदेशों के पालन के लिए कर्मचारी ही, बल्कि वह एक ऐसा व्यक्ति है जिसे कम्पनी का व्यवसाय चलाने की सम्पूर्ण शक्ति प्राप्त होती है।

प्रबन्धक के पद पर किसी व्यक्ति की ही नियुक्ति की जा सकती है (धारा 384) सामान्यत: एक व्यक्ति एक ही कम्पनी का प्रबन्धक हो सकता है । प्रबन्धक के पारिश्रमिक का भुगतान मासिक वेतन के आधार पर अथवा कम्पनी के शुद्ध लाभों के किसी निश्चित प्रतिशत आधार पर अथवा दोनों ही आधारों पर किया जा सकता है । (धारा 387)

कम्पनी की सभाऐं

सभाओं की कम्पनी के प्रबन्ध व संचालन में महत्वपूर्ण भूमिका होती है । कम्पनी के अंशधारी, ऋणदाता तथा संचालकगण समय-समय पर विभिन्न कार्यों के लिए सभाओं का आयोजन करके विचार विमर्श करते हैं ।

I. अंशधारियों या सदस्यों की सभाऐं -

(i) **वैधानिक सभा** - ये वो सभा है जो कि प्रत्येक अंशों द्‌वारा सीमित कम्पनी जिसमें कि अंश पूँजी है, व्यवसाय प्रारंभ करने का प्रमाण-पत्र प्राप्त होने की तिथि के एक महीने के पश्चात् किन्तु छः महीनों के भीतर कम्पनी के सदस्यों की एक साधारण सभा अनिवार्य रुप से बुलानी पड़ती है । [धारा 165(1)]

(ii) **वार्षिक साधारण सभा -** प्रत्येक कम्पनी द्‌वारा वर्ष में एक बार अपने सदस्यों की जो सभा बुलायी जाती है वह वार्षिक साधारण सभा कहलाती है । यह कम्पनी की अन्य सभाओं के अतिरिक्त होती है । [धारा 166(i)]

(iii) **असाधारण सभा -** वैधानिक सभा के अतिरिक्त यदि कम्पनी सदस्यों की कोई सभा आयोजित करती है तो वह असाधारण सामान्य सभा कहलाती है ।

(iv) **वर्ग सभाऐं -** जब किसी वर्ग या श्रेणी विशेष के सदस्यों जैसे कि साधारण अंशधारियों की सभा या पूर्वाधिकार अंशधारियों की सभा के रूप में सभा बुलाई जाती है तो उसे वर्ग सभा कहते हैं ।

II. संचालक मण्डल की सभाऐं

कम्पनी के प्रबन्ध को सुचारु रुप से बनाये रखने तथा सदस्यों के हितों की सुरक्षा के लिए संचालक मण्डल निरन्तर सभाऐं बुलाता है जिन्हें संचालक मण्डल की सभाऐं कहा जाता है ।

III. **कभी-कभी** कम्पनी के ऋणदाता भी अपनी सभाऐं आयोजित करते हैं, ऐसी सभाओं को ऋण-पत्रधारियों की सभा कहा जाता है ।

वैध सभा की आवश्यक बातें.

कम्पनी की सभा की वैद्‌यता कुछ निश्चित बातों पर निर्भर करती है । कम्पनी से आयोजित की जाने वाली सभाऐं वैध होनी चाहिये अन्यथा इनमें लिए गये निर्णय तथा पारित प्रस्ताव वैधानिक स्वरुप नहीं ले सकेंगे । ये बातें निम्नांकित है -

1. सभा उचित प्राधिकारी या अधिकृत व्यक्ति द्‌वारा बुलाई जानी चाहिये ।
2. सभा में उपस्थित होने का अधिकार रखने वाले सभी व्यक्तियों को उचित सूचना ।
3. सभा के अध्यक्ष की उचित रुप से नियुक्ति ।
4. सभा की निश्चित कार्यसूची या कार्यावली ।
5. सभा में गणपूर्ति या कार्यावाहक संख्या की उपस्थिति ।
6. सभाऐं उचित ढंग से आयोजित की जानी चाहिये ।
7. सभा में प्रतिपुरुष की नियमानुसार नियुक्ति ।
8. सभा में सुझाव व प्रस्ताव उचित तरीके से स्वीकार किये जाने चाहिए ।
9. उचित तरीके से मतदान ।
10. सभा की कार्यवाही का कार्यवृत लिखा जाना चाहिये ।
11. सभा का नियमानुसार स्थगन ।

6.12 कम्पनी का समापन

कम्पनी के समापन से तात्पर्य उस प्रक्रिया से है जिसके द्वारा कम्पनी के वैधानिक अस्तित्व को क्रमश: समाप्त किया जाता है । इस प्रक्रिया में कम्पनी की सम्पत्तियों का मूल्य प्राप्त करके ऋणदाताओं को उनके ऋणों का भुगतान किया जाता है तथा शेष बचे धन तथा सम्पत्तियों को अंशधारियों में बांट दिया जाता है ।

कम्पनी के समापन तथा समाप्ति में अन्तर है । समापन के द्वारा कम्पनी का वैधानिक अस्तित्व समाप्त हो जाता है और समाप्ति के द्वारा कम्पनी का पूर्ण अस्तित्व समाप्त हो जाता है।

कम्पनी के समापन की विधियॉ

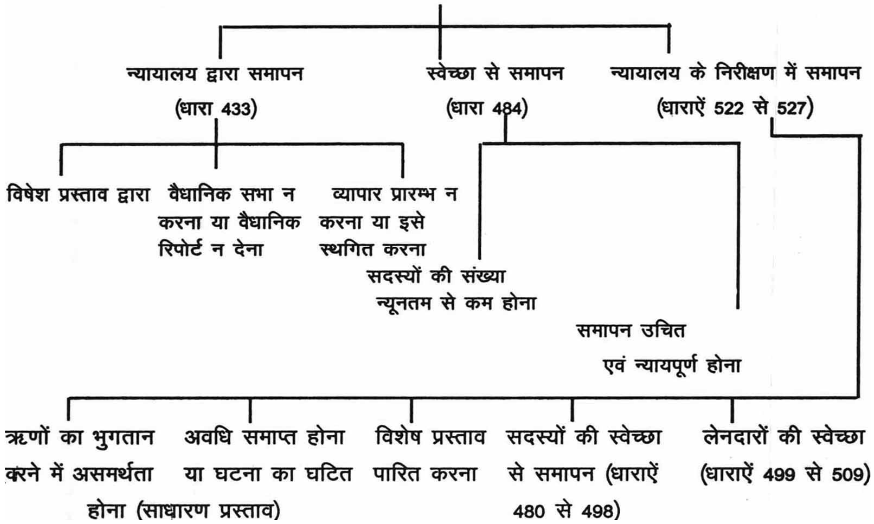

I. **न्यायालय द्‌वारा समापन** - इसे अनिवार्य समापन भी कहा जाता है । एक कम्पनी के लिए समापन का आदेश प्राप्त होने के बाद सरकार द्‌वारा नियुक्त एक सरकारी निस्तारक लगाया जाता है जो पूर्ण समय के लिए अधिकारी होता है।

II. **स्वेच्छा से समापन -** जब कम्पनी के सदस्य एवं लेनदार न्यायालय के हस्तक्षेप के बिना समापन सम्बन्धी विवरण तय करते हैं, तो इसे स्वेच्छा से समापन कहते है । किसी कम्पनी का स्वेच्छा से समापन साधारण प्रस्ताव द्‌वारा या विशेष प्रस्ताव द्‌वारा हो सकता है । जब कम्पनी के संचालकों द्‌वारा रजिस्ट्रार के पास कम्पनी की शोधन क्षमता की कोई घोषणा प्रस्तुत नही की जाती है, तो इस दशा में जो समापन होता है उसे लेनदानों की स्वेच्छा से समापन कहा जाता है ।

6.13 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. कम्पनी कानून द्‌वारा निर्मित एक कृत्रिम व्यक्ति है जो ठीक एक व्यक्ति की तरह है किन्तु जिसका कोई भौतिक अस्तित्व नहीं होता है।' पूर्ण रुप से समझाइए ।
2. सीमानियम तथा अन्तर्नियम 'सार्वजनिक प्रलेख' है । इस कथन को समझाइए और इस संबंध में आन्तरिक प्रबन्ध के सिद्धान्त की विवेचना कीजिए ।
3. प्रबन्धक के सम्बन्ध में वैधानिक व्यवस्थाओं का वर्णन कीजिए तथा प्रबन्ध संचालन एवं प्रबन्धक में अन्तर स्पष्ट कीजिए ।

4. वैधानिक सभा, वार्षिक साधारण एवं असाधारण व्यापक सभा क्या होती है? ऐसी सभा बुलाने से संबंधित नियमों का उल्लेख कीजिए ।
5. ऐच्छिक समापन की क्या दशाऐं है तथा ऐसे समापन के क्या प्रभाव होते हैं? ऐसे समापन की क्या विधि है?

6.14 संदर्भ पुस्तकें

1. कम्पनी अधिनियम एवं सचिवीय पद्धति - डॉ. आर.एल. नौलखा
2. कम्पनी अधिनियम एवं सचिवीय पद्धुति - डॉ. एस.एम. शुल्क
3. कम्पनी अधिनियम - चूण्डावत, खींचा, जोशी
4. कम्पनी सन्नियम - एन.डी. कपूर, दिनकर पगारे, भारत भूषण

इकाई-7: श्रम सन्नियम (Labour Law)

इकाई की रूपरेखा :

7.1 उद्देश्य
7.2 परिचय
7.3 कारखाना अधिनियम, 1948
7.4 औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947
7.5 श्रम अधिनियम, 1926
7.6 न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948
7.7 प्रसूति लाभ अधिनियम, 1961
7.8 उपदान भुगतान अधिनियम, 1972
7.9 कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948
7.10 मजदूरी/भृत्ति भुगतान अधिनियम, 1936
7.11 अभ्यासार्थ प्रश्न
7.12 संदर्भ पुस्तकें

7.1 उद्देश्य:

- श्रम सन्नियम के अधीन अधिनियमों की जानकारी प्राप्त करना ।
- श्रम सन्नियम के विभिन्न अधिनियमों के प्रावधानों की विवेचना करना ।
- श्रम सन्नियम के अधीन अधिनियमों में दण्ड, कार्य विधि एवं पूरक प्रावधानों को प्रस्तुत करना।

7.2 परिचय

"औद्योगिक सन्नियम" का आशय उस विधान से है जो औद्योगिक संस्थानों, उनमें कार्यरत श्रमिकों एवं उद्योगपतियों पर लाग होता है । इसे हम दो भागों में बांट सकते हैं:-

(1) उद्योग एवं श्रम सम्बन्धी विधान (Legislation pertaining to Factory and Labour), तथा

(2) सामाजिक सुरक्षा सम्बन्धी विधान (Legislation pertaining to Social Security)

उद्योग तथा श्रम सम्बन्धी विधान में से वे सब अधिनियम आते हैं जो कारखाने तथा श्रमिकों के काम की दशाओं का नियमन करते हैं तथा कारखानों के मालिकों और श्रमिकों के दायित्व का उल्लेख करते हैं । कारखाना अधिनियम, 1948; औद्योगिक संघर्ष अधिनियम, 1947; भारतीय श्रम संघ अधिनियम, 1926; भूति-भुगतान अधिनियम 1936; श्रमजीवी क्षतिपूर्ति अधिनियम, 1923 इत्यादि उद्योग तथा श्रम सम्बन्धी विधान की श्रेणी में आते हैं ।

सामाजिक सुरक्षा सम्बन्धी विधान के अन्तर्गत वे समस्त अधिनियम आते हैं जो श्रमिकों के लिए विभिन्न सामाजिक लाभों-बीमारी, प्रसूती, रोजगार सम्बन्धी आघात, प्रॉविडेण्ट फण्ड, न्यूनतम मजदूरी इत्यादि-की व्यवस्था करते हैं । इस श्रेणी में कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948; कर्मचारी प्रॉविडेण्ट फण्ड अधिनियम, 1952; न्यूनतम भृत्ति अधिनियम, व 1948; कोयला, खान श्रमिक कल्याण कोष अधिनियम, 1947; भारतीय गोदी श्रमिक अधिनियम, 1934 खदान अधिनियम, 1952;

तथा मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961 इत्यादि प्रमुख है । वर्तमान में 128 श्रम तथा औद्योगिक विधान लागू हैं ।

7.3 कारखाना अधिनियम. 1948

प्रस्तुत अधिनियम संक्षेप में, **कारखाना अधिनियम,** 1948" कहा जा सकता है । यह सारे भारत पर लागू होता है । **वे समस्त (शासकीय तथा अशासकीय) औद्योगिक संस्थान इस अधिनियम के क्षेत्र के अन्तर्गत आते हैं जो इस अधिनियम की धारा 2 (एम) में वर्णित "कारखाना" (Fectory) की भार्तो को पूरा करते हैं ।**

इस अधिनियम में 120 धाराऐं हैं । जहां निर्माण प्रकिया शक्ति (Power) की सहायता से संचालित होती हो वहां दस या दस से अधिक श्रमिक और जहां निर्माण प्रक्रिया बिना शक्ति की सहायता से संचालित होती तो वहां बीस या बीस से अधिक श्रमिक नियुक्त होने पर यह अधिनियम लागू हो जाता है, किन्तु धारा 85 के अन्तर्गत राज्य सरकार उस स्थान को भी कारखाना मान सकती है जहां उपर्युक्त संख्या से कम श्रमिक नियुक्त हों । यह अधिनियम केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों के कारखानों पर भी लागू होता है ।

स्वीकृति. लायसेंसिंग तथा पंजीयन की कार्य विधि

कारखानों की स्वीकृति, लायसेंसिंग एवं पंजीयन की कार्यविधि का उल्लेख धारा 6 तथा 7 में किया गया है । पंजीयन एवं लायसेंसिंग के लिए आवेदन करने का दायित्व परिभोगी पर रहता है । आवेदन राज्य सरकार या मुख्य निरीक्षक के समक्ष प्रस्तुत करना पड़ता है । आवेदन में निर्धारित विवरण होना तथा इसके साथ निर्धारित शुल्क भेजना आवश्यक है । आवेदन की जांच-पड़ताल की जाती है और तत्पश्चात् कारखाने की स्वीकृति, लायसेंसिंग या नवीनीकरण की अनुमति प्रदान की जाती है । बिना लाइसेन्स प्राप्त किए व्यवसाय को चलाना निरन्तर जारी रहने वाला अपराध समझा जाएगा।

कार्य की दशाओं सम्बन्धी कारखाना अधिनियम के प्रावधान

I स्वास्थ्य सम्बन्धी प्रावधान (धाराएं 11-20)

II श्रमिक सुरक्षा सम्बन्धी प्रावधान (धाराएं 21-24)

III श्रमिक कल्याण सम्बन्धी प्रावधान (धाराएं 42-50)

IV कार्य के घंटे सम्बन्धी प्रावधान (धाराएं 51-66)

V नवयुवकों की नियुक्ति सम्बन्धी प्रावधान (धाराएं 67-77)

VI सवैतनिक अवकाश सम्बन्धी प्रावधान (धाराएं 78-84)

VII अपराधों के लिए दण्ड आदि (धाराएं 92-120)

अपराधों के लिए दण्ड - इस अधिनियम के अन्तर्गत बनाए गए किसी भी प्रावधान या नियम अथवा लिखित में दिए गए किसी आदेश का उल्लंघन करने पर कारखाने का परिभोगी तथा प्रबन्धक प्रत्येक को दोषी माना जाएगा और उन्हें 2 वर्ष तक की कैद अथवा एक लाख रुपए तक के अर्थदण्ड या दोनों से दण्डित किया जा सकता है । यदि ऐसी सजा के बाद भी अपराध जारी रहता है तो अपराध जारी रहने के प्रत्येक दिन के लिए 1,000 रु. तक के अर्थदण्ड से दण्डित किया जा सकता है ।

7.4 औद्योगिक विवाद अधिनियम. 1947

अधिनियम 1 अप्रैल. 1947 सम्पूर्ण भारत वर्ष पर लाग होता है । इस अधिनियम में कुल 40 धाराऐं तथा पांच अनुसूचियां हैं ।

इस अधिनियम का उद्देश्य हड़ताल या तालेबन्दी की शक्ति से औद्योगिक विवादों का दबाने के स्थान पर उनका समाधान न्यायोचित तन्त्र (machinary) के अन्तर्गत परस्पर समझौते, पंचनिर्णय, श्रम न्यायालय, ट्रिब्यूनल, आदि के द्वारा करना है । औद्योगिक संघर्ष के पक्षकारों को इस अधिनियम द्वारा इस बात का अवसर दिया जाता है कि वे स्वतन्त्र एवं निष्पक्ष ट्रिब्यूनल द्वारा निर्धारित शर्तो को आधार मानकर संघर्ष का निपटारा करने में सफल हो सकें ।

उद्योग

उद्योग का तत्पर्य किसी ऐसी व्यवस्थित क्रिया से है जो किसी सेवायोजक तथा उसके श्रमिकों (चाहे ऐसे श्रमिक किसी ऐसे सेवायोजक द्वारा प्रत्यक्ष रुप से नियुक्त किये गये हों अथवा किसी एजेन्सी या ठेकेदार के माध्यम से नियुक्त किये गये हो) के सहयोग से वस्तुओं अथवा सेवाओं के उत्पादन, आपूर्ति अथवा वितरण के लिए की जाती है ।

औद्योगिक विवादों का निबटाना एवं कार्यविधि (धारा 3 से 21)

औद्योगिक विवादों को रोकने तथा उनका निबटारा करने के लिए औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 के अन्तर्गत निम्न तन्त्रों की व्यवस्था की गई है.

(1) कार्यशाला समितियां, (2) शिकायत निबटान अधिकारी, (3) समझौता अधिकारी, (4) समझौता बोर्ड, (5) जांच समितियां, (8) श्रम न्यायालय, (7) औद्योगिक न्यायाधिकरण या ट्रिब्यूनल, (8) राष्ट्रीय न्यायाधिकरण या ट्रिब्यूनल, तथा (9) पंचनिर्णय ।

इनमें से प्रथम पांच तन्त्र तो औद्योगिक विवाद उत्पन्न न होने देने. पक्षकारों में परस्पर अच्छे सम्बन्ध स्थापित करने और यदि विवाद उत्पन्न हो गया हो तो पक्षकारों में परस्पर समझौते द्वारा उसे शान्त करने तथा विवाद की जांच, आदि के लिए बनाए गए हैं । शेष तन्त्र न्यायालयीन कार्यवाही करने एवं उनके सम्बन्ध में फैसला देने के लिए बनाए गए हैं अर्थात् किसी भी प्रकार समझौता नहीं हो सके तो विवाद के सम्बन्ध में न्यायालयीन कार्यविधि अपनायी जाती है तथा अन्य मुकदमों की भांति विवाद की सुनवाई करने के पश्चात् उन पर फैसला दिया जाता है जिससे संबंधित पक्षकार बाध्य होते हैं ।

हड़ताल एवं तालाबन्दी

इस अधिनियम में हडताल एवं तालाबन्दी पर निषेध सम्बन्धी प्रमुख प्रावधान निम्नानुसार है।

1. **जन उपयोगी सेवा में हडताल-**जन उपयोगी सेवा में नियुक्त कोई भी व्यक्ति अनुबन्ध भंग करते हुए तब तक हड़ताल नहीं कर सकता है, जब तक कि :

(i) हड़ताल करने से पूर्व में छः सप्ताहों में हड़ताल करने की लिखित सूचना न दे दी गई हो, अथवा

(ii) ऐसी सूचना को दिये हुए 14 दिन पूरे हों,

(iii) ऐसी सूचना में हड़ताल प्रारम्भ होने की उल्लिखित तिथि समाप्त न हो गई हो, अथवा

(iv) यदि किसी समझौता अधिकारी के समक्ष समझौता कार्यवाही चल रही हो तथा ऐसी कार्यवाही समाप्त हुए सात दिन पूरे न हो गये हों । [धारा 22(1)]

2. **जनोपयोगी सेवा में तालाबन्दी -** जनोपयोगी सेवा संचालित करने वाला कोई भी सेवायोजक तब तक तालाबन्दी नहीं कर सकेगा जब तक कि -

(i) तालाबन्दी करने से पूर्व के छः सप्ताहों में तालाबन्दी करने की लिखित सूचना न दे दी गई हो, अथवा

(ii) ऐसी सूचना दिये हुए 14 दिन पूरे न हो गये हो, अथवा

(iii) ऐसी सूचना में तालाबन्दी प्रारम्भ होने की उल्लिखित तिथि समाप्त न हो गई हो, अथवा

यदि किसी समझौता अधिकारी के समक्ष समझौता कार्यवाही चल रही हो तथा ऐसी कार्यवाही समाप्त हुए / दिन पूरे न हो गये हों । [धारा 22(2)]

छटनी. काम देने में असमर्थता तथा कामबन्दी (धारा 25A - 25S)

(1) मौसमी कारखानों तथा 50 से कम श्रमिक वाले कारखानों को छंटनी व काम देने से इंकारी सम्बन्धी कुछ प्रावधानों से मुक्त रखा गया है जैसे क्षतिपूर्ति देना, मस्टर रोल रखना, वैकल्पिक रोजगार में वही मजदूरी देना या वही पद देना, आदि ।

(2) बदली श्रमिक तथा आकस्मिक रुप से नियुक्त श्रमिक को छोडकर प्रत्येक श्रमिक को काम देने से इन्कारी की अवधि के मूल वेतन तथा मंहगाई भत्ते की 50% के बराबर क्षतिपूर्ति पाने वाले श्रमिक का नाम संबंधित औद्योगिक संस्थान के मस्टर रोल पर हो और उसने कम से कम निरन्तर एक वर्ष की सेवा पूरी कर ली हो, किन्तु क्षतिपूर्ति 12 माह की अवधि के 45 दिनों से अधिक के लिए नहीं दी जा सकेगी ।

उपक्रम बन्द करने सम्बन्धी प्रावधान

यदि नियोक्ता अपना उपक्रम बन्द करना चाहता है तो निर्धारित प्रारुप में उपयुक्त सरकार की अनुमति प्राप्त करने के लिए 90 दिन पूर्व आवेदन करना होगा जिसमें सारे कारणों का उल्लेख भी करना होगा । इस आवेदन की एक प्रतिलिपि श्रमिकों के प्रतिनिधियों को निर्धारित रीति से भी दी जाएगी । जांच पड़ताल के बाद उपयुक्त सरकार उचित समझे तो उपक्रम बन्द करने की अनुमति दे सकती है अथवा इन्कार कर सकती है । यदि 60 दिन के भीतर कोई उत्तर नहीं आता है तो यह मान लिया जाएगा कि अनुमति प्राप्त हो गई है । यदि उपक्रम बन्द करने की अनुमति नहीं दी जाती है तो श्रमिकों को वे सभी लाभ प्राप्त होंगे जो प्रस्तावित बन्दी के पूर्व प्राप्त करने की उन्हें पात्रता थी। यदि उपक्रम को बन्द करने की अनुमति प्रदान की जाती है तो उपक्रम में नियुक्त प्रत्येक श्रमिक को एक वर्ष की निरन्तर सेवा पर 15 दिन की मजदूरी के हिसाब से क्षतिपूर्ति प्राप्त करने का अधिकार होगा ।

7.5 श्रम संघ अधिनियम, 1926

औद्योगिक जगत में श्रम संघों का उदय एक महत्वपूर्ण घटना है । इन संघों ने विश्व में औद्योगिक प्रजातन्त्र को साकार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है । इनको सबल एवं सक्षम बनाने के उद्देश्य से भारत में भी श्रम संघ अधिनियम, 1926 बनाया गया है । 1970 के बाद से जम्मू-कश्मीर

एवं केन्द्र शासित प्रदेशों सहित सम्पूर्ण भारतवर्ष में यह लागू होता है । इस अधिनियम में कुल 33 धाराऐं हैं, जो पाँच अध्यायों में बेटी हुई है ।

श्रम संघ

श्रम संघ से तात्पर्य किसी ऐसे स्थायी या अस्थायी संगठन से है, जो मूलत: श्रमिकों तथा सेवायोजकों के बीच अथवा सेवायोजकों तथा ऐसे योजकों के बीच सम्बन्धों के बीच, अथवा सेवायोजकों तथा सेवायोजकों के बीच सम्बन्धों का विनियमन करने अथवा किसी व्यापार या व्यवसाय के संचालन पर प्रतिबन्धात्मक शर्तें लगाने के लिए स्थापित किया जाता है तथा इसमें दो या अधिक श्रम संघों का महासंघ भी सम्मिलित है । [धारा 2(41)]

श्रम संघ श्रमिकों अथवा सेवायोजाको का ऐच्छिक संगठन है । इसका पंजीयन कराना भी अनिवार्य नहीं, बल्कि ऐच्छिक है । किन्तु कोई भी श्रम संघ तब तक वैधानिक अस्तित्व प्राप्त नहीं कर सकता है, जब तक कि उसका पंजीयन नहीं करवा लिया जाता है । श्रम संघों के पंजीयन की विधि का उल्लेख धारा-4 में किया गया है ।

पंजीयन को रद्द करना (धारा- 10)

1. श्रम संघ द्वारा आवेदन करने पर,
2. स्वयं रजिस्ट्रार द्वारा सन्तुष्ट होने पर ।

श्रम संघों के अधिकार

I. श्रम संघ अधिनियम के अन्तर्गत अधिकार

एक वैधानिक व्यक्ति के रुप में अधिकार (Rights as legal person) - एक पंजीकृत श्रम संघ कानूनी रुप से एक वैधानिक व्यक्ति होता है । फलत: प्रत्येक पंजीकृत श्रम संघ को (धारा 13 के अन्तर्गत) एक वैधानिक व्यक्ति के सभी अधिकार प्राप्त हो जाते हैं -

II. अन्य सामान्य अधिकार :

1. श्रमिकों का विभिन्न मंचों, समितियों, न्यायालयों, अधिकरणों मे प्रतिनिधित्व करना ।
2. पंच निर्णय कार्यवाही में पंच नियुक्त करना ।
3. सेवायोजकों के साथ सौदेबाजी करना तथा अनुबन्ध करना ।
4. श्रम संघ की सभाएँ तथा सम्मेलन आयोजित करना ।
5. अन्य संस्थाओं से सूचनाऐं या बुलावे का नोटिस प्राप्त करना ।
6. वैधानिक सहायता प्राप्त करना ।
7. श्रमिकों से उनके परिसर में सम्पर्क करना तथा चन्दा एकत्र करना ।
8. आवश्यकता पड़ने पर वैध रुप से हड़ताल, धरना, घेराव आयोजित करना ।

दण्ड एवं कार्य विधि तथा अपराधों की सुनवाई

1. **सूचना तथा प्रपत्र नहीं भेजने पर -** श्रम संघ की कार्यकारिणी के प्रत्येक सदस्य पर 25 रु. की दर से अर्थदण्ड और त्रुटि जारी रहने पर प्रति सप्ताह 25 रु. अतिरिक्त अर्थदण्ड, किन्तु ऐसा अर्थदण्ड 500 रु. से अधिक नहीं होगा ।
2. **जानबूझकर गलत सूचना की प्रविष्टि करने या सूचना छोड देने पर-** 500 रु. तक अर्थदण्ड।
3. **सदस्यता के प्रमाणीकरण सम्बन्धी आदेश का उल्लंघन करने पर-** 500 रु. तक अर्थदण्ड ।

4. **धोखा देने के अभिप्राय से श्रम संघ के संभध में गलत सूचना देने पर -** 500 रु. तक अर्थदण्ड।

इस अधिनियम के अन्तर्गत अपराधों की सुनवाई मेट्रोपोलिटिन मजिस्ट्रेट या प्रथम श्रेणी जुडीशियल मजिस्ट्रेट की कोर्ट ही कर सकेगी । सुनवाई तभी की जा सकेगी जब अपराध की शिकायत अपराध करने के 6 माह के भीतर कर दी गई हो ।

7.6 न्यूनतम मजदूरी अधिनियम. 1948

श्रमिक के परिश्रम के बदले जो पारिश्रमिक चुकाया जाता है, उसे मजदूरी कहते हैं । व्यवहार में यह मजदूरी अनेक घटकों से प्रभावित होती है जैसे - कार्य की प्रकृति, मूल्य स्तर, मुद्रा की क्रय शक्ति, अन्य उद्योगों में प्रचलित मजदूरी दर श्रमिकों की सौदेबाजी की शक्ति आदि, किन्तु जब इन सब घटकों के प्रभाव से भी श्रमिकों को उतनी मजदूरी भी नहीं मिल पाती है, जिसमें जीवन की आवश्यक आवश्यकता की पूर्ति की जा सके तो देश की कल्याणकारी सरकार अपना कर्तव्य पूरा करने के लिए बाध्य हो जाती है । भारत सरकार ने भी अपने इस कर्तव्य का पालन करते हुए न्यूनतम मजदूरी अधिनियम 1948 बनाया । इस अधिनियम में यह व्यवस्था है कि कतिपय उद्योगों (अनुसूचित उद्योगों) में सरकार द्वारा निर्धारित न्यूनतम मजदूरी का भुगतान अवश्य किया जाना चाहिए ।

अधिनियम की विशेषताएँ

(1) यह अधिनियम केवल असंगठित उद्योगों पर लागू होता है । ऐसे उद्योगों का उल्लेख अनुसूची में किया गया है।

(2) इस अधिनियम में मजदूरी की निम्न दरें निर्धारित करने की व्यवस्था है -

(अ) न्यूनतम समय दर (Minimum Time Rate),

(ब) न्यूनतम मूल्य दर (Minimum Price Rate),

(स) प्रत्याभूत समय दर (Guaranteed Time Rate),

(द) अधिक समय दर (over Time Rate).

(3) इस अधिनियम के अन्तर्गत न्यूनतम मजदूरी की दरें निर्धारित करने तथा उनमें संशोधन, आदि करने का अधिकार प्रयुक्त सरकार को दिया गया है ।

(4) अधिनियम में यह भी व्यवस्था है कि उपयुक्त सरकार श्रमिकों के दैनिक काम के घण्टों की संख्या निर्धारित करें। साथ ही, साप्ताहिक अवकाश की तथा अधिक समय काम की मजदूरी के भुगतान, आदि का भी अधिकार उपयुक्त सरकार को दिया गया है ।

(5) निरीक्षकों तथा अधिकारियों की नियुक्ति की भी व्यवस्था की गयी है । इनका यह दायित्व है कि न्यूनतम मजदूरी के भुगतान सम्बन्धी मामलों का निर्णय करना तथा छुट्टी के दिनों के लिए पारिश्रमिक देने, छुट्टी के दिनों में काम के लिए मजदूरी का भुगतान करने तथा अधिक समय काम के लिए मजदूरी से सम्बन्धित विवादों का निपटारा करना है।

(6) यदि कोई नियोक्ता इस अधिनियम के प्रावधानों या नियमों का परिपालन नहीं करता है तो उसके उल्लंघन के लिए अर्थदण्ड या कैद की सजा की व्यवस्था की गयी है ।

न्यूनतम मजदूरी निर्धारण तथा संशोधन की विधि

1. इस अधिनियम के अन्तर्गत अनुसूचित रोजगारों में प्रथम बार न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करने अथवा पूर्व निर्धारण दरों में संशोधन करने का समुचित सरकार को अधिकार है ।

[धारा 5(1)]

2. उपयुक्त सरकार न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करने या उसमें संशोधन करने के लिए जाँच करने तथा परामर्श देने, जैसी भी स्थिति हो, के लिए जितनी भी उपयुक्त समझे, समितियाँ तथा उपसमितियाँ नियुक्त कर सकती है, अथवा [धारा 5(1) 1]

3. समुचित सरकार राजपत्र में अधिसूचना के द्वारा अपनी न्यूनतम मजदूरी दरों के प्रस्तावों का प्रकाशन करेगी ताकि उनसे प्रभावित होने वाले लोगों को सूचना हो सके ।

4. यदि समुचित सरकार न्यूनतम मजदूरी दरों के प्रस्तावों का प्रकाशन करके (धारा 5 के अनुसार) प्रभावित लोगों के सुझाव आमंत्रित करती है तो ऐसी दशा में समुचित सरकार को सलाहकार मण्डल से परामर्श भी लेना पड़ता है । [धारा 5(2) का परन्तु]

5. समितियाँ, उप समितियों के परामर्श तथा प्रभावित लोगों के सुझावों के आधार पर निर्धारण / संशोधन । [धारा 5(2)]

6. समुचित सरकार जब कभी न्यूनतम मजदूरी दरें निर्धारित करेगी या संशोधित करेगी उसे उन्हें राजपत्र में अधिसूचना द्वारा प्रकाशित करना होगा । [धारा 5(2)]

7. यदि अधिसूचना में कुछ भी अन्यथा नहीं दिया गया है तो अधिसूचना के राजपत्र में प्रकाशन की तिथि से तीन माह बाद की तिथि से दरें प्रभावित हुई मानी जावेंगी ।

[धारा 5(2)]

मजदूरी का नकद तथा वस्तुओं में भुगतान

1. नकद भुगतान । [धारा 1 व (1)]

2. यदि परम्परा के अनुसार मजदूरी का भुगतान पूर्णत: या अंशत: वस्तुओं में किया जाता है और परिस्थितियों को देखते हुए समुचित सरकार उपयुक्त समझती है तो राज-पत्र में अधिसूचना जारी कर मजदूरी की पूर्णत: अथवा अंशत: वस्तुओं में भुगतान करने को अधिकृत कर सकती है। [धारा(2)]

3. यदि समुचित सरकार उपयुक्त समझती है तो आवश्यक वस्तुऐ रियायती मूल्य पर उपलब्ध की जानी चाहिए तो समुचित सरकार राज-पत्र में अधिसूचना जारी कर इसकी अनुमति प्रदान कर सकती है । [धारा 11(3)]

4. वस्तुओं के रुप में दी गई मजदूरी तथा रियायती मूल्य पर दी गई वस्तुओं की रियायत की नकद राशि की गणना एक निर्धारित विधि से की जावेगी । [धारा 11(4)]

श्रमजीवी

श्रमजीवी क्षतिपूर्ति अधिनियम का निर्माण सन् व 1923 में किया, जिसे एक जुलाई, 1924 से लागू किया गया । इस अधिनियम में अब तक अनेक बार संशोधन किया जा चुका है । अन्तिम बार संशोधन सन् 2000 में किया गया था । यह अधिनियम सम्पूर्ण भारत पर लागू होता है । यह अधिनियम उन सभी सेवायोजित / नियोजित व्यक्तियों पर लागू होता है, जिनकी नियुक्ति आकस्मिक प्रकृति (Casual Narture) की नहीं है तथा जिन्हें सेवायोजक के व्यापार या व्यवसाय के अतिरिक्त किन्हीं अन्य उद्देश्यों के लिए नियुक्त नहीं किया गया है ।

नियोक्ता क्षतिपूर्ति के लिए कब दायी माना जाएगा?

(1) दुर्घटना या शारीरिक चोट लगने पर ।

(2) मृत्यु अथवा स्थायी या अस्थायी अयोग्यता होने पर ।

(3) दुर्घटना रोजगार से उत्पन्न या रोजगार के दौरान होने पर ।

(4) व्यावसायिक रोग होने पर ।

(5) नशीले पदार्थ का उपयोग न होने पर ।

(6) सुरक्षा के लिए निर्दिष्ट नियमों का पालन ।

(7) क्षतिपूर्ति का वेतन से कोई सम्बन्ध नहीं है ।

क्षतिपूर्ति की गणना तथा भुगतान

1. **मृत्यु की दशा में क्षतिपूर्ति की गणना -** मृत्यु की दशा में क्षतिपूर्ति की गणना धारा 4 तथा चतुर्थ अनुसूची के प्रावधानों के अनुसार की जाती है ।

सन् 2000 में संशोधित धारा 4 के अनुसार यदि श्रमिक की मृत्यु किसी चोट से होती है तो मृतक की मासिक मजदूरी के पचास प्रतिशत के बराबर राशि को सम्बन्धित घटक सूत्र रुप में क्षतिपूर्ति की राशि :-

सूत्र रुप में क्षतिपूर्ति की राशि -

स्थायी पूर्ण अयोग्यता की दशा में क्षतिपूर्ति की राशि	×	चोट के कारण चिकित्सक द्वारा अनुमानित आय कमाने की क्षमता में आयी आनुपतिक कमी

2. **दो या अधिक चोटों की क्षतिपूर्ति की गणना -** जब कोई श्रमिक किसी चोट से अस्थायी रुप से आशिक या पूर्ण अयोग्य हो जाता है तो उसे अर्द्धमासिक आधार पर क्षतिपूर्ति की राशि का भुगतान किया जावेगा । यह क्षतिपूर्ति की राशि श्रमिक के मासिक वेतन के पच्चीस प्रतिशत के बराबर होगी।

$$\text{सूत्र रुप में क्षतिपूर्ति की राशि} = [\ \text{मासिक वेतन}\ \times \frac{25}{100}]$$

विदेशों में घटित दुर्घटना के सम्बन्ध में क्षतिपूर्ति - धारा 4(1) के उपर्युक्त प्रावधानों के होते हुए भी भारत के बाहर हुई दुर्घटना के लिए श्रमिक को देय क्षतिपूर्ति की राशि की गणना करते समय आयुक्त दुर्घटना वाले देश के कानून के अनुसार निर्धारित की गई राशि को ध्यान में रखेगा तथा इस देश के कानून के अनुसार निर्धारित क्षतिपूर्ति की राशि को उस देश के कानून के अनुसार निर्धारित क्षतिपूर्ति की राशि में से घटा देगा ।

क्षतिपूर्ति की राशि का भुगतान

1. **देय होते ही भुगतान -** क्षतिपूर्ति की राशि के देय होते ही तत्काल उसका भुगतान किया जावेगा।

2. **पूर्ण दावा स्वीकार न करने पर अस्थायी या अन्तरिम (Provisional) भुगतान-** यदि कोई सेवायोजक श्रमिक द्वारा क्षतिपूर्ति के लिए दावा की गई राशि की सीमा तक दायित्व स्वीकार नहीं करता है तो उस स्थिति में जिस सीमा तक वह दायित्व स्वीकार करता है, उस सीमा तक वह अन्तरिम या अस्थायी भुगतान (Provisional Payment) करने के लिए बाध्य होगा । तब ऐसा भुगतान आयुक्त के पास जमा करवाना होगा अथवा श्रमिक को करना होगा । इससे श्रमिक के आगे दावा करने के अधिकार पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ेगा ।

3. **भुगतान में त्रुटी की दशा में ब्याज तथा दण्ड -** यदि कोई सेवायोजक क्षतिपूर्ति की राशि के देय होने के एक महीने में भुगतान नहीं करता है तो आयुक्त निम्नलिखित निर्देश दे सकता है :

(i) बकाया राशि को बारह प्रतिशत या केन्द्रीय सरकार द्वारा निर्धारित दर से साधारण ब्याज सहित वसूल कर ली जाय, तथा

(ii) यदि आयुक्त की राय में विलम्ब का कोई न्यायाचित कारण नहीं है तो वह उस राशि के पास दण्ड वसूल करने का निर्देश भी दे सकता है । दण्ड की राशि उस राशि के पचास प्रतिशत से अधिक नहीं हो सकती है ।

उपर्यक्त वर्णित ब्याज तथा दण्ड की राशि का भुगतान श्रमिक या उसके आश्रित को किया जायेगा । [सन् 2000 में संशोधित धारा 4(A)]

7.7 प्रसूति लाभ अधिनियम. 1961

इस अधिनियम का विस्तार सम्पूर्ण भारत पर है ।

यह अधिनियम निम्नांकित संस्थानों पर लागू होता है

(i) उस प्रत्येक संस्थान पर, जो कारखाना, खान या बागान है, जिसमें सरकारी संस्थान भी सम्मिलित है,

(ii) उस प्रत्येक संस्थान पर, जिसमें लोगों को घुड़सवारी, कलाबाजारी तथा अन्य करतबों के प्रदर्शन के लिए नियुक्त किया जाता है,

(iii) किसी राज्य की दुकानों तथा संस्थानों पर लागू होने वाले कानून के अर्थ में आने वाली प्रत्येक उस दुकान या संस्थान पर, जिसमें दस या अधिक व्यक्ति नियोजित है अथवा पिछले 12 महिनों में किसी भी दिन नियोजित थे । [धारा 2(i)]

प्रसूति लाभ

प्रसूति लाभ अधिनियम में प्रसूति लाभ सम्बन्धी कुछ प्रावधान किये गये हैं, उनमें से कुछे प्रमुख प्रावधान इस प्रकार है :-

I. **प्रसूति लाभ का अधिकार**.

इस अधिनियम के प्रावधानों के अधीन रहते हुए प्रत्येक स्त्री को अपनी वास्तविक अनुपस्थिति की अवधि के लिए औसत दैनिक मजदूरी की दर से प्रसूति लाभ प्राप्त करने का अधिकार होगा तथा उसका सेवायोजक उस लाभ का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी होगा ।

इस उपधारा के उद्देश्यों के लिए निम्नांकित में से जो राशि सर्वाधिक होगी, उसे ही उस स्त्री की औसत दैनिक मजदूरी माना जायेगा :

(i) उस स्त्री को प्रसूति के लिए अनुपस्थित रहने के तत्काल पूर्ववर्ती तीन कलैण्डर महिनों में कार्य किये गये दिनों के लिए देय हुई औसत दैनिक मजदूरी,

(ii) न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 के अधीन निर्धारित या संशोधित न्यूनतम मजदूरी, अथवा

(iii) दस रुपये । [धारा 5(1) का स्पष्टीकरण]

II. प्रसूति लाभ की भार्ते तथा अवधि :

1. **कम से कम अस्सी दिन कार्य किया हो -** कोई भी स्त्री लाभ की हकदार तभी होगी, जबकि अपने सम्भावित सप्रसव की तिथि के तत्काल पूर्ववर्ती बारह महीनों में कम अस्सी दिन उस सेवायोजक के संस्थान में कार्य किया हो, जिससे वह प्रसूति लाभ की माँग या दावा करती है । [धारा 5(2)]

अपवाद - उपर्युक्त अस्सी दिन की योग्यता अवधि उस स्त्री के लिए लागू नहीं होगी, जिसने आसाम राज्य में आप्रवास किया हो तथा आप्रवास के समय वह गर्भवती हो ।

2. **लाभ की अधिकतम अवधि** - कोई भी स्त्री अधिकतम बारह सप्ताह की प्रस्तुति अवकाश की हकदार हो सकती है। इसमें प्रसव की सम्भावित तिथि से पूर्व छः सप्ताह से अधिक का अवकाश नहीं किया जा सकता है । [धारा 5(3)]

3. **प्रसव से पूर्व स्त्री की मृत्यु** । [धारा 5(3)का परन्तुक]

4. **प्रसव के दौरान या बाद में मृत्यु** । [धारा 5 (3)का परन्तुक]

असंगत कानूनों एवं ठहरावों का प्रभाव - इस अधनियम के प्रावधानों का प्रभाव तब भी रहेगा, चाहे इस अधिनियम के बनने के पहले या बाद में किसी अन्य कानून या अधिनियम (Award) या ठहराव या सेवा-अनुबन्ध में कोई असंगत (Inconsistent) प्रावधान ही क्यों न हो । [धारा 27]

7.8 उपदान भुगतान अधिनियम. 1972

उपदान भुगतान / संदाय अधिनियम, 21 अगस्त, 1972 से सम्पूर्ण भारत पर लागू है । यह अधिनियम जम्मू एवं कश्मीर राज्य पर लागू नहीं होगा । [धारा 1(2)] यह अधिनियम निम्नलिखित पर लागू होगा

(i) प्रत्येक कारखाने, खान, तेल क्षेत्र, बागान, बन्दरगाह तथा तेल कम्पनी पर,

(ii) किसी भी राज्य की, प्रत्येक ऐसी दुकान अथवा प्रतिष्ठान पर, जिसमें पिछले बारह महिनों में किसी भी दिन दस या अधिक कर्मचारी नियोजित हो या नियोजित थे ।

उपदान का भुगतान

उपदान प्राप्त करने या सेवायोजक द्वारा उपदान का भुगतान करने संबन्धी प्रमुख प्रावधान (धारा 4) इस प्रकार हैं :

1. **भुगतान की भार्त एवं समय** - किसी कर्मचारी को, जिसने कम से कम पाँच वर्ष की निरन्तर सेवा की है, को उसके नियोजन की समाप्ति पर निम्नलिखित में से किसी एक समय पर उपदान का भुगतान किया जायेगा.

(i) उसकी अधिवर्षिता (Superannuation) पर, अथवा

(ii) उसकी सेवानिवृत्ति या पदत्याग पर, अथवा

(iii) किसी दुर्घटना या रोग के कारण उसकी मृत्यु होने या अयोग्यता (Disablement) उत्पन्न होने पर ।

2. **उपदान की दर तथा राशि की गणना -** सेवा के प्रत्येक पूर्ण किये गये वर्ष या उसके छः माह से अधिक किसी भी भाग के लिए सेवायोजक को पन्द्रह दिनों की मजदूरी की दर से उपदान का भुगतान करना होगा । मजदूरी की दर वह मानी जायेगी, जो उस सम्बन्धित कर्मचारी द्वारा अन्तिम रुप से प्राप्त की गई थी ।

$$\frac{\text{Monthly rate of wages last drawn x 15 x No.of years of completed Service}}{26}$$

मात्रानुपाती दर से मजदूरी प्राप्त करने वाले कर्मचारी को उपदान- यदि कोई कर्मचारी मात्रानुपाती या कार्यानुसार (Piece rate) मजदूरी प्राप्त करता है तो उसकी दैनिक मजदूरी की गणना करने के लिए

उसके नियोजन की समाप्ति से ठीक पूर्व के तीन महिनों की अवधि में उसके द्वारा प्राप्त की गई कुल मजदूरी का औसत ज्ञात किया जायेगा । इस गणना तथा औसत में अधिसमय कार्य की मजदूरी को नहीं जोड़ा जायेगा ।

उपदान का संरक्षण - इस अधिनियम के अधीन देय कोई उपदान तथा किसी भी ऐसे सप्रतिष्ठान, कारखाने, खान, तेलक्षेत्र, बागान, बन्दरगाह, रेल, कम्पनी या दुकान, जिन्हें धारा 5 के अधीन छूट प्राप्त है, ने नियोजित किसी कर्मचारी को देय कोई उपदान किसी सिविल, राजस्व या दण्ड न्यायालय की किसी डिक्री या आदेश के निष्पादन में कुर्क नहीं किया जा सकता है ।

7.9 कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम. 1948

योजना के उद्देश्य

कर्मचारी राज्य बीमा योजना का प्रमुख उद्देश्य बीमित कर्मचारियों तथा उनके परिवारों को विभिन्न प्रकार के लाभ तथा सुविधाऐं प्रदान करना है ।

कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 सारे भारत में लागू होता है । यह ऐसे सभी गैर मौसमी कारखानों पर लागू होता है जहां शक्ति की सहायता से 10 या अधिक और बिना शक्ति की सहायता से 20 या अधिक श्रमिक कार्य करते हों । यह अधिनियम सिनेमा, दुकानों, होटलों मोटर परिवहन संस्थान, समाचार पत्र, संस्थान, आदि पर भी लागू होता है । इस अधिनियम के अन्तर्गत उन कर्मचारियों को लाभ मिलता है जिनका मासिक वेतन (ओवर टाइम पारिश्रमिक को छोडकर) केन्द्रीय सरकार द्वारा निर्धारित सीमा तक हो ।

श्रमिकों द्वारा वेतन का 1.5 प्रतिशत प्रतिमाह अंशदान दिया जाता है । नियोक्ता द्वारा भी श्रमिक के वेतन के आधार पर चन्दा वेतन का 4 प्रतिशत दिया जाता है । वर्तमान में कर्मचारी राज्य बीमा निगम में 25 हजार शथ्याओं वाले 116 अस्पताल तथा 7,420 चिकित्सा केन्द्र हैं जिनसे लाभ उठाने वालों की संख्या लगभग तीन करोड़ है ।

लाभों के प्रकार : लाभों की दरें - केन्द्रीय सरकार द्वारा निर्धारित की जाती है ।

(1) बीमारी लाभ, (2) प्रसूति लाभ, (3) अयोग्यता लाभ, (4) आश्रित लाभ, (5) डॉक्टरी लाभ (6) अन्तयेष्टि लाभ

कर्मचारी राज्य बीमा योजना के संचालन हेतु इस अधिनियम में अनेक प्रावधान दिये गये हैं, किन्तु अधिनियम के सफल प्रशासन हेतु निम्नलिखित तीन संस्थाओं या प्राधिकारियों की स्थापना की व्यवस्था है :

1. कर्मचारी राज्य बीमा निगम,
2. निगम की स्थायी समिति, तथा
3. चिकित्सा लाभ परिषद ।

लाभों के सम्बन्ध में सामान्य नियम

1. इस अधिनियम के अन्तर्गत प्राप्त लाभ कुर्की तथा अभिहस्तांकन से मुक्त रहेंगे ।
2. आवधिक भुगतान के रुप में प्राप्त होने वाले लाभों को एक मुश्त राशि (Lump-sum) में नहीं बदला जा सकता है।

3. जिस दिन कर्मचारी काम करता है तथा मजदूरी पाता है उस दिन के लिए बीमारी लाभ, प्रसूति लाभ तथा अस्थायी लाभ प्राप्त नहीं हो सकते ।

4. एक ही समय में किसी भी बीमायुक्त व्यक्ति को निम्नलिखित लाभ एक साथ प्राप्त नहीं हो सकेंगे:

(ए) बीमारी लाभ या प्रसूति लाभ, या

(बी) बीमारी लाभ और अस्थायी अयोग्यता का लाभ, या

(सी) प्रसूति लाभ और अस्थायी अयोग्यता का लाभ ।

यदि किसी व्यक्ति को उपर्युक्त प्रकार से एक से अधिक लाभ पाने का अधिकार हो तो उसे यह चुनना होगा कि वह कौन सा लाभ प्राप्त करेगा ।

5. किसी भी लाभ से इन्कार केवल इस आधार पर नहीं किया जाएगा कि मुख्य नियोक्ता ने इस अधिनियम के अन्तर्गत देय अपने अंशदान के भुगतान में त्रुटि या उपेक्षा की है।

6. यदि नियम के कोष अनुमति दे तो किसी भी लाभ की राशि तथा अवधि में वृद्धि की जा सकती है।

7. यदि किसी व्यक्ति ने इस अधिनियम के अन्तर्गत ऐसा कोई लाभ या भुगतान प्राप्त कर लिया है जिसे प्राप्त करने का उसे वैधानिक अधिकार नहीं था तो वह ऐसे लाभ की राशि निगम को वापस देगा । यदि ऐसे व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है तो मृत्यु मृतक के प्रतिनिधि द्वारा मृतक की सम्पत्ति में सें ऐसी राशि लौटाई जाएगी ।

8. कारखाने या संस्थान में अस्वास्थ्यप्रद दशाओं के कारण या स्वाथ्य सम्बन्धी नियमनों की नियोक्ता द्वारा उपेक्षा करने के कारण बीमित व्यक्ति अत्यधिक बीमार हो जाते हैं तो निगम कारखाने के परिभोगी, या स्वामी से बीमार के सम्बन्ध में किए गए अतिरिक्त खर्च का दावा कर सकता है ।

9. इस अधिनियम के अन्तर्गत देय अंशदानों सम्बन्धी अपने किसी दायित्व के कारण नियोक्ता प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रुप से किसी कर्मचारी की मजदूरी में कोई कमी नहीं कर सकेगा ।

7.10 मजदूरी / भुगतान अधिनियम. 1938

भृत्ति भुगतान अधिनियम, 1936 एक केन्द्रीय अधिनियम है । जिसका प्रशासन एवं क्रियान्वयन केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों द्वारा किया जाता है । नवीन संशोधन के अनुसार मजदूरी का भुगतान रोकड़ी या चैक द्वारा अथवा बैंक खाते में जमा करके किया जा सकता है (लिखित अधिकार प्राप्त होने की दशा मे) । प्रधानमंत्री राहत कोष या केन्द्रीय सरकार द्वारा राजपत्र में अधिसूचना द्वारा निर्दिष्ट ऐसे किसी अन्य कोष में राशि जमा करने के लिए मजदूरी में से कटौती के अधिकार के सम्बन्ध में अनुमति प्रदान कर दी गई है ।

भृत्ति या मजदूरी (Wages) - भृत्ति या मजदूरी का आशय वेतन, भत्ते अथवा अन्य रुप से मिलने वाले पारिश्रमिक से है जो मुद्रा में व्यक्त किया जाता है अथवा व्यक्त करने योग्य है तथा जिसका भुगतान रोजगार की स्पष्ट अथवा गर्भित शर्तों के पूरा होने पर किसी रोजगार में नियुक्त व्यक्ति को उसके काम के लिए किया जाता है । मजदूरी में निम्नलिखित सम्मिलित है-

(a) पक्षकारों के बीच समझौते या पंच फैसले अथवा किसी न्यायालय के आदेशों के अन्तर्गत देय पुरस्कार।

(b) अधिक समय कार्य करने अथवा छुट्टियों और अवकाश के संबंध में मिलने वाला पारिश्रमिक ।

(c) बोनस या किसी अन्य नाम से रोजगार की शर्तों के अनुसार मिलने वाले अतिरिक्त पारिश्रमिक।

(d) किसी कानून, ठहराव अथवा प्रलेख के अन्तर्गत किसी नियुक्त व्यक्ति की सेवा समाप्ति के समय दी जाने वाली रकम ।

(e) किसी कानून के अन्तर्गत बनायी गयी किसी योजना के अन्तर्गत मिलने वाली रकम ।

मजदूरी की अवधि तथा भुगतान का समय

प्रत्येक नियोक्ता पर यह दायित्व डाला गया है कि वह मजदूरी अवधि का निर्धारण करे । मजदूरी की कोई भी अवधि एक माह से अधिक नहीं हो सकती । मजदूरी का भुगतान कितने समय में कर दिया जाए । इस सम्बन्ध में निम्न बातें लागू होती है -

(अ) रेलवे, कारखाने अथवा औद्योगिक संस्थान में, जिसमें 1000 से कम व्यक्ति नियुक्त हों, काम करने वाले प्रत्येक व्यक्ति की मजदूरी का भुगतान, मजदूरी की अवधि (Wages period) के अन्तिम दिन से सातवें दिन की समाप्ति के पूर्व करना होगा ।

(ब) अन्य किसी रेलवे, कारखाने अथवा औद्योगिक संस्थान में काम करने वाले व्यक्ति की मजदूरी का भुगतान मजदूरी की अवधि के अन्तिम दिन के दसवें दिन की समाप्ति के पूर्व करना होगा।

मजदूरी के समस्त भुगतान कार्य-दिवस (Working day) पर ही किये जायेंगे ।

भुगतान सिक्कों, करेन्सी नोटों अथवा दोनों में किया जा सकता है । यदि श्रमिक ने अधिकृत किया हो तो नियोक्ता मजदूरी का भुगतान चैक द्वारा या श्रमिक के बैंक खाते में जमा करके भी कर सकता है ।

अपराधों के लिए दण्ड

यदि कोई व्यक्ति इस अधिनियम के किसी प्रावधान का उल्लंघन करने का पुन: दोषी पाया जाता है तो उसे 6 माह तक की कैद अथवा 500 रु. से 3000 रु. तक अर्थदण्ड या दोनों से दण्डित किया जा सकता है ।

यदि कोई व्यक्ति किसी कर्मचारी की मजदूरी का भुगतान किसी अधिकारी द्वारा निर्दिष्ट तिथि पर करने में जानबूझकर लापरवाही या त्रुटि करता है तो सौ रुपए तक प्रतिदिन की दर से अतिरिक्त अर्थदण्ड उस पर किया जा सकता है ।

7.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. कारखाना अधिनियम 1948 में श्रमिकों के स्वास्थ्य के संबंध में दिये गये प्रावधानों को समझाइये।
2. निम्न के संबंध में औद्योगिक विवाद अधिनियम के प्रावधानों का उल्लेख कीजिए:-
   (1) निरन्तर सेवा
   (2) उपक्रमों का हस्तान्तरण
   (3) उपक्रमों को वैध करने की विधि
   (4) उपक्रमों को बंद करने पर श्रमिकों को क्षतिपूर्ति
3. श्रम संघ अधिनियम, 1926 के अन्तर्गत श्रम संघों के पंजीयन कराने से संबंधित कानूनी प्रावधानों की विवेचना कीजिए?

4. श्रमजीवी क्षतिपूर्ति अधिनियम के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार की अयोग्यताओं के लिए क्षतिपूर्ति की राशि की गणना किस प्रकार की जाती है? क्षतिपूर्ति के विवरण संबंधी प्रावधानों का भी उल्लेख कीजिए ।
5. निम्नलिखित के संबंध में कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम में वैधानिक प्रावधान बताईये:-
   (i) दुर्घटनाओं के संबंध में सामान्य प्रावधान ।
   (ii) राज्य सरकार द्वारा चिकित्सा उपचार की व्यवस्था ।

7.12 संदर्भ पुस्तकें

1. श्रम सन्नियम एवं सामाजिक सुरक्षा - सक्सेना, पोरवाल, सुथार
2. औद्योगिक सन्नियम - डी. आर.एल. नौलखा
3. औद्योगिक एवं श्रम सन्नियम - बाल कृष्णन

इकाई-8: प्रतियोगिता अधिनियम 2002

इकाई की रूपरेखा :

8.0 उद्देश्य

8.1 परिचय

8.2 प्रतियोगिता अधिनियम का औचित्य

8.3 प्रतियोगिता अधिनियम 2002

8.4 प्रतियोगिता अधिनियम के उद्देश्य

8.5 प्रतियोगिता अधिनियम के प्रावधान

8.6 प्रतियोगिता आयोग

8.6.1 कर्त्तव्य

8.6.2 अधिकार

8.6.3 प्रतियोगिता आयोग की कार्यप्रणाली

8.7 प्रतियोगिता अधिनियम की कार्यप्रणाली का मूल्यांकन

8.8 प्रतियोगिता अधिनियम का मूल्यांकन

8.9 सारांश

8.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

8.11 संदर्भ

8.0 अध्ययन उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप सक्षम होंगे :-

- प्रतियोगिता अधिनियम का औचित्य जानना ।
- प्रतियोगिता अधिनियम 2002 का उद्देश्य जानना।
- प्रतियोगिता अधिनियम 2002 के विभिन्न प्रावधानों को जानना ।
- प्रतियोगिता आयोग का संगठन, उद्देश्यों. कार्यो एवं अधिकारों को जानना ।
- प्रतियोगिता आयोग की कार्यप्रणाली जानना ।
- एकाधिकार एवं प्रतिबंधात्मक व्यापार व्यवहार अधिनियम तथा प्रतियोगिता अधिनियम में तुलना करना ।
- प्रतियोगिता अधिनियम का मूल्यांकन करना ।

8.1 परिचय

राष्ट्र में औद्योगिक गतिविधियों से जहाँ अपेक्षित परिणामों की प्राप्ति होती है, वहीं इनकी गतिविधियाँ अवांछित परिणामों को जन्म दे सकती है। जिनसे अर्थव्यवस्था के आर्थिक एवं सामाजिक विकास में अवरोध आ सकते हैं । इसलिए औद्योगिक गतिविधियों के व्यवस्थित संचालन के लिये वैधानिक उपायों की आवश्यकता होती है। इन वैधानिक उपायों का मुख्य उद्देश्य उद्योगों का तीव्र एवं व्यवस्थित ढ़ंग से विकास करना तथा आर्थिक सामाजिक उद्देश्यों की प्राप्ति करना है जैसे निजी क्षेत्र की शोषण प्रवृत्ति को रोकना, संतुलित क्षेत्रीय विकास करना आदि। ये वैधानिक उपाय राष्ट्र की आर्थिक

एवं गैर आर्थिक नीतियों से प्रभावित होते रहे है । परिणामस्वरूप नवीन उपायों को लागू किया जाता है । नवीन वैधानिक उपायों में प्रतियोगिता अधिनियम 2002 प्रमुख है ।

8.2 औचित्य

भारत में 1991 से उदारीकरण की प्रक्रिया शुरू की गई । जिसके परिणाम स्वरूप आर्थिक नीतियों एवं नियमों में उदारता बरती गई । उदारीकरण की प्रक्रिया शुरू होने के बाद से निगम क्षेत्र द्वारा सरकार पर निरंतर दबाव डाला गया कि इन परिस्थितियों में एकाधिकार प्रतिबंधात्मक व्यापार व्यवहार अधिनियम की सार्थकता नहीं रह गई है । अत: ऐसे अधिनियम की आवश्यकता है जिससे नये वातावरण में भारतीय उद्योगों की क्षमता बढ़ सके और ये विदेशी उद्योगों से प्रतियोगिता कर सकें । यह दबाव डाला गया कि एकाधिकार प्रतिबंधात्मक व्यापार व्यवहार अधिनियम 1969 (Monopolis and Restrictive Trade Practices Act 1969) को निरस्त किया जाये ओर इसके स्थान पर नया अधिनियम लाया जाये । इस प्रकार उदारीकरण एवं सार्वभौमीकरण के माहोल में औद्योगिक संस्थाओं में स्वस्थ प्रतियोगिता एवं विदेशी प्रतियोगिता की सामना करने हेतु नये अधिनियम लागू करने संबंधी परिस्थितियाँ उत्पन्न हुई ।

इसलिए सरकार ने संसद में प्रतियोगिता बिल 2001 पेश किया । जिसे दिसम्बर 2002 में पारित किया गया । इसे प्रतियोगिता अधिनियम 2002 कहा गया है ।

8.3 प्रतियोगिता अधिनियम 2002

भारत सरकार ने श्री एस.वी.एस राघवन की अध्यक्षता में प्रतियोगिता नीति के सम्बन्ध में अक्टूबर 1999 में एक समिति नियुक्त की जिसे एकाधिकारों का दमन करने की अपेक्षा प्रतियोगिता को प्रोत्साहित करने का कार्य सौंपा गया । इस समिति ने 22 मई 2002 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की।

समिति ने रिपोर्ट में सुझाव दिया कि भारतीय प्रतियोगिता अधिनियम बनाया जाये और भारतीय प्रतियोगिता आयोग, एकाधिकार एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापार, व्यवहार अधिनियम 1969 को निरस्त किया जाये और एकाधिकार एवं प्रतिबंधात्मक व्यापार, व्यवहार आयोग को समाप्त किया जाये । समिति के सुझाव अनुसार भारत सरकार ने दिसम्बर 2002 में प्रतियोगिता अधिनियम पास किया गया । यह अधिनियम अखिल भारतीय अधिनियम के रूप में लागू है ।

8.4 उद्देश्य

प्रतियोगिता अधिनियम 2002 के उद्देश्य इस प्रकार है :-

1. बाजार में स्वतंत्र एवं न्यायोचित प्रतियोगिता को बढ़ावा देना ।
2. प्रतियोगिता पर विपरीत प्रभाव डालने वाले व्यवहारों को समाप्त करना ।
3. उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा करना ।
4. प्रभावी शक्तियों के दुरूपयोग पर रोक लगाना ।
5. संघों (कार्टेल) का नियमन करना ।

इन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु प्रतियोगिता अधिनियम में प्रावधान रखे गये हैं ।

8.5 प्रतियोगिता अधिनियम के प्रावधान

प्रतियोगिता अधिनियम 2002 के विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति हेतु कुछ प्रावधान है, जो प्रतियोगिता विरोधी समझोतो पर रोक, प्रभावी शक्तियों के दुरूपयोग तथा संघ/कार्टेल के नियमन से सम्बन्धित है । इनका विवरण निम्नांकित है.

1. कोई भी फर्म या फर्मो का समूह, व्यक्ति या व्यक्तियों का समूह वस्तुओं या सेवाओं के उत्पादन, आपूर्ति, वितरण अधिग्रहण या नियंत्रण के लिये कोई ऐसा समझौता नहीं करेगा, जिससे देश की प्रतियोगिता पर प्रतिकूल असर पड़े ।

यदि किसी भी प्रकार का समझौता जो ऊपर लिखित की अवहेलना करता है तो अवैध माना जायेगा, किन्तु यह नियम ऐसे समझौतों पर लागू नहीं होगा । यदि वह एक संयुक्त उद्‌यम के रूप में हो जिससे उत्पादन वितरण, भण्डारण, वस्तुओं एवं सेवाओं की उपलब्धि में वृद्धि होती हैं

2. कोई समझौता वस्तुओं एवं सेवाओं की उत्पादन शृंखला के किसी भी स्तर पर किया जाता है तो अवैध माना जायेगा, यदि वह -

1. श्रंखला-बद्ध प्रबंध
2. एकमात्र संभरण संधि
3. एकमात्र वितरण संधि
4. व्यापार में मनाही
5. पुन: विक्रय कीमत कायम करने से संबंधित है ।

3. कोई भी उद्‌यम अपनी प्रभावी शक्ति का दुरूपयोग नहीं करेगा । इस संबंध में महत्वपूर्ण बात यह है इस धारा के अनुसार प्रभावी शक्ति निषिद्ध नहीं है, निषिद्ध केवल प्रभावी शक्ति के दुरूपयोग है ।

यदि कोई उद्‌यम अपनी प्रभावी शक्ति प्रयोग करके :

1. क्रय या विक्रय की अनुचित शर्तें रखता है, या
2. उत्पादन अथवा विकास पर रोक लगाता है, या
3. अन्य उद्‌यमों को प्रवेश करने से रोकता है, या
4. एक बाजार में अपनी प्रभावी शक्ति का प्रयोग, अन्य बाजारों में प्रवेश के लिये करता है तो इसे प्रभावी शक्ति का दुरूपयोग माना जायेगा ।

अधिनियम के अनुसार बाजार में किसी उद्‌यम की प्रभावी स्थिति से आशय ऐसी स्थिति से है जो उद्‌यम को प्रतियोगी शक्तियों से स्वतंत्र रूप में कार्य करने की सामर्थ्य देती है । इसके परिणामस्वरूप प्रतियोगियों एवं उपभोक्ताओं पर बुरा प्रभाव पड़ता है ।

4. कोई भी व्यक्ति या उद्‌यम ऐसा संघ/कार्टेल नहीं बनायेगा या ऐसे संघ कार्टेल का सदस्य नहीं बनेगा, जिसका बाजार प्रतियोगिता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की आशंका हो । यदि कोई ऐसा संघ कार्टेल बनाया गया है तो वह अवैध होगा।

5. अधिनियम में संघ के लिये परिसंपत्तियों की अधिकतम सीमा निर्धारित की गई है, जिसके ऊपर कोई संघ अवैध होगा, ये सीमाएँ इस प्रकार हैं :-

1. यदि भारत में संघ की परिसंपत्तियों का मूल्य 1000 करोड़ रूपये से अधिक हो या उसकी बिक्री 3000 करोड़ रूपये सें अधिक हो ।

2. यदि भारत में या भारत के बाहर संघ की परिसंपत्तियों का मूल्य 50 करोड़ डालर या इसकी कुल बिक्री 150 करोड़ डालर से अधिक हो, किन्तु यह धारा सार्वजनिक वित्तीय संस्थान, विदेशी संस्थागत निवेशक बैंक या जोखिम पूँजी निधि. पर लाग नहीं होगी । यदि वह अपने हिस्से बेचने, वित्त प्रबन्ध सुविधा तथा किसी अधिग्रहण के लिये समझौता करता है ।

6. यदि कोई व्यक्ति अधिनियम के अंतर्गत लगाये गये जुर्माने को अदा नहीं करता है तो उसे दीवानी जेल में कैद किया जा सकता है, जिसकी अवधि 1 वर्ष तक बढ़ाई जा सकती है और उस पर 10 लाख रूपये तक का जुर्माना भी किया जा सकता है ।

7. यदि कोई व्यक्ति संघ का हिस्सेदार होकर झूठा बयान देता है तो उस पर भी जुर्माना लगाया जा सकता है, जिसकी राशि 50 लाख रूपये से कम नहीं होगी, परन्तु इस राशि को 1 करोड रूपये तक बढ़ाया जा सकता है ।

8.6 प्रतियोगिता आयोग

प्रतियोगिता अधिनियम 2002 में भारतीय प्रतियोगिता आयोग के गठन की बात की गई है। सरकार ने 14 अक्टूबर 2003 को इस आयोग की स्थापना की । इस आयोग में अध्यक्ष के साथ कम से कम दो परन्तु 10 से अधिक सदस्य नहीं होंगे । सरकार द्वारा अध्यक्ष एवं कोई भी सदस्य ऐसा व्यक्ति होगा:

(1) जो उच्च न्यायालय का न्यायाधीश होने की योग्यता रखता हो, या

(2) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, अर्थशास्त्र, व्यापार, वाणिज्य, वित्त, लेखांकन, प्रबंध उद्योग, सार्वजनिक कार्यो या प्रशासन में कम से कम 15 वर्षो का विशेष ज्ञान या व्यावसायिक अनुभव रखता हो । अध्यक्ष एवं सदस्य की नियुक्ति 5 वर्षो के लिये की जायेगी और पुन: नियुक्ति की जा सकती हैं

अध्यक्ष और सदस्य अपना पद छोड़ने के पश्चात् एक वर्ष तक किसी ऐसे उद्यम में नौकरी स्वीकार नहीं कर सकते, जिसके विरूद्ध आयोग ने कार्यवाही की हो ।

8.6.1 प्रतियोगिता आयोग के कर्त्तव्य:

स्वस्थ एवं न्यायोचित प्रतियोगिता कायम करने के लिए प्रतियोगिता आयोग का कर्त्तव्य है कि:-

1. प्रतियोगिता पर दुष्प्रभाव डालने वाले व्यवहारों को प्रतिबंधित करे ।
2. स्वस्थ प्रतियोगिता को बढ़ावा दे ।
3. उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा करे ।
4. संघ व्यवस्था का नियमन करे ।
5. भारतीय बाजार में अन्य सहभागियों द्वारा किये जाने वाले व्यापार की स्वतंत्रता का आश्वासन करे ।

6. प्रभुत्व की स्थिति निर्धारित करे ।

प्रतियोगिता अधिनियम में प्रतियोगिता पर दुष्प्रभाव निर्धारित करने के लिये निर्देश दिये गये है कि आयोग निम्नांकित बातों को ध्यान में रखे :-

1. वर्तमान प्रतियोगिता को बाजार से बाहर निकालना,
2. बाजार में नव प्रवेशकों के मार्ग में उत्पन्न किये गये अवरोधक,
3. बाजार में प्रवेश पर रूकावट पैदा करके प्रतियोगिता पर अग्र रोक लगाना ।
4. उपभोक्ताओं को लाभ की प्राप्ति ।
5. वस्तुओं के उत्पादन, वितरण तथा सेवाओं की उपलब्धि में सुधार ।

इसके अतिरिक्त प्रभुत्व की स्थिति निर्धारित करने के लिय कुछ बातों को ध्यान में रखने के निर्देश दिये गये जो कि इस प्रकार हैं :-

1. उद्यम का आकार एवं प्राप्त संसाधन
2. उद्यम का बाजार में भाग
3. प्रतियोगितों की संख्या एवं इनका बाजार में भाग
4. उद्यम की तुलनात्मक आर्थिक शक्ति
5. उद्यमों पर उपभोक्ताओं की निर्भरता
6. उद्यमों के विक्रय या सेवा नेटवर्क
7. एकाधिकार तथा प्रभुत्व की प्राप्ति की दशायें
8. प्रभावी क्रय शक्ति
9. प्रवेश अवरोधक
10. बाजार का ढांचा एवं आकार
11. सामाजिक उत्तरदायित्व
12. सामाजिक लागत
13. प्रभुत्व स्थिति वाली फर्म के आर्थिक विकास में योगदान के परिणामस्वरूप साक्षेप लाभ का प्रतियोगिता पर प्रभाव।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि प्रतियोगिता आयोग प्रतियोगिता पर दुष्प्रभाव तथा प्रभुत्व की स्थिति निर्धारित करके अधिनियम में वर्णित निर्देशों के अनुसार विचार करके विभिन्न कार्यो को संपन्न करता है ।

8.6.2 प्रतियोगिता आयोग के अधिकार

प्रतियोगिता आयोग को कुछ अधिकार भी प्राप्त है जिनमें कुछ अधिकार इस प्रकार है:-

1. संदर्भित मामलों की एकमात्र जांच के लिये एक या एक से अधिक न्यायपीठ (बैंच) स्थापित करने का अधिकार ।
2. प्रभुत्व स्थिति प्राप्त उद्यम के सीधे विभाजन के आदेश का अधिकार ।
3. प्रभुत्व बढ़ाने संबन्धी संधि को तुरंत समाप्त करने तथा प्रभावित पक्षों को क्षतिपूर्ति निर्धारित करने का अधिकार ।

4. भारत के बाहर की गई संधि के बारे में जांच का अधिकार ।
5. प्राकृतिक न्याय के सिद्धान्तों के आधार पर अपनी कार्यविधि निर्धारित करने का अधिकार । इस प्रकार स्पष्ट होता है कि आयोग को व्यापक अधिकार प्राप्त है ।

8.6.3. आयोग की कार्यप्रणाली

प्रतियोगिता आयोग निम्नलिखित दशाओं में जांच कार्य प्रारंभ कर सकता है ।

1. यदि उसे शिकायत प्राप्त हो ।
2. केन्द्र, राज्य तथा अन्य संवैधानिक प्राधिकरण जांच कार्य के लिये आदेशित करें ।
3. अपनी जानकारी या सूचना की दशा में ।

यदि आयोग के मामले जांच के लिये विचाराधीन हो जाते है तो आयोग प्रथम दृष्टि में जांच योग्य मामलों पर जांच के आदेश दे सकता है । जांच के पश्चात निम्नांकित में से कोई भी या सभी आदेश दे सकते है

1. विवादित संधि को तुरंत समाप्त करना या प्रभुत्व स्थिति के दुरुपयोग को समाप्त करना ।
2. आवश्यक होने पर जुर्माना लगाना परन्तु यह उद्‌यम की पिछले तीन वर्षो की औसत बिक्री के 10 प्रतिशत से अधिक नहीं होना चाहिये ।
3. किसी संघ/कार्टेल की दशा में पिछले तीन वर्षो की औसत बिक्री के 10 प्रतिशत, जो भी अधिक हो जुर्माना लगाया जा सकता है ।
4. प्रभावित पार्टियों की क्षतिपूर्ति तय करना ।

आयोग जांच प्रारंभ करने के 90 दिनों में अपना आदेश या निर्देश जारी करता है । यदि यह आदेश जारी नहीं किया गया है तो यह समझा जायेगा आयोग की स्वीकृति प्राप्त हो गई

8.7 प्रतियोगिता आयोग की कार्यप्रणाली का मूल्यांकन :

प्रतियोगिता आयोग अपने उद्देश्यों की पूर्ति की दिशा में प्रयत्नशील है । निजी क्षेत्र के समर्थकों ने तर्क दिया है कि प्रतियोगिता आयोग की कोई आवश्यकता नहीं है । आवश्यकता केवल लाइसेंसिंग व्यवस्था को समाप्त करने तथा निजी क्षेत्र में लगाये नियंत्रणों को समाप्त करने की रही है । परन्तु वास्तविकता यह है कि मुक्ता बाजार व्यवस्था मुक्त प्रतियोगिता होने की गारंटी नहीं है वैसे भी उद्‌यमियों द्‌वारा अन्य उद्‌यमों/फर्मो का अधिग्रहण किया जाता है उस पर भी नियंत्रण अति आवश्यक है । यदि ऐसा नहीं है तो उपभोक्ताओं के शोषण की संभावना बलवती होती है । यही कारण है कि सभी देशों में आयोग होते हैं । भारत में यह अधिनियम लागू हुए अधिक समय नहीं हुआ है अत इतना ही कहा जा सकता है सार्वभौमीकरण एवं उदारीकरण के इस वातावरण में प्रतियोगिता आयोग की आवश्यकता है । आयोग की वित्तीय एवं प्रशासनिक स्वायत्तता के कारण यह बदलते परिवेश में निर्णय ले सकेंगे, इसलिये आयोग का उद्देश्यों की प्राप्ति में सफलता हासिल करना निश्चित है ।

8.8 प्रतियोगिता अधिनियम 2002 का मूल्यांकन

प्रतियोगिता अधिनियम के मूल्यांकन से पूर्व उदारीकरण से पूर्व प्रतियोगिता से संबंधित अधिनियम एकाधिकार एवं प्रतिबंधात्मक व्यापार व्यवहार अधिनियम 1969 का भी वर्णन करेगें । एकाधिकार एवं प्रतिबंधात्मक व्यापार व्यवहार अधिनियम का मुख्य उद्देश्य 1. आर्थिक शक्ति के

संकेन्द्रण को रोकना, तथा 2. एकाधिकार एवं प्रतिबंधात्मक व्यापार व्यवहारों को रोकना । इन दोनों उद्देश्यों की पूर्ति के लिये एकाधिकार एवं प्रतिबंधात्मक व्यापार आयोग की स्थापना की गई । और लगभग इन्हीं उद्देश्यों के लिये प्रतियोगिता अधिनियम को लागू किया गया है । इन दोनों अधिनियमों में कुछ अंतर है जो इस प्रकार स्पष्ट किया गया है.

एकाधिकार एवं प्रतिबंधात्मक व्यापार व्यवहार अधिनियम 1969 उदारीकरण से पूर्व से संबंधित नियम है, इस नियम की व्यवस्थायें एवं भाषा जटिल है, प्रतियोगिता विरोधी मामले अस्पष्ट एवं परिभाषित नहीं है, संधि के रजिस्ट्रेशन की अनिवार्यता है, विदेशी संघ/कार्टेल की जांच नहीं करता है तथा प्रशासनिक एवं वित्तीय स्वायतता बहु त कम है । जबकि प्रतियोगिता अधिनियम 2002 उदारीकरण एवं सार्वभौमीकरण से उत्पन्न परिस्थितियों के अनुरुप नियम है, इसकी व्यवस्थायें एवं भाषा असानी से समझने योग्य है, प्रतियोगिता विरोधी मामले स्पष्ट एवं परिभाषित है । इसमें संधि के रजिस्ट्रेशन की आवश्यकता नहीं है विदेशी संघ/कार्टेल की जांच करता है तथा पर्याप्त प्रशासनिक एवं वित्तीय स्वायत्तता है ।

दोनों अधिनियमों का गहन अध्ययन करने से पता चलता है कि इसमें केवल नाम का अंतर है । एकाधिकार एवं प्रतिबंधात्मक व्यापार व्यवहार के स्थान पर प्रभावी स्थिति का नाम दिया है । परन्तु प्रभावी स्थिति की सीमा के निर्धारण को पूर्णतया अस्पष्ट रखा गया है । एकाधिकार एवं प्रतिबंधात्मक व्यापार व्यवहार अधिनियम में बाजार में 75 प्रतिशत भाग रखने को प्रभावी तथा 60 प्रतिशत भाग रखने को एकाधिकारी स्थिति मानने का प्रावधान था इस प्रकार का प्रावधान प्रतियोगिता अधिनियम में नहीं है । ऐसे प्रावधान न होने से आयोग के विभिन्न न्यायपीठ अपने अलग-अगल मानदण्ड बना सकते हैं जिससे प्रतियोगिता आयोग के कार्य में देरी भी हो सकती है ।

इसके अतिरिक्त श्रृंखलाबद्ध प्रबंध, एक मात्र संभरण संधि, एकमात्र व्यापार संधि, पुन: विक्रय कीमत निर्धारण, नव प्रवेशकों पर अग्र-रोक, एकाधिकार, द्वयाधिकार या अल्पाधिकार ये सभी एकाधिकार एवं व्यापार व्यवहार आयोग में भी वर्णित है । इसी प्रकार प्रतियोगिता आयोग के अधिकार एवं कर्तव्य लगभग समान हैं कुछ लोगों के तर्क है कि प्रतियोगिता आयोग की स्थापना की आवश्यकता नहीं थी । लेकिन इतना कह सकते है कि प्रतियोगिता अधिनियम उदारीकरण और सार्वभौमीकरण के माहोल के अनुरुप है इसकी मूल भावना प्रतियोगिता में बाधा बनना या उपभोक्ताओं के हितों का हनन करना बुरी बात है । जहां एकाधिकार एवं प्रतिबकात्मक व्यापार व्यवहार अधिनियम में प्रभावी शक्ति पर रोक लगाने की व्यवस्था थी वहां प्रतियोगिता अधिनियम में प्रभावी शक्ति के दुरुपयोग पर भी रोक लगाने की व्यवस्था है इस प्रकार प्रतियोगिता अधिनियम 2002 प्रभावी शक्ति पर रोक ही नहीं है वरन प्रभावी शक्ति का दुरूपयोग पर भी रोक है ।

8.9 सारांश

प्रतियोगिता अधिनियम 2002 के अध्ययन एवं विश्लेषण से कह सकते हैं कि यह अधिनियम एकाधिकार एवं प्रतिबंधात्मक व्यापार व्यवहार अधिनियम के समान ही है लेकिन इसका क्षेत्र एकाधिकार एवं प्रतिबंधात्मक व्यापार व्यवहार अधिनियम के समान ही है इसका क्षेत्र व्यापक है । क्योंकि यह अधिनियम विदेशी संघ/कार्टेल पर भी लागू होता है । इस अधिनियम के अंतर्गत प्रतियोगिता आयोग, प्रशासनिक तथा वित्तीय स्वायत्तता होने से प्रभावी शक्ति पर रोक लगाने के साथ इस शक्ति का दुरुपयोग को रोकते हु ए स्वस्थ एवं न्यायोचित प्रतियोगिता का वातावरण स्थापित करने में सक्षम होगा।

लेकिन इसकी सफलता का वास्तविक मूल्यांकन एकाधिकार एवं प्रतिबंधात्मक व्यापार व्यवहार आयोग जितनी समय अवधि अपेक्षित है ।

8.10 अभ्यास प्रश्न

1. उदारीकरण से पूर्व प्रतियोगिता संबंधित अधिनियम का नाम बताइये ।
2. प्रतियोगिता अधिनियम 2002 की सार्थकता बताइये ।
3. प्रतियोगिता अधिनियम 2002 के उद्देश्य बताइये ।
4. प्रतियोगिता आयोग के कर्तव्य बताइये ।
5. प्रतियोगिता आयोग के अधिकार बताइये ।
6. प्रतियोगिता आयोग की कार्यप्रणाली समझाइये ।
7. प्रतियोगिता अधिनियम 2002 का मूल्यांकन कीजिये ।
8. एकाधिकार प्रतिबंधात्मक व्यापार व्यवहार अधिनियम 1969 तथा प्रतियोगिता अधिनियम 2002 में अंतर कीजिये।

8.11 संदर्भिका

इस विषय के विस्तृत अध्ययन के लिये निम्नलिखित पुस्तकें, संदर्भ पुस्तकें प्रयुक्त की जा सकती है ।

1. वी. के. मिश्र एवं पुरी - 'भारतीय अर्थव्यवस्था हिमालया पब्लिशिंग हाउस ।
2. आर.एस. कुलश्रेष्ठ - 'औद्योगिक अर्थव्यवस्था साहित्य भवन, आगरा ।
3. ए.एन. अग्रवाल - 'भारतीय अर्थव्यवस्था, विकास पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली ।

8.12 वेबसाइट

1. www.legalserviceindia.com
2. www.livemint.com
3. www.laws4india.com

इकाई-9: सूचना प्रौद्योगिकी विकास एवं सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000 (Development of Informtaion Technology and Information Technology Act,2000)

इकाई की रूपरेखा :

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.3 सूचना प्रौद्योगिकी विकास

9.4 नई विश्व सूचना एवं संचार व्यवस्था 'न्यूको'

9.5 सूचना प्रौद्योगिकी एवं नैसकॉम

9.6 ई-प्रशासन

9.7 सूचना प्रौढ़ोगिकी एंव भारतीय भाषाऐं

9.8 सूचना प्रौद्योगिकी एवं साइबर अपराध

9.9 सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000

9.9.1 सूचना प्रौद्योगिकी कानून के प्रमुख प्रावधान

9.9.2 नया सूचना समाज और सूचना प्रौढ़ोगिकी अधिनियम

9.10 सारांश

9.11 शब्दावली

9.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

9.13 संदर्भग्रंथ

9.0 उद्देश्य

वर्तमान ज्ञान युग मै सूचना प्रौद्योगिकी ने जीवन को पूरी तरह से बदल कर रख दिया है। सूचना प्रौद्योगिकी पलभर में विश्वभर के घटनाओं से व्यक्ति का संवाद करा देती है । सूचना प्रौद्योगिकी का उपयोग जीवन के सकारात्मक पक्षों के लिए हो, किसी स्तर पर इस तकनीकी का दुरूपयोग नहीं हो, इसी हेतु सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम 2000 देश में पारित किया गया है । प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप-

- सूचना प्रौद्योगिकी का अर्थ एवं परिभाषाएं जान सकेंगे ।
- देश में सूचना प्रौद्योगिकी के विकास को समझ सकेंगे ।
- नई विश्व सूचना एवं संचार व्यवस्था की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।
- सूचना प्रौद्योगिकी से संबंधित विभिन्न संगठनों के बारे में जान सकेंगे ।
- सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम 2000 को समझ सकेंगे ।

9.1 प्रस्तावना

वर्तमान युग सूचनाओं के विस्फोट का है । यह ऐसा दौर है जिसने सुदूर देशों की दूरियों को पाट दिया है । अब विश्व में कहीं पर भी कोई विशेष घटना घटित होती है, पल भर में वह यत्र-तत्र-सर्वत्र पहुंच जाती है । यह सारा कमाल सूचना प्रौद्योगिकी का ही है । सूचना प्रौद्योगिकी ने ज्ञान के नित नये द्वार खोले हैं । यही वह विज्ञान है जिसने जीवन शैली में तीव्रतम गति से परिवर्तन किया है । सूचना के प्रबंधन से जुड़े सभी उपकरण सूचना प्रौद्योगिकी से जुड़े होते हैं ऐसे में सूचनाओं के एकत्रीकरण के साथ ही उनके संग्रहण, उपयोग और आवश्यकतानुसार उनके उपयोग, प्रसार का कार्य व्यापक वर्ग तक इसीके जरिए संभव होता है । सेटेलाईट. कम्प्यूटर, रेडियो, टेलीविजन, टेलीफोन, मोबाईल, सीडी., डिवीडी आदि सभी आधुनिक सूचना प्रौद्योगिकी के बहु प्रचलित साधन है । दरअसल मनुष्य जीवन का ऐसा कोई भी क्षेत्र अब बचा हुआ नहीं है जो सूचना प्रौद्योगिकी से प्रभावित नहीं है । कुछ समय पहले तक जो कल्पना से परे की चीजें थी अब वे आधुनिक सूचना प्रौद्योगिकी के जरिए असल जीवन में साकार हो चुकी है ।

सूचना प्रौद्योगिकी ने सुदूर किसी एक स्थान से दूसरे बेहद दूरी के स्थान तक बगैर तारों के संवाद ही सहज नहीं कर दिया है बल्कि एक दूसरे को देखते हुए परस्पर बातचीत को भी आसान कर दिया है । सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक आदि सभी क्षेत्रों में सूचना प्रौद्योगिकी ने जिस नवीन क्रांति का सूत्रपात किया है, उसने सच में विश्व को अब एक छोटे से गांव में तब्दील कर दिया है । 'ग्लोबल विलेज' अवधारणा सूचना प्रौद्योगिकी में ही निहित है । सूचना प्रौद्योगिकी के जरिए ही आज समाज का हर नागरिक विश्व सूचना तक पहुंच सकता है और असंख्य स्त्रोतों में से किसी एक से या समान रूप से सभी से ज्ञान हासिल कर सकता है । यही नहीं सूचना प्रौद्योगिकी के जरिए आम व्यक्ति सुदूर स्थान पर बैठे चिकित्सकों से अपने रोग की पहचान करा ईलाज परामर्श प्राप्त कर सकता है तो विश्व की बेहतरीन शिक्षा भी इन्टरनेट के जरिए कहीं भी प्राप्त कर सकता है । अब तो इन्टरनेट ने दूरनेट का रूप भी ले लिया है । इसका अर्थ यह है कि घर बैठे व्यक्ति कहीं की भी यात्रा का कार्यक्रम सुनिश्चित कर सकता है तो घर बैठे सुदूर स्थानों की सैर की अनुभूति कर सकता है । सूचना प्रौद्योगिकी के द्वारा दुनिया मे किसी भी व्यक्ति के साथ कहीं भी होने वाली घटना विशेष या प्रसंग के बारे में संपूर्ण जानकारी उपलव्य करायी जाती है ।

आज के दौर को सूचनाओं के विशफोट का दौर यूं ही नहीं कहा जाता, इसका बड़ा कारण यह भी है, विकास के साथ-साथ मनुष्य की सूचना पाने की भूख भी निंरतर बढ़ती जा रही है । सूचना प्रौद्योगिकी मनुष्य की सूचना पाने की इस भूख को शांत ही नहीं करती बल्कि इसके जरिए दुनिया में रह रहे तमाम लोगों का एक नेटवर्क के जरिए परस्पर संवाद भी संभव हो सका है । यह सूचना प्रौद्योगिकी की है जिसके कारण वर्तमान समाज को 'सूचना समाज' से संबोधित किया जाने लगा है। सूचना समाज सूचना महामार्ग (सुपर हाइवे) के जरिए आम नागरिकों को एक दूसरे से जोड़ने का कार्य करता है । इन महामार्गो पर सूचना और आकड़ों के प्रावाह ने घनिष्ठ रूप से जुड़े समाज की रचना की है ।

9.2 सूचना प्रौद्योगिकी : अर्थ एवं परिभाषाएँ

सहज और सरल शब्दों में कहें तो-सूचना प्रौद्योगिकी सूचना का विज्ञान और शिल्प है। सूचना संचालन से संबंधित सभी प्रकार की गतिविधियॉ इसमें सम्मिलित होती है । एक प्रकार से सूचनाओं का प्रबंधन सूचना प्रौद्योगिकी के तहत किया जाता है । सूचना प्रंबधन के तहत सूचना प्रौद्योगिकी में सूचनाओं के नियोजन, उनके संगठन, नियंत्रण, निर्देशन, समन्वय आदि के कार्य किए जाते हैं। सेटेलाईट, कम्प्यूटर, टेलीविजन, रेडियो, मोबाईल, वायरलैस आदि उपकरणों का व्यवस्थित उपयोग ही सूचना प्रौद्योगिकी का आधार है। भारतीय संदर्भ में ही बात करें तो वर्ष 1956 में कम्प्यूटर आने के बाद सूचना प्रौद्योगिकी का तेजी से विकास हुआ है और यह विकास ऐसा है जिसने देश की जीवन शैली को पूरी तरह से बदल कर रख दिया है। दूरसंचार प्रौद्योगिकी में हो रहे त्वरित परिवर्तन, मोबाईल सेवाओं के विस्तार और वैश्विक संचार व्यवस्थाओं के अंतर्गत सूचना उपकरणों की गहन प्रतिस्पर्द्धा ने सूचना प्रौद्योगिकी के विकास को निरंतर नये आयाम दिए हैं। कहा जा सकता है कि सूचना क्रांति के इस दौर में आज भारत विश्व में सर्वाधिक विकसित सूचना प्रौद्योगिकी देशों की श्रेणी में शुमार हो गया है। अब जीवन का कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं बचा है, जहां सूचना प्रौद्योगिकी ने अपनी दखल नहीं दी है। ऐसे में इस दौर को सूचना प्रौद्योगिकी का दौर कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

सूचना प्रौद्योगिकी दो शब्दों के मेल से बना है । प्रथम शब्द है-सूचना । यह अंग्रेजी के Informtaion शब्द का हिन्दी रूपान्तरण है और इसका अर्थ है किसी भी प्रकार की जानकारी। शाब्दिक अर्थो में सूचना ऐसी जानकारी है जो किसी व्यक्ति को विषय का ज्ञान कराने के लिए कही जाए या यूं कहें कि किसी माध्यम से बतलायी जाए। सूचना को समाज के विकास का मूलाधार कहा जाता है । सूचना ने ही मनुष्य में सामाजिक चेतना का विकास किया है । प्राचीन समय में भारत सहित दूसरे देशों युनान, रोम आदि में पंचायते हुआ करती थी। इनमें समाज के लोग आपस में मिलते और एक दूसरे से जानकारियों का आदान-प्रदान किया करते थे । पंचायतों में सामुहिक विवेक से निर्णय लिये जाते, एक दूसरे के हितों की पूर्ति की जाती और सबसे बड़ी बात यह कि आदान-प्रदान से एकत्र जानकारियों के माध्यम से समाज स्वत: अनुशासित हुआ करता था। इस सब प्रक्रिया का मूल आधार सूचना ही हुआ करती थी। आज भी ऐसा ही है। विकसित समाज पूरी तरह से सूचनाओं पर ही आधारित है । विभिन्न स्त्रोतों से प्राप्त सूचनाओं के माध्यम से ही अब समाज पहले से कहीं अधिक शिक्षित और दीक्षित. एक प्रकार से सम्पूर्ण जानकारियों से लैस होता चला गया है।

वैज्ञानिक अर्थ में सूचना एक सामाजिक प्रक्रिया है और इसका निरंतर हम उपयोग करते जाएं तो भी यह कभी खत्म नहीं होगी । सूचना को बेहद लोकतांत्रिक संसाधन कहा जा सकता है क्योंकि इसका उपयोग हर वर्ग कर सकता है । गरीब ओर धनाढ्य, स्त्री-पुरूष तथा आयु वर्ग में यह किसी प्रकार का भेद नहीं करता है। सभी इसका उपयोग अपनी-अपनी आवश्यकता से कर सकते हैं, बशर्ते कि उनमें सूचना को ग्रहण करने की सामर्थ्य हो। जितनी जिसमें क्षमता होगी, उतना ही सूचना का अधिकतम उपयोग सुनिश्चित किया जा सकेगा।

सूचना के साथ दूसरा शब्द है-प्रौद्योगिकी। यह अंग्रेजी के बहु प्रचलित शब्द Techonology का हिन्दी रूपान्तरण है। व्यापक अर्थ में चीजों या कार्यो के बनाने अथवा करने के तरीकों को प्रौद्योगिकी कहा जा सकता है। इन्साइक्लोपीडिया अमेरिकाना के अनुसार - "प्रौद्योगिकी उस रास्ते को बताती

है जिसके कि द्वारा किसी कार्य का संपन्न किया जाता है ।" प्रौद्योगिकी को दरअसल ज्ञान की ऐसी शाखा कहा जा सकता है जो यांत्रिकीय कला अथवा प्रयोजनपरक विज्ञान का समन्वित ऐसा रूप है जिसके द्वारा किसी कार्य को व्यवहार में परिणत किया जाता है । सीमित अर्थों में भले ही प्रोद्यौगिकी को तकनीकी प्रक्रियाओं से जोड़कर देखा जा सकता है परन्तु व्यापक अर्थों में प्रौद्योगिकी सभी पदार्थो के साथ होने वाली सभी प्रक्रियाओं का ही द्योतक है । प्रौद्योगिकी को ऐसा ज्ञान कहा जा सकता है जिसके जरिए कार्य को अधिक कुशलता से, कम समय में और व्यावहारिक रूप में परिणत किया जा सकता है । मूलत: प्रोद्योगिकी शब्द विज्ञान तथा अभियांत्रिकी से जुड़ा विशिष्ट ज्ञान है । यह ऐसा साधन है जिसके द्वारा मनुष्य वस्तुनिष्ठ ज्ञान तथा विज्ञान के माध्यम से अपने आस-पास के परिवेश पर व्यावहारिक नियंत्रण प्राप्त करने की शक्ति पाता है । विज्ञान को जब तथ्यों पर आधारित ज्ञान कहा जाता है तो प्रौद्योगिकी इस तथ्यों पर आधारित ज्ञान को व्यवस्थित रूप प्रदान करते ज्ञान को व्यवहार में उपयोग में लाने की तकनीक बताता है । सूचना क्रांति के इस दौर में प्रोद्योगिकी ने व्यापक अर्थ ग्रहण करते जीवन के अंग के रूप में अपना स्थान बना लिया है । प्रौद्योगिकी के अंतर्गत दैनिक जीवन में काम में आने वाले छोटे-मोटे उपकरणों, औजारों से लेकर भारी भरकम संयत्रों. प्रक्रियाओं, संसाधनों तक अब सम्मिलित हैं । दैनिक जीवन में आज जिन उपयोगी मशीनों और मनोरंजन माध्यमों का हम उपयोग करते हैं, वे सभी प्रौद्योगिकी के अंतर्गत ही आते हैं । मसलन वाशिंग मशीन. फिज एसी., कूलर, पर्सनल कम्प्यूटर, टेलीफोन, टेलीविजन आदि सभी इस प्रकार की प्रौद्योगिकी ही हैं जिनके बगैर अब हमारा जीवन बहु त से मायनों में चल ही नहीं सकता । कहा जा सकता है कि वैज्ञानिकों द्वारा शोध, अन्वेषण के पश्चात और विभिन्न परीक्षणों के बाद प्रयोगशालाओं मे तैयार होकर उपकरण जब बाजार में विपणन के लिए आ जाते हैं तो वे प्रौद्योगिकी का रूप ले लेते हैं । विज्ञान के इस दौर में नित नयी प्रौद्योगियों का विकास हो रहा है । ऐसे में सहज ही यह कहा जा सकता है कि जीवन का अब कोई भी ऐसा क्षेत्र बचा नहीं है जो प्रौद्योगिकी से प्रभावित नही हो ।

सूचना और प्रौद्योगिकी के मेल से बना शब्द सूचना प्रौद्योगिकी का वास्तविक अर्थ सूचना तैयार करने, एकत्र करने. प्रोसेस करने, भंडारित करने ओर उसे प्रदान करने के साथ इन सबको संभव बनाने वाली प्रक्रियाओं और यंत्रों से है । इस उद्देश्य जीवन को कार्यकुशल और अधिक रूप में उत्पादक बनाना है । सूचना प्रौद्योगिकी से एकत्रित किए गए आकड़ों को परिष्कृत करके और उपयोगी सूचना में बदला जा सकता है तो परिष्कृत सूचना को भी दोबारा व्यवस्थित किया जा सकता है । सूचना प्रौद्योगिकी की निम्न परिभाषाएं दी जा सकती है-

''सूचना प्रौद्योगिकी के अंतर्गत वे सब उपकरण एवं पद्धतियां सम्मिलित हैं, जो सूचना के संचालन में काम आते हैं ।"

"डाटा को एकत्र करने, उसके भंडारण, डाटा को सूचना में बदलने और सूचना को दुनियाभर में संचारित करने के लिए प्रयुक्त किए जाने वाले वाली प्रविधि ही सूचना प्रौद्योगिकी कहलाती है ।"

"कम्यूटरों में सूचनाओं. तथ्यों, जानकारियों के भंडारण, जरूरत पड़ने पर भंडार से उन्हें फिर खोज निकालने, उपलखत तथ्यों की प्रोसेसिंग, छानबीन और विश्लेषण की गतिविधियां सूचना प्रौद्योगिकी है ।"

"सूचना प्रौद्योगिकी ऐसा कारक है जो व्यक्ति को आवश्यक सूचना प्राप्त करने और ज्ञान तथा बुद्धि के स्त्रोतों से जुड़ने में सहायता करता है ।"

इन परिभाषाओं के परिप्रेक्ष्य में मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि जब कंप्यूटर और संचार माध्यम को परस्पर जोड़ दिया जाता है तो यह तकनीक सूचना प्रौद्योगिकी कहलाती है । उपग्रह संप्रेषण और सूचना प्रौद्योगिकी परस्पर पूरक हैं । सूचना प्रौद्योगिकी से आशय सूचनाओं को डिजिटल रूप में इकट्ठा करना, उन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान तक भेजना और इस हेतु प्रक्रिया का विश्लेषण यानी प्रोसेस करना है । सूचना प्रौद्योगिकी वस्तुत: कम्प्यूटर और संचार की दुनिया में प्रयुक्त होने वाला शब्द युग्म है परन्तु अब यह आम जीवन में इस तरह से घुल-मिल गया है कि जीवन के हर क्षेत्र में इसकी सभी स्तरों पर उपादेयता है ।

9.3 सूचना प्रौद्योगिकी विकास

सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में भारत आज विश्व की महाशक्ति बनने की ओर अग्रसर है । पिछले दो दशकों में देश में सूचना प्रौद्योगिकी का इस तेजी से विकास हुआ है कि आज देश में इस क्षेत्र में निर्यात के अंतर्गत हमने ऊंची छलाँग लगाकर अर्थव्यवस्था को नयी ताकत दी है । कम्प्यूटर, सॉफ्टवेयर तथा इससे संबंधित सेवा उद्योग में भारतीय हिस्सा विश्व में तेजी से बढ़ा है । देश में सूचना प्रौद्योगिकी क्रांति की शुरुआत तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीवगांधी के प्रयासों से व 1998 में ही प्रारंभ हो गयी थी और सीमित समय में ही देश ने इस क्षेत्र में उत्साहवर्द्धक तरक्की की राह पकड़ ली।

सूचना प्रौद्योगिकी के विकास की तीव्रतम गति का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि देश में रेडियो को 10 लाख लोगों तक पहुंचने में कभी 43 वर्ष का लम्बा सफर तय करना पड़ा था । इसी प्रकार टेलीविजन को भी आम आदमी तक पहुंचने में 28 वर्ष की दीर्घकालीन अवधि लगी। पर्सनल कम्प्यूटर या पीसी को आम जन तक पहुंचने में 11 वर्ष लगे और इन्टरनेट की पहुंच आम आदमी तक मात्र 17 माह में ही हो गयी । है न यह अचरज की बात । आज देश में बैंकिंग, वित्तीय संस्थाएं, मनोरंजन उद्योग, बीमा, खुदरा और रिटेल व्यापार, दूरसंचार, स्वास्थ्य, परिवहन आदि सभी क्षेत्रों में सूचना प्रौद्योगिकी का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है ।

सूचना प्रौद्योगिकी विकास की गति देश मे हालांकि आरंभिक तौर पर धीमी रही है परन्तु पिछले कुछ समय से देश ने इस क्षेत्र में तेजी से तरक्की की है । सूचना प्रौद्योगिकी विकास का दौर सत्तर के दशक से प्रारंभ होता है । पहले पहल देश में होमी भाभा समिति ने इलेक्ट्रोनिक्स और कंप्यूटर्स पर ध्यान देने की आवश्यकता को अनुभव किया । इसी आधार पर 26 जून 1970 को इलेक्ट्रोनिकी विभाग एक वैज्ञानिक मंत्रालय के रूप में अस्तित्व में आया । यह विभाग सीधे प्रधानमंत्री के अधीन था । तब प्रो. एमजीके. मेनन को विभाग का सचिव और इलेक्ट्रोनिक्स आयोग का अध्यक्ष बनाया गया। पचास और सात के दशक मे कर्नाटक से शुरूआत करते हुए देश के विभिन्न राज्यों में विभिन्न आईआईटी और आईआईएम की स्थापना और तकनीकी कॉलेज खोलने के लिए निजी क्षेत्रों को प्रोत्साहन की पहल हुई । सार्वजनिक क्षेत्र के अंतर्गत भारतीय इलेक्ट्रोनिक्स निगम ने 1970 के दशक के अंतिम और 1980 के दशक के प्रारंभ के वर्षों में 12 बीट (टीडीसी- 12) और 16 बिट (टीडीसी- 16) कंप्यूटरों का विकास किया । 1977 में आईबीएम के बंद होने के बाद कंप्यूटरों के रखरखाव के लिए सार्वजनिक क्षेत्र में एक कंपनी सीएमसी का गठन किया गया । इसी प्रकार सॉफ्टवेयर निर्यात के महत्व को ध्यान में रखते हुए मुम्बई में 1973 में सांताक्रूज इलेक्ट्रोनिक्स प्रसंस्करण क्षेत्र की स्थापना की गयी । 1978 की लघु कंप्यूटर नीति पर से नियंत्रण समाप्त कर उसे निजी क्षेत्र के कम्प्यूटर निर्माताओं के लिए खोल दिया गया ।

सूचना प्रौद्योगिकी विकास के अंतर्गत देश में वर्ष 1977 में राष्ट्रीय सूचना विज्ञान केन्द्र अर्थात एनआईसी (निक) की स्थापना हुई । इसकी स्थापना के बाद निरंतर इसके जरिए सरकारी क्षेत्र में कम्प्यूटरीकरण को गति दी गयी है । आज केन्द्र सरकार के सभी विभाग, सभी राज्य सरकारों और 500 से अधिक जिला प्रशासनों को इसके जरिए परस्पर जोड़ दिया गया है । इसके लिए देश में ही विकसित दस हजार से अधिक डेटाबेस और सॉफ्टवेयर पैकजों का इस्तेमाल किया गया है । विभिन्न राज्यों में भी अलग से विभागों का गठन किया गया । इन विभागों द्वारा सूचना प्रौद्योगिकी के उपयोग, प्रशिक्षण का कार्य भी युद्ध स्तर पर प्रारंभ हुआ । विभिन्न राज्यों में इलेक्ट्रोनिक्स निगमों की स्थापना के अंतर्गत कर्नाटक में केई ओएनआईसीएस(केयोनिक्स), उत्तर प्रदेश में यूपीटीआरओएन (अपट्रॉन), केरल में केईएलटीआरओएन (केलट्रॉन), राजस्थान में आरएजेसीओएमपी (राजकॉम्प) आदि की स्थापना की गयी ।

देश में आईटी क्रांति के अंतर्गत लिए गए कुछ प्रमुख नीतिगत निर्णय इस प्रकार से हैं-

- देश के सरकारी कार्यालयों में 1982 में निकनेट (एनआईसीएनईटी) के जरिए इन्टरनेट का प्रयोग प्रारंभ हुआ।
- 1986 में भारत के शैक्षिक और शोध संस्थाओं में एरनेट (ईआरएनईटी) के जरिए इन्टरनेट की पहल हुई ।
- वर्ष 1986 में ही सिकंदराबाद में प्रायोगिक रूप में आम आदमी को ध्यान में रखते हुए इम्प्रेस (आईएमपीआरईएसएस) परियोजना के तहत देश में रेलवे में टिकट बुकिंग के लिए कंचूटरों का उपयोग प्रांरभ हुआ ।
- वर्ष 1988 में देश में सेंटर फॉर दि डेवलपमेंट ऑफ एडवांस कंप्यूटिंग (सी-डैक) की स्थापना सुपर कंप्यूटिंग के क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिए हुई । इसके परम और बाद में परम पद्म श्रृंखलाओं ने देश में पहली बार 'सुपर 500' की सूची में स्थान बनाया । आज सी-डैक भारतीय भाषाओं में कम्प्यूटिंग के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है ।
- वर्ष 1988 में नैसकॉम का गठन हुआ। इससे देश में नवजात सॉफ्टवेयर उद्योग को बड़ा सहारा मिला ।
- वर्ष 1991 में बंगलुरू और अन्य नगरों मे एसटीपीआई (सॉक्टवेयर टेक्योलोजी पार्क्स ऑफ इण्डिया) केन्द्रों की स्थापना के बाद संचार संबंधी अवस्थापना में सुधार हुआ । एसटीपीआई ने सॉफ्टवेयर कंपनियों से इंस्पेक्टर राज समाप्त करते हुए भारतीय सॉफ्टवेयर कंपनियों को मुनाफा कमाने लायक स्थिति में ला खड़ा किया ।
- इंटरनेट सेवा प्रदान करने वालों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए 1994 में आईएसपीएआई (आईएसपी एसोसिएशन ऑफ इंडिया) की शुरुआत हुई ।
- 15 अगस्त 1995 को बीएसएनएल के जरिए सार्वजनिक इंटरनेट की देश में शुरुआत की गयी।
- 22 अगस्त 1995 का देश में मोबाईल टेलीफोन सेवा की शुरुआत ।
- वर्ष 1997 से देश के सभी राज्यों में सूचना प्रौद्योगिकी नीति की शुरुआत कर्नाटक राज्य से हुई।
- 1997 में देश के सभी बैंकों मे पूर्ण कंप्यूटरीकरण की पहल की गयी और 31 मार्च 2005 तक इसे सभी स्तरों पर लागू कर दिया गया ।
- वर्ष 1999 में प्रधानमंत्री के नेतृत्व में सूचना प्रौद्योगिकी कार्यबल गठित हुआ ।

- वर्ष 2000 में भारत विश्व का बारहवां ऐसा देश बन गया जिसने ई-वाणिज्य और ई-व्यापार के विकास कर रहे क्षेत्रों तथा उनसे जुड़ी साइबर सुरक्षा की समस्याओं पर ध्यान देने के लिए सूचना प्रौद्यागिकी अधिनियम पारित किया ।
- सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियों इसीआईएल यानी इलेक्ट्रॉनिक्स कॉरपोरेशन ऑफ इण्डिया तथा बीईएल यानी भारत इलेक्ट्रोनिक्स लिमिटेड ने पांच लाख इलेक्ट्रोनिक वोटिंग मशीनों का निर्माण किया । विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र भारत में वर्ष 2004 के आम चुनावों में देश के 60 करोड़ मतदाताओं ने पहली बार इनके जरिए मतदान किया
- भारतीय सॉफ्टवेयर उद्योग का निर्यात 1965 में जो 10 करोड़ अमरीकी डीलर का था, वह बढ़कर 2006 में 35 अरब डॉलर तक पहुंचगया।

राष्ट्रीय सॉफ्टवेयर एवं सेवा कंपनी संघ (नैसकॉम) के मुताबिक वर्ष 2007-08 के दौरान आईटी उद्योग का निर्यात सहित देश का कुल राजस्व 49 से 50 अरब अमरीकी डीलर तक होगा । सूचना प्रौद्योगिकी क्षेत्र का यह विकास विश्व के विकसित राष्ट्रों के बराबर है। देश की टाटा कंसल्टेंसी, विप्रो, इंफोसिस तथा कई अन्य कंपनियों ने विश्व के विभिन्न देशों में अपना तेजी से विस्तार किया है । 11 वीं पंचवर्षीय योजना के लिए आईटी पर गठित कार्यबल की रिपोर्ट में 2010-11 व तक इलेक्ट्रोनिकी हार्डवेयर का निर्यात करीब 59 अरब अमरीकी डॉलर तथा सॉफ्टवेयर व सेवाओं का निर्यात करीब 72.1 अरब अमरीकी डीलर आका गया है। 11 वीं पंचवर्षीय योजना में निर्यात के क्षेत्र मे सूचना प्रौद्योगिकी कंपनियों द्वारा प्रदत्त रोजगार के अवसरों की भावी आवश्यकता 2012 तक करीब 34 लाख आकी गयी है और इससे 95 लाख लोगों को अप्रत्यक्ष रोजगार मिलेगा ।

सूचना प्रौद्योगिकी के निरंतर बढ़ते महत्व को दृष्टिगत रखते हुए ही उच्च शिक्षण संस्थाओं और स्कूल शिक्षा के अंतर्गत इस विषय को अलग से पढ़ाए जाने की पहल की गयी है। इनसीईआरटी ने स्कूल शिक्षा के स्तर पर सूचना प्रौद्योगिकी विषय को पढाने की जमीनी स्तर से पहल की है और अब देश में विभिन्न विश्वविद्यालय और अन्य शिक्षण संस्थाएँ तो ऑनलाईन परीक्षा प्रणाली की राह पर भी चल निकली हैं। ऑनलाईन शिक्षा के साथ ही ऑनलाईन कारोबार में भी देश में तेजी से बढ़ोतरी हुई है ।

9.4 नई विश्व सूचना एवं संचार व्यवस्था 'न्यूको'

समाज की व्यापक हितों को दृष्टिगत रखते हुए बेहतरी के उद्देश्य से विश्व के विभिन्न देशों में परस्पर संवाद और सामंजस्य स्थापित करने के लिए नई विश्व सूचना एवं संचार व्यवस्था 'न्यूको' (New Word Information And Communication Order) की बेहद महत्वपूर्ण भूमिका है। न्यूको की स्थापना के समय यह लक्ष्य रखा गया था कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर समाचार एवं सूचना के प्रवाह का संतुलन रखा जाए। हालांकि इस लक्ष्य की काफी हद तक पूर्ति भी हुई है परन्तु अभी भी इस संबंध में कुछ देशों द्वारा एकाधिकार के कारण समाचार एवं सूचनाओं के प्रवाह में असंतुलन बना हुआ है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में यह कहा जा सकता है कि हमने इस दिशा में गंभीरता से प्रयासों का क्रियान्वयन किया है।

न्यूको के अंतर्गत प्रमुखत: सूचना के एकतरफा प्रवाह को लेकर विकासशील देशों के बीच समाचार के मुक्त प्रवाह को बढ़ावा दिए जाने की दिशा में कार्य किया जाता है । वर्ष 1978 में नैरोबी में यूनेस्को के 19 वे सम्मेलन में संचार माध्यमों पर विवाद के चलते मैकब्राइड आयोग. की स्थापना

की गयी थी । 1979 में आयोग की रपट प्रकाशित हुई और बेलग्रेड में यूनेस्को के 21 वे सम्मेलन में मैक -ब्राइड आयोग की रिपोर्ट को स्वीकार करके उस प्रस्ताव को भी स्वीकार किया गया. जो मूलत: न्यूको के लक्षण तथा रूपरेखा को बताता है । इन लक्षणों के अंतर्गत विकासशील देशों की समस्याओं का अध्ययन करते इस संदर्भ में समूचे विश्व में संचार की दशा का विश्लेषण किया गया । मैकब्राइड आयोग की रपट न्यूको के उद्देश्यों को ही पूरी तरह से बताती है । इसके अंतर्गत विशेष रूप से यूनेस्को सदस्य देशों से आह्वान किया गया था- 'सभी सदस्य देश अपनी राष्ट्रीय संचार क्षमताओं का विकास करें ओर विचार, अभिव्यक्ति एवं सूचना की स्वतंत्रता की रक्षा की मूल आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए संचार के विकास की रणनीति का हिस्सा बनाये ।"

यहां यह गौरतलब है कि 'न्यूको' के अंतर्गत अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय को मीडिया व संचार में नई दिशा का मार्ग दिखाने की पहल की गयी है । वर्ष 1984 में नई दिल्ली में आयोजित नामीडिया के प्रथम सम्मेलन में कहा गया कि विश्व व्यवस्था स्थायित्व के लिए किए जा रहे प्रयास तेज होने चाहिए और इसके लिए 'न्यूको' आवश्यक है । भारत ने गुटनिरपेक्ष देशों के बीच समाचार प्रवाह को सुरक्षित करने के लिए बहुत सी सुविधाओं की पहल की है । नई दिल्ली स्थित 'इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ मास कम्यूनिकेशन' द्वारा चलाए जा रहे विविध प्रशिक्षण कार्यक्रमों के तहत भी सूचनाओं के मुक्त प्रवाह की दिशा में पहल की जा रही है तो विविध अन्य स्तरों पर भी इस दिशा में प्रयास किए जा रहे हैं । सूचनाओं के मुक्त प्रवाह के अंतर्गत देश में 'न्यूको' के सिद्धान्तों के पुनर्निर्माण, प्रचार-प्रसार और लक्ष्य प्राप्ति की दिशा में किए जा रहे प्रयासों के कारण ही आज विश्वभर में भारत की अपनी विशिष्ट प्रतिष्ठा है ।

9.5 सूचना प्रौद्योगिकी एवं नैसकॉम

सॉटवेयर और इससे सम्बन्धित सेवाओं के क्षेत्र में व्यापार और वाणिज्य को सुविधाजनक बनाने के साथ ही सॉफ्टवेयर प्रौद्योगिकी में अनुसंधान को बढ़ावा देने के लिए देश में 60 के दशक में राष्ट्रीय सॉफ्टवेयर एवं सेवा कंपनी संघ "नैसकॉम" का जन्म हुआ । यह सोसायटीज अधिनियम 1960 के अधीन पंजीकृत मुनाफा न कमाने वाला संगठन है । नैसकॉम "नेशनल एसोसियेशन ऑफ सॉटवेयर एण्ड सर्विस कम्पनीज. का संक्षिप्त रूप है । यह आईटी उद्योग की प्रमुख व्यापारिक संस्था और आईटी सॉटवेयर और सेवाओं का चैम्बर ऑफ कामर्स भी है ।

90 के दशक के दौरान आईटी सॉफ्टवेयर उद्योग की प्रगति में नैसकॉम ने मुख्य भूमिका अदा की । सूचना प्रौद्योगिकी उद्योग के सभी स्तरों पर विकास के लिए नैसकॉम द्वारा इनोवेशन फोरम, बीपीओ फोरम, ईएसओ फोरम आदि अनेक मंचों का गठन किया गया है ।

वर्तमान में नैसकॉम के 1100 सदस्य हैं और वे मिलकर भारत के सॉफ्टवेयर राजस्व में 95 प्रतिशत से अधिक का योगदान करते हैं । इसके 250 से अधिक सदस्य अमेरिका, ब्रिटेन, यूरोपीय संघ, जापान और चीन के हैं । इसकी सदस्य कंपनियां सॉफ्टवेयर विकास, सॉफ्टवेयर सेवाओं, उत्पाद, आईटी जनित बीपीओ सेवाओं और ई-वाणिज्य का व्यापार करती है । भारत में वैश्विक मुक्त व्यापार की प्रबल समर्थक होने के साथ ही नैसकॉम अपने सदस्यों को विश्व स्तर की प्रबंधन पद्धतियां अपनाने के लिये प्रोत्साहित भी करता है ।

9.6 ई-प्रशासन

वर्ष 1976 में देश में ई-प्रशासन का आरंभ हुआ। ईप्रशासन यानी इलेक्ट्रोनिक माध्यमों के जरिए प्रशासन। इसका प्रमुख उद्देश्य यह रहा कि देश में हो रही संचार क्रांति का लाभ प्रशासन में भी लिया जाए। यूं ई-प्रशासन की पहल देश में राष्ट्रीय सूचना केंद्र (एनआईसी) की स्थापना के समय से ही हो गयी परन्तु व्यवहार में इस दिशा में अस्सी के दशक के बाद ही कुछ तेजी से प्रयास हुए। संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम की सहायता से इलेम्हॉनिकी आयोग ने देश में राष्ट्रीय सूचना केन्द्र को आरंभ किया था और इसने अपने आरंभिक दिनों में ही सबसे पहले देश के सभी जिलों को आपस में जोड़ने का महत्वपूर्ण कार्य अपने जिम्मे लिया और उसे कुछ ही वर्षों में बखूबी अंजाम दिया। इसके बाद के दशक में मध्य प्रदेश, आक प्रदेश, कर्नाटक और केरल में भूमि संबंधी सूचनाओं के कम्प्यूटरीकरण का कार्य आरम्भ हुआ। इसी के साथ रेल सेवाओं और विशेषकर रेल के टिकट बिक्री के लिए कम्प्यूटरों के स्थानीय एवं वृहद तंत्र कायम किए गए। चुनाव आयोग के काम को सरल बनाने के लिए पहले मतदाता सूचियों का एवं मतदाता पहचान पत्र के काम में कम्प्यूटर का प्रयोग किया गया और जल्दी ही इलेक्ट्रॉनिक मतदान की प्रक्रिया भी आरम्भ की गई।

केरल में चल रही 'भूमि', आम्र प्रदेश मे चल रही 'एपी ऑन लाईन' एवं 'कार्ड' परियोजनाएं, महाराष्ट्र में 'सरिता' एवं तमिलनाडू में 'स्टार' परियोजनाएं भी ई-प्रशासन की पहल के तौर पर चालू की गई हैं। मध्य प्रदेश के धार आदिवासी जिले में चल रही परियोजना 'ज्ञानदूत' और हिमाचल प्रदेश की 'लोकमित्र', राजस्थान की 'ई-मित्र' कुछ ऐसी परियोजनाएं हैं जो नागरिकों को मंडी के भाव जाति प्रमाणपत्र जन्म या मृत्यु प्रमाणपत्र बिजली-पानी-टेलीफोन के भुगतान आदि की सुविधाएं प्रदान कर रही हैं।

आज सरकार के विभिन्न कार्यालयों की लगभग 3500 वेबसाइट अब नेट पर उपलव्य हैं। राष्ट्रीय सूचना केंद्र ने इनमें से अनेक मंत्रालयों एवं कार्यालयों की वेबसाइट के अलावा लगभग हर जिले की वेबसाइट तैयार की है। सरकारी वेबस्थलियों पर जाने के लिये एवं ई-प्रशासन संबंधी जानकारियां हासिल करने के लिये इसी केंद्र के नेतृत्व पर e.gov.in के पते पर एक पोर्टल भी बनाया गया है।

ई-प्रशासन मानक निर्धारित करने के लिए देश में राष्ट्रीय सूचना केंद्र के नेतृत्व में एक विशेष उच्चस्तरीय संगठन की भी स्थापना की गई। इस संगठन ने ई-प्रशासन से जुड़े छह मुद्दों के लिये विशेष उपसमूह बनाए। उपसमूह नेटवर्क और सूचना सुरक्षा, विभिन्न प्रयोगों के लिये आकडों के मानक, स्थानीयता एवं भाषा प्रौद्योगिकी, गुणवत्ता एवं प्रलेख के मानक, ई-प्रशासन की प्रौद्योगिकियों के मानकों के साथ-साथ सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियों के वैधानिक पक्षों पर विचार करने और सलाह देने के लिये बनाए गए हैं। इन्हीं कार्य समूहों की अनुशंसाओं की वजह से भारत की विभिन्न भाषाओं में ई-प्रशासन के काम को तेजी से करने के लिये आवश्यक उपाय किए जाने लगे हैं।

कुछ समय पहले ही भारत सरकार ने 23,000 करोड़ रूपये की अनुमानित लागत वाली ई-प्रशासन की एक अति महत्वाकांक्षी परियोजना प्रारम्भ की है। इसके अन्तर्गत 26 मिशन मोडल परियोजनाओं तथा 8 सहायक संघटकों का कार्यान्वयन केंद्रीय, राज्य एवं स्थानीय स्तर पर चलाया जाएगा। राष्ट्रीय ई-प्रशासन परियोजना का आकार कितना बड़ा है इसका अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि इसके कार्यान्वयन में 500 से अधिक कार्यान्वयन अभिकरण, दो लाख से अधिक स्थल

तथा 70 हजार से अधिक मानव वर्ष प्रयास शामिल है । केंद्र एवं राज्य सरकारें प्रतिवर्ष लगभग 3000 करोड़ रूपये ई-प्रशासन से जुड़ी परियोजनाओं पर खर्च कर रही है ।

ई-प्रशासन की पहल को इस रूप में बेहद महत्वपुर्ण कहा जा सकता है कि इसके जरिए ही देशभर के सरकारी विभागों को समन्वित रूप से एक मानक प्लेटफार्म पर लाया जा सका है । साथ ही प्रत्येक विभाग को अपना स्वयं का सॉटवेयर चुनने की छूट दी गई है । ई-प्रशासन के अंतर्गत राष्ट्रीय सूचना केंद्र विभिन्न मंत्रालयों एवं विभागों के साथ मिलकर ऐसे मानक भी अब तैयार कर रहा है, जिसके जरिए आम जन को सार्वजनिक क्षेत्र के अंतर्गत दी जाने वाली सेवाओं को कारगर ढंग से दिया जा सके साथ ही इसका प्रमुख उद्देश्य यह भी है कि सामान्य सी जानकारी रखने वाला नागरिक भी सरकारी सूचनाएँ प्राप्त करने में सक्षम हो सके ।

9.7 सूचना प्रौद्योगिकी एवं भारतीय भाषाएँ

सूचना प्रौद्योगिकी के विकास के साथ ही देश में भारतीय भाषाओं के अंतर्गत कार्य करने की प्रवृति को बढ़ावा देने के प्रयास भी निरंतर किए गए हैं । आज स्थिति यह है कि देश की तमाम भाषाओं में कम्प्यूटर सॉफ्टवेयरों का ही निर्माण नहीं हो रहा है बल्कि इन भाषाओं से एक स्थान से दूसरे स्थान तक सूचनाओं का संप्रेषण भी आसान हो गया है । यही नहीं एक भाषा से दूसरी भाषाओं के अनुवाद के साफ्टवेयर भी इन्टरनेट पर मौजूद हैं । इस सबंध में यह गौरतलब है कि सभी भारतीय भाषाओं में ध्वानिक समानता और परिवर्धित देवनागरी के आधार पर आईआईटी कानपुर के वैज्ञानिकों ने 1983 में एक समन्वित देवनागरी टर्मिनल का विकास किया था जिसे 1966 में दिल्ली में आयोजित विश्व हिंदी सम्मेलन में प्रस्तुत किया गया ।

इसके बाद में 'इस्की' अर्थात इंडियन स्टैंडर्ड कोड फॉर इंफारमेशन इंटरचेंज कोडिंग पद्धति भी विकसित की गई । इस पद्धति में भारतीय लिपियों के साथ-साथ रोमन लिपि को भी शामिल किया गया और इसके लिये 'इंस्किाप्ट' (इंडियन स्कीप्ट का संक्षिप्त रूप) कुंजी पटल बनाया गया ।

विंडोज 2000 में कार्य करने के बाद तो विश्वभर में यूनिकोड पद्धति लोकप्रिय हो गई है । भारतीय भाषाओं के लिये विकसित 'इस्की-8' को भी यूनिकोड में स्थान दिया गया है । आज स्थिति यह है कि डॉस, 'विंडोज', 'यूनिक्स' और 'मैक' आदि सभी प्रचालन तंत्रों में भारतीय भाषाओं में संसाधन की सुविधा है । विशेष रूप से शब्द संसाधन के साथ-साथ डाटा संसाधन का कार्य हिन्दी में करने के लिये पुणे स्थित 'सी-डैक' ने 'जिस्ट कार्ड', आरके कंप्यूटर्स ने 'सुलिपि' और 'सॉपटटेक' कंपनी ने 'देवबेस' का विकास किया । इन सॉफ्टवेयरों के माध्यम से डॉस परिवेश के अंतर्गत हिंदी में सरलता से कार्य किया जा सकता है ।

9.8 सूचना प्रौद्योगिकी एवं साइबर अपराध

देश में सूचना प्रौद्योगिकी के विकास के साथ ही साइबर अपराधों में भी तेजी से वृद्धि हुई है । इन्टरनेट जिस संस्कृति का प्रसार कर रहा है, उससे समाज मे बहुत से स्तरों पर विकृतियाँ भी पनप रही है । विशेष रूप से सूचना प्रौद्योगिकी ने समाज मे अपराधों के ग्राफ को भी तेजी से बढाया है । कारण यह है कि सूचना सुपर हाइवे में पोर्नो ग्राफी, वेश्यावृति और इससे भी बड़ी बात चेहरा किसी का देह किसी की यानी ट्रिक फोटोग्राफी की मानिंद चित्रों की नेट पर मिक्सिंग । कम्प्यूटर की भाषा में इसे भार्फोलोजी कहा जाता है । इन्टरनेट के जरिए अपराध की ऐसी बहुत सी घटनाएँ देखने को मिलती

हैं, जिनमें किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति की इज्जत दांव पर लगाने के प्रयास किए जाते हैं । यथार्थ की जगह वर्चुअल रियलिटी के साथ ही साइट हैकिंग सहित ऑनलाइन बैंकिंग में घपलों, डिजिटल हस्ताक्षरों के दुरूपयोग आदि की घटनाएँ भी तेजी से बड़ी है । हांलाकि दुनियाभर में इस प्रकार की गतिविधियाँ को रोकने के लिए 'नैट' पुलिस सक्रिय रहती बताते हैं, परन्तु इन्टरनेट अपराधों को रोके जाने के संबंध में पुख्ता कार्यवाही बहुत सी बार हो नहीं पाती है ।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में यह कहा जा सकता है कि देश में दर्ज होने वाले साइबर अपराध अन्य देशों के मुकाबले काफी कम है ।

9.9 सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम. 2000

सूचना प्रौद्योगिकी विकास के साथ इससे उत्पन्न विसंगतियों को निराकरण और बढ़ते साइबर अपराधों को नियंत्रित करने के लिए देश में सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम 2000 पारित किया गया। सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000 तथा भारतीय दंड संहिता की विविध धाराओं के अंतर्गत साइबर अपराधों से निपटने के लिए विशेष प्रावधान किये गये हैं ।

इसके विविध अध्यायों के अंतर्गत सूचना प्रौद्योगिकी के अंतर्गत प्रयुक्त शब्दावलियों का उल्लेख करने के साथ ही विविध स्तर की परिभाषाएं दी गयी है । अधिनियम के अंतर्गत साइबर अपराधों के विविध प्रकरणों से संबंधित प्रावधान दिए गए हैं । अधिनियम के अंतर्गत इलेक्ट्रोनिक दस्तावेजों की कानून मान्यता, देश के राज्यों मे इस कानून की एकरूपता के साथ ही स्पष्ट कहा गया है कि सरकार के विश्वसनीय सेवाओं के साधन के रूप में इलेक्ट्रोनिक रिकॉर्ड महत्वपूर्ण सेवा है ।

अधिनियम के तहत साइबर अपराधों से निपटने के लिए प्रवर्तन एजेंसियों के लिए जागरूकता प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं जो साइबर विधि, विज्ञान सॉफ्टवेयर पैकेज का प्रयोग, अपराध स्थल से डिजिटल सबूत हासिल करने संबंधी प्रक्रिया आदि पर केन्द्रित हैं । देश में अधिनियम के तहत ही सूचना प्रौद्योगिकी विभाग में भारतीय कम्प्यूटर आपात कारवाई टीम भी तैनात की गई है जो समय-समय पर सुरक्षा दिशा निर्देश देती है । सीबीआई तथा अन्य संगठनों ने साइबर अपराध प्रकोष्ठ भी गठित किए है ।

सूचना प्रौद्योगिक़ी अधिनियम, 2000 के तहत एसएमएस से किए जाने वाले अश्लील साइटों को बंद करना भी सम्मिलित किया गया है । इसके अंतर्गत यदि एसएमएस के जरिए अश्लील संदेश किसी को किए जाते है तो संबंधित के खिलाफ कार्यवाही की जा सकती है । अधिनियम के तहत प्रकरण सामने आने पर व्यापक स्तर पर देश में कार्यवाही भी की गयी है ।

9.9.1 सूचना प्रौद्योगिकी कानून के प्रमुख प्रावधान

सूचना प्रौद्योगिकी का आज का दौर कम्प्यूटर एवं इन्टरनेट के अधिकतम उपयोग का है । सरकारी एवं निजी क्षेत्र में अब कागज विहीन (पेपर लैस) कार्य संस्कृति धीरे-धीरे पांव पसार रही है। यह कार्य संस्कृति ऐसी है जिसमें सामान्य कागजों और दस्तावेजों या यूं कहें फाइलों का स्थान इलेक्ट्रोनिक संसाधनों ने लेना आरंभ कर दिया है । इन्हीं संसाधनों को विनियमित एवं नियंत्रित करने तथा साइबर अपराधों के निवारण के लिए देश में सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000 को राष्ट्रपति की स्वीकृति से 9 जून 2000 को भारत सरकार के राजपत्र में प्रकाशित किया गया । सूचना प्रौद्योगिकी कानून 17 अक्ट्रबर 2000 से पूरे देश में लागू किया गया ।

सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम के कुल 12 अध्यायों के अंतर्गत सूचना प्रौद्योगिकी के अंतर्गत आने वाली कम्प्यूटर शब्दावली, इसे पारित करने की आवश्यकता, डिजिटल हस्ताक्षर, इलेक्ट्रोनिक दस्तावेजों, प्रपत्रों आदि के साथ ही देश में इलेक्ट्रोनिक गर्वनेन्स से संबंधित विभिन्न प्रकार के प्रावधानों का उल्लेख किया गया है ।

अधिनियम के अध्याय प्रथम के अंतर्गत कानूनी मान्यता प्रदान करने के लिए इलेक्ट्रोनिक डाटा आदान-प्रदान और इलेक्ट्रोनिक संचार, सूचनाओं के भंडारण, इलेक्ट्रोनिक दस्तावेजों, इससे संबंधित एजेन्सियां, भारतीय दंड संहिता के तहत इनसे संबंधित अपराधों का उल्लेख किया गया है । विशेष रूप से भारतीय साक्ष्य अधिनियम 1872, बैंकर्स पुस्तकें साक्ष्य अधिनियम 1891 और भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम व 1934 और उससे संबंधित मामालों के लिए सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम को प्रासंगिक बताते हुए इलेक्ट्रोनिक रिकॉर्ड की विश्वसनीयता पर प्रकाश डाला गया है । प्रथम अध्याय के अंतर्गत सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम से संबंधित विभिन्न पक्षों की परिभाषाएं भी दी गयी है । मसलन डिजिटल हस्ताक्षर से आशय, कम्प्यूटर नेटवर्क, टर्मिनलों के परस्पर संबंध, कम्प्यूटर संसाधन, कम्प्यूटर प्रणाली, नियंत्रक, साइबर विनियमों के अधीन अपील अधिरकरण की स्थापना, डाटा के विस्तृत अर्थ, डिजिटल हस्ताक्षर प्रमाणपत्र, लाइसेंस, इलेक्ट्रोनिक रिकॉर्ड आदि को अधिनियम के तहत व्याख्यायित करते इनकी कानूनी प्रासंगिकता को विस्तृत रूप में समझाया गया है ।

सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम का दूसरा अध्याय डिजिटल हस्ताक्षर से संबंधित है । इसमें डिजिटल हस्ताक्षर को प्रामाणिक इलेक्ट्रोनिक रिकॉर्ड बताते हुए इसके प्रमाणन की धाराओं एवं उपधाराओं पर प्रकाश डाला गया है । अधिनियम का तीसरा अध्याय इलेक्ट्रोनिक गर्वनेन्स से संबधित है । इसमें इलेक्ट्रोनिक रिकॉर्ड्स की कानूनी मान्यता, डिजिटल हस्ताक्षर के कानूनी प्रमाणन, सरकार तथा इसके विभिन्न उपक्रमों, एजेन्सियों में इलेक्ट्रोनिक रिकॉर्ड्स और डिजिटल हस्ताक्षरों के प्रयोग, इलेक्ट्रोनिक रिकॉर्ड्स के रख-रखाव, इलेक्ट्रोनिक गजट के अंतर्गत नियम, कानूनों आदि के प्रकाशन, धारा 6,7 तथा 8 के अंतर्गत इलेक्ट्रोनिक दस्तावेजों की प्रामाणिकता तथा केन्द्र सरकार द्वारा डिजिटल हस्ताक्षरों को मान्यता प्रदान करने संबंधी शक्तियाँ आदि के बारे में विस्तार से बताया गया है ।

सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम का चौथा अध्याय इलेक्ट्रोनिक रिकॉर्ड के आरोपण, अभिस्वीकार से संबंधित है । इसमें इलेक्ट्रोनिक रिकॉर्ड्स के आरोपण, इलेक्ट्रोनिक दस्तावेजों के अभिस्वीकार के साथ ही इनके प्रेषण, प्राप्ति के समय, स्थान से संबंधित नियम कानून लिए है । अध्याय पांच के अंतर्गत इलेक्ट्रोनिक रिकॉर्ड्स की सुरक्षा तथा डिजिटल हस्ताक्षरों की सुरक्षा से संबंधित प्रावधान और प्रक्रियाओं को बताया गया है । अध्याय छः के अंतर्गत इलेक्ट्रोनिक रिकॉर्ड्स प्रमाणन अधिकारियों के बारे में प्रावधान दिए गए हैं । इसके अंतर्गत नियंत्रक और अन्य अधिकारियों की नियुक्ति, नियंत्रक के कार्य, अधिकारों के प्रत्यायोजन, डिजिटल हस्ताक्षर प्रमाण पत्र के लिए लाइसेंस, उससे संबंधित आवेदन अधिकारी, लाइसेंस के निलम्बन, नवीनीकरण, रद्द करने संबंधित अधिकृत अधिकारी, इससे संबंधित प्रावधानों आदि के बारे में समझाया गया है । अध्याय सात डिजिटल हस्ताक्षर प्रमाण पत्र के संबंध में है । इसमें डिजिटल हस्ताक्षर प्रमाणन के लिए अधिकृत डिजिटल हस्ताक्षरण प्रमाण पत्र के निलम्बन तथा उससे संबंधित प्रक्रियाओं के बारें में प्रकाश डाला गया है । आठवाँ और नौंवा अध्याय उपभोक्ता के दायित्वों, विभिन्न प्रावधानों के तहत दंड और जुर्माने की प्रक्रिया, प्रावधानों पर केन्द्रित

है । इसमें डिजिटल हस्ताक्षर प्रमाणपत्र की स्वीकृति, निजी कुंजी के नियंत्रण, कम्प्यूटर एवं कम्प्यूटर प्रणाली को क्षतिग्रस्त करने संबंधित पेनल्टी. सूचनाओं ओर रिटर्न को सही ढंग से नहीं भरने संबंधी जुर्मानो आदि के बारे में बतायी गया है।

सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम का दसवां अध्याय बेहद महत्वपूर्ण है । इसमें साइबर अपराध से संबंधित न्यायाधीकरण की स्थापना के बारे में बताया गया है । ग्यारहवां अध्याय भी इसी से संबंधित है । इसमें साइबर अपराध के विभिन्न प्रकार के मामलों के बारे में विस्तार से बताते हुए उनसे निपटने के कानूनों के बारे में जानकारी दी गयी है । विशेष रूप से इसमें साइबर अपराधों से संबंधित प्रावधानों मसलन कम्यूटर हेकिंग इलेक्ट्रोनिक दस्तावेजों के अंतर्गत अवैधानिक सामग्री के प्रकाशन, सुरिक्षत कम्प्यूटर प्रणाली, साइबर अपराध से संबंधित मामलो के लिए सुनवाई, साइबर संबंधित ऐसे अपराध जो भारत से बाहर के मामलें हैं,उनसे संबंधित कानून, जुर्मानों, सजा आदि के बारे में विस्तार से बताया गया है । अध्याय बारह नेटवर्क सेवा प्रदाताओं से संबधित है । अध्याय बारह के अंतर्गत साइबर अपराधों के लिए पुलिस अधिकारियों को अनुसंधान, खोज और जांच पड़ताल के लिए दी गयी शक्तियां अधिनियम के तहत किए गए कानूनी प्रावधानों के क्रियान्वयन, सार्वजनिक सेवा के अंतर्गत नियंत्रक, उप नियंत्रक और सहायक नियंत्रकों की व्यवस्था, भलमानसता के अंतर्गत सुरक्षा के लिए अपनाए जाने वाले उपायों, केन्द्र एवं राज्य सरकारों को कानून बनाने के लिए दी गयी शक्तियाँ 1860 के अधिनियम में किए गए संशोधन, 1872 के अधिनियम एक, 1891 के अधिनियम 18 तथा 1934 के अधिनियम 2 के अंतर्गत किए गए संशोधनों को समझाया गया है । अधिनियम के अंत में दी गयी अनुसूची के अंतर्गत अनुसूची एक में भारतीय दंड संहिता के संशोधन, अनुसूची दो में इंडियन एवीडेंस अधिनियम 1872 में किए गए संशोधनों, अनुसूची चार में बैंकर्स बुक्स एवीडेंस अधिनियम 1891 और अनुसूची पांच के अंतर्गत रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया के अधिनियम 1934 के अंतर्गत किए गए संशोधनों के बारे में जानकारी दी गयी है ।

9.9.2 नया सूचना समाज और सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम

सूचना प्रौद्यौगिकी ने विश्व में नये सूचना समाज का निर्माण किया है । इस तकनीक ने व्यक्ति को एक ही स्थान पर तमाम तरह की सुविधाओं के साथ ही सूचनाओं से इतना लैस कर दिया है कि अब उसे सूचना के किसी अन्य स्त्रोत की आवश्यकता ही नहीं है । वह सूचनाओं को अपने हिसाब से नियंत्रित और उसमें अपनी भागीदारी सुनिश्चित कर सकता है । विश्वभर के लोगों का परस्पर संवाद सूचना प्रौद्योगिकी से ही संभव हो पाया है परन्तु इसने अपराधों के नये रास्तों को भी एक प्रकार से इजाद किया है । विश्वभर में नये सूचना समाज में साइबर अपराधों ने बहुत से स्तरों पर भय के वातावरण का भी निर्माण किया है । संयुक्त राष्ट्र संघ ने इसे देखते हुए ही सूचना प्रौद्योगिकी के नियमन पर जोर दिया ।

भारत का सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम दरअसल वर्ष 1996 में संयुक्त राष्ट्रसंघ द्वारा अंगीकृत इलेक्ट्रोनिक वाणिज्य पर तैयार की गयी मॉडल विधि पर आधारित है । विश्व में सूचना प्रौद्योगिकी के जरिए बनते नये सूचना समाज को ध्यान में रखते हुए 30 जनवरी 1997 को संयुक्त राष्ट्र संघ की साधारण सभा द्वारा एक संकल्प पारित किया गया था । इसमें सदस्य राष्ट्रों से कहा गया था कि वे इस मॉडल विधि के अनुरूप सूचना प्रौद्योगिकी के नियमन और बहुत से स्तरों पर उसके

पड़ने वाले प्रभावों को नियंत्रित करने के लिए मॉडल विधि के अनुरूप विधि तैयार करें । इसी को ध्यान में रखते हुए सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम देश में पारित किया गया ।

साइबर अपराधों को नियंत्रित करने के लिए पारित इस अधिनियम से देश में ई-कॉमर्स के विकास को दिशा मिली और साथ ही साइबर अपराधों से निपटने के लिये उपयुक्त विधिक ढ़ाँचा भी इसी से खड़ा हो सका है । इलेक्ट्रोनिक लेन-देन तथा अंकीय हस्ताक्षर (डिजिटल हस्ताक्षर) को भी सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम के जरिए ही वैधता मिल सकी है । इसी से देश में ई-कॉमर्स लेन-देन भी अब निरंतर बढ़ रहा है । कुछ समय पूर्व ब्रिटेन के टीवी चैनलों द्वारा भारतीय कॉल सेंटरों से गोपनीय सूचनाओं की खरीद फरोख्त के दावे किए गए थे । इन दावों को देखते हुए भारत सरकार ने सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम 2000 में संशोधन का भी निर्णय किया है । इसके तहत गोपनीय सूचनाएँ लीक करने वाली कंपनी को आरोप साबित होने पर प्रभावित व्यक्ति को क्षतिपूर्ति के तहत पांच करोड़ रूपये तक जुर्माना देना होगा ।

9.10 सारांश

नये ज्ञान समाज में सूचना प्रौद्योगिकी ने जीवन को पूरी तरह से बदल कर रख दिया है । अब घर बैठे ही तमाम प्रकार की जानकारियाँ और जीवन की सुविधाएं ही व्यक्ति एकत्र नहीं कर सकता बल्कि ऑनलाईन पढ़ाई, खरीददारी, वैज्ञानिक प्रयोग, बैंकिंग, व्यवसाय आदि सभी प्रकार की क्रियाएं कर सकता है । विश्व के तमाम लोगों को नेटवर्क के जरिए परस्पर जोड़ते सूचना प्रौधोगिकी ने विकास के नये रास्तों का सृजन किया है । भारत में आरंभ के वर्षो में सूचना शखाा३ाज्ञा का विकास बेहद धीमी गति से हुआ परन्तु पिछले एक दशक में सूचना प्रौद्योगिकी में क्रांति सी हुई है । सूचना के प्रबंधन से जुड़े सभी उपकरण सूचना प्रौद्योगिकी से जुड़े होते हैं, ऐसे में सूचनाओं के एकत्रीकरण के साथ ही उनके संग्रहण, उपयोग और आवश्यकतानुसार उनके उपयोग, प्रसार का कार्य व्यापक वर्ग तक इसी के जरिए संभव हो पाया है ।

एक समय था जब सूचनाओं का प्रवाह केवल विकसित देशों तक ही सीमित था । ऐसे में विकासशील उन तमाम जानकारियों से महरूम रह जाया करते थे, जिनकी पहुँच से वे विकास को तेजी से अपना सकते थे । नई विश्व सूचना संचार व्यवस्था न्यूको की पहल से इस दिशा में सार्थक प्रयास हुए हैं । भारत ने इस दिशा में बेहतरीन पहल की है । इससे सूचनाओं के मुक्त प्रवाह को बढ़ावा मिला है ।

देश में सूचना प्रौद्योगिकी के तेजी से हुए विकास के साथ इस उद्योग को विभिन्न स्तरों पर मिलने वाली रियायतों, इस संबंध में आकड़ों के एकत्रीकरण, सूचनाओं के विश्लेषण, व्यापार को बढ़ावा आदि के लिए नेसकॉम की स्थापना की गयी। नेसकॉम यानी "नेशनल एसोसियेशन ऑफ सॉफ्टवेयर एण्ड सर्विस कम्पनीज" वैश्विक बाजार की प्रबल समर्थक है और इसके जरिए अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को सभी स्तरों पर बढ़ावा मिला है।

सूचना प्रौद्योगिकी विकास का सर्वाधिक लाभ ई-प्रशासन के रूप में हमारे सामने हैं । आज केन्द्र एवं राज्य सरकारों ने ई-प्रशासन के जरिए जनता से सीधे संवाद की स्थापना ही नहीं की है बल्कि बहुत से स्तरों पर आम व्यक्ति को सक्षम बनाने की दिशा में भी पहल की है । ईप्रशासन के जरिए केन्द्र एवं राज्य सरकारों ने आमजन के लिए बहुत सी सुविधाओं का भी विस्तार किया है ।

सूचना प्रौद्यागिकी ने भले ही नये ज्ञान समाज का निर्माण किया है परन्तु इसके साथ ही बहुत सी विसंगतियों को भी जन्म दिया है । साइबर अपराध इसी की परिणति है । साइबर अपराधों की रोकथाम के लिए यूं तो बहुत से अन्य कदम भी उठाए जाते रहे हैं परन्तु इस दिशा में भारत सरकार द्वारा वर्ष 2000 में पारित सूचना ब्राखातका अधिनियम ने महतवपूर्ण भूमिका निभायी है । सूचना ब्राखातज्ञा अधिनियम के अंतर्गत इलेक्ट्रोनिक दस्तावेजों को मान्यता देने के साथ ही साइबर अपराधों को रोकने की दिशा में महत्वपूर्ण प्रावधान किए गए हैं । बदलते समय और साइबर अपराधों की बढ़ती गतिविधियों को ध्यान में रखते हुए अधिन्यिम के अंतर्गत विशेष संसोधन कर इसे और अधिक सशक्त बनाए जाने की दिशा में भी निरंतर प्रयास किए जा रहे

9.11 शब्दावली

- वाई-फाई - बेतार अर्थात वायरलैस इन्टरनेट सेवा
- हॉटस्पॉट - वाई-फाई संकेतों को ग्रहण करने की सीमा के भीतर आने वाले स्थान लेपटॉप - नोटबुक कम्प्यूटर
- ई-मेल - कम्प्यूटर (इन्टरनेट) के माध्यम से प्रेषित की जाने वाली सूचना या संदेश टेली कांफेसिंग - टेलीफोन के माध्यम से सूचना का संप्रेषण
- विडियो कांफेसिंग - विडियो संचार के माध्यम से परस्पर संवाद तकनीक ।
- निकनेट - नेशनल इफॉरमेटिक्स सेंटर नेटवर्क
- नैसकॉम - नेशनल एसोसिएशन ऑफ सॉफ्टवेयर एंड सर्विस कंपनीज
- न्यूको - 'न्यू वर्ल्ड इनफोरमेशन एंड कम्यूनिकेशन ऑर्डर ' (नई विश्व सूचना एवं संचार व्यवस्था)

9.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. "सूचना प्रौद्योगिकी ने जीवन को पूरी तरह से बदल कर रख दिया है ।" इस कथन के परिप्रेक्ष्य में भारत में सूचना प्रौद्योगिकी के विकास पर विस्तार से प्रकाश डालिए ।
2. सूचना प्रौद्योगिकी से आप क्या समझते हैं? ई-प्रशासन के जरिए विकास की अवधारणा समझाईए।
3. नई विश्व सूचना एवं संचार व्यवस्था न्यूको के संदर्भ में सूचनाओं के मुक्ता प्रवाह के महत्व पर प्रकाश डालिए ।
4. सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000 पर विस्तार से प्रकाश डालिए ।
5. साइबर अपराधों को रोकने के लिए सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम की उपयोगिता समझाइए ।

9.13 संदर्भ ग्रंथ

1. उत्तर आधुनिक मीडिया तकनीक - हर्षदेव
2. साइबरस्पेस.औरमीडिया - सुधीश पचौरी
3. जनसंचार विश्वकोश - प्रो. रमेश जैन
4. सूचना प्रौद्योगिकी और जनमाध्यम - प्रो. हरि मोहन
5. हिन्दी पत्रकारिता का इतिहास - जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी
6. India’s information Revolution-Arvind Singhal and Everett M.Rogers
7. Communication and Third World-Geoffrey Reeves

8. The Media and Modernity-John.B.Thompson
9. National Media Policy-Rajeshwar Dayal

इकाई-10: भारतीय विदेशी विनिमय पद्धति में फेमा (Foreign exchange System in FEMA)

इकाई की रूपरेखा :

10.1 पृष्ठभूमि
10.2 भारत का विदेशी विनिमय बाजार
10.3 विदेशी मुद्रा प्रबन्धन अधिनियम 1999
10.4 फेरा व फेमा के मध्य अन्तर
10.5 फेमा के प्रमुख प्रावधान
10.6 फेमा का उल्लंघन तथा दण्ड व्यवस्था
10.7 अभ्यास प्रश्न
10.8 संदर्भ पुस्तकें

10.1 पृष्ठभूमि

प्राचीनकाल में मानव असभ्य अवस्था में था । उसकी आवश्यकताएँ अत्यन्त सीमित थी और वह स्वावलम्बी था । परन्तु शनै-शनै सभ्यता के विकास और समाज की प्रगति के साथ साथ मनुष्य की आवश्यकताओं में भी वृद्धि हुई, जिन्हें अकेले पूरा करना कठिन हो गया । ऐसी स्थिति में मनुष्य ने एक विशेष पेशे को अपना लिया और अपनी बनाई हुई वस्तुओं को अन्य आवश्यक वस्तुओं से बदल कर वह अपनी आवश्यकता की पूर्ति करने लगा । इस प्रक्रिया को वस्तु विनिमय अथवा उसके क्रय-विक्रय को व्यापार कहा जाता है ।

श्रम विभाजन के सिद्धांत के विस्तार से ही विदेशी व्यापार का जन्म हुआ। वर्तमान युग में विदेशी व्यापार प्रत्येक देश की अनिवार्य आवश्यकता बन गया है । विदेशी व्यापार लाभ की भावना पर आधारित है । आधुनिक युग में प्रत्येक देश अपने साधनों का संतुलित एवं प्रभावशाली ढंग से प्रयोग करना चाहता है । प्रत्येक देश व्यापार आरम्भ करने से पहले यह जानकारी प्राप्त कर लेता है कि वह अपने देश में कौन-कौन सी वस्तुओं का उत्पादन कर सकता है तथा कौन-कौनसी वस्तुऐं उसे बाहर से आयात करनी होगी ।

10.2 भारत का विदेशी विनिमय बाजार

आधुनिक अपरिवर्तनशील पत्र मुद्रा युग: में प्रत्येक देश की अपनी-अपनी वैधानिक मुद्रा होती है जिसके माध्यम से वे अपने देश के आन्तरिक लेन देनों तथा भुगतान दायित्वों को सरलता से निपटाते हैं । किन्तु एक देश की मुद्रा दूसरे देश के लिए वैधानिक मुद्रा न ही माने जाने के कारण उन देशों के भुगतानों का निपटारा विदेशी विनिमय के माध्यम से किया जाता है । भारत के केन्द्रीय बैंक के रुप में रिजर्व बैंक को, रुपये के बाह्य मूल्य को स्थायी रखने का दायित्व सौंपा गया है । इस दायित्व का निर्वाह करने के लिए रिजर्व बैंक. अधिकृत व्यापारिक बैंकों से असीमित मात्रा में लेन देन करता है । किन्तु रिजर्व बैंक विदेशी विनिमय बाजार में प्रत्यक्ष व्यवसाय नहीं करता, वह तो केवल निर्धारित दरों पर विदेशी विनिमय का क्रय-विक्रय करता है जिसके प्रभाव से वे स्वाभाविक सीमाऐं निश्चित हो

जाती है जिसके बीच विनिमय दर में उतार चढ़ाव हो सकता है । स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् इस सम्बन्ध में रिजर्व बैंक का दायित्व बढ़ता गया है । रिजर्व बैंक की भूमिका का वर्णन निम्नांकित बिन्दुओं के माध्यम से किया जा रहा है

(1) **रुपये के बाह्य मूल्य को बनाये रखना :-** अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के विस्तार की दृष्टि से यह अत्यन्त आवश्यक है कि रुपये के बाह्य मूल्य का अर्थात् विनिमय दर को स्थिर रखा जाए । विनिमय दर की ब्रेटनबुड्स प्रणाली के अन्तर्गत स्वर्ण में निर्धारित रुपये के मूल्य को रिजर्व बैंक ने 1 प्रतिशत की सीमाओं में बनाये रखा ।

दिसम्बर 1971 व में स्मिथ सोनियल समझौता हो जाने पर भारतीय रुपये को अमरीकी डालर से विच्छेदित करके पुन: पौंड स्टर्लिंग से संबंधित कर दिया गया और रिजर्व बैंक ने अपनी विनिमय दर को 225 प्रतिशत की सीमा में स्थिर रखने का निर्णय ले लिया । 22 सितम्बर, 1975 को भारतीय रुपये का पौंड स्टर्लिंग से पूर्णत: संबंध विच्छेद कर दिया गया और इसे विश्व की अनेक मुद्राओं के समूह के साथ संबंधित कर दिया गया । अब भारतीय रुपये का मूल्य कुछ चुनी हुई अन्तर्राष्ट्रीयमौद्रिक इकाईयों के संदर्भ में निश्चित किया जाता है, किन्तु मध्यस्थ मुद्रा आज भी पौंड स्टर्लिंग ही है

(2) **विदेशी विनिमय जोखिम दूर करना :-** विदेशी मुद्रा खातों में प्राप्त जमा राशि में विनिमय उच्चावचनों के कारण सम्भावित हानि को पूरा करने के लिए रिजर्व बैंक अधिकृत विक्रेता को सुरक्षा प्रदान करता है ।

(3) **दीर्घकालीन अग्रिम सुरक्षा की व्यवस्था करना :-** भारतीय रिजर्व बैंक निर्यातकर्ता को विनिमय दरों में उच्चावचनों के विरुद्ध दीर्घकालीन सुरक्षा प्रदान करता है । इस हेतु वह विदेशी विनिमय के अधिकृत विक्रेताओं के साथ 18 माह से लेकर 10 वर्ष तक की अवधि के अनुबंध करते हैं ।

(4) **अन्त: बैंक बाजार को प्रोत्साहन देना :-** भारतीय रिजर्व बैंक अधिकृत विक्रेताओं से तैयार सुपुर्दगी के लिए पौण्ड स्टर्लिग का लेन देन करता है । रिजर्व बैंक विनिमय बाजार में स्थिरता लाने के लिए अन्य मुद्राओं का क्रय-विक्रय करता है ।

इस प्रकार भारतीय रिजर्व बैंक एवं उसके अधिकृत व्यापारिक बैंक का विदेशी विनिमय विभाग अत्यन्त विशिष्टीकृत दक्षता प्राप्त एवं अनुभवी अधिकारियों से युक्त होता है । भारत में वस्तुओं का आयात निर्यात भारत सरकार की "आयात निर्यात व्यापार नीति" तथा रिजर्व बैंक के विनिमय नियन्त्रण नियमनों के अधीन है । अत: बैंक यह सावधानी पूर्वक आश्वस्त कर लेता है कि समस्त नियमों एवं प्रावधानों का ठीक प्रकार से अनुकरण किया गया है या नहीं ।

10.3 विदेशी मुद्रा. प्रबन्धन अधिनियम - फेमा - 1999 (Foreign Exchange Management Act-FEMA- 1999)

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के अन्तर्गत विकासशील देशों के सामने प्राय: विदेशी विनिमय की कठिनाई होती है क्योंकि इन देशों को विदेशी मुद्रा की प्राप्तियाँ कम तथा विदेशी मुद्रा के भुगतान अधिक करने पड़ते हैं । परिणाम स्वरुप ऐसे देशों को विदेशी विनिमय के नियमन एवं नियन्त्रण की नीति का पालन करना पड़ता है।

भारत सरकार द्वारा वर्ष 1991 में अपनाई गयी नवीन आर्थिक नीति के कारण भारत की विदेशी विनिमय व्यवस्था के अन्तर्गत फेरा (FERA) में 1991 व 1993 में व्यापक संशोधन किये गये हैं ।

भारत द्वारा विश्व व्यापार संगठन की सकिय सदस्यता ग्रहण करने से उदारीकरण एवं वैश्वीकरण के वर्तमान दौर में विदेशी विनिमय व्यवस्था को और भी उदार बनाया है । परिणाम स्वरुप फेरा के स्थान पर फेमा (विदेशी विनिमय प्रबन्ध अधिनियम - FEMA) का बिल 4 अगस्त 1998 को लोकसभा में प्रस्तुत किया गया जिसे 1 जून 2000 को पास कर प्रभावी बना दिया गया । फेमा पूर्ववर्ती फेरा की तुलना में बहुत ही उदार अधिनियम है जबकि फेरा बहुत ही कठोर अधिनियम था ।

10.4 फेरा व फेमा के मध्य अन्तर

अन्तर का आधार	**फेरा**	**फेमा**
1. प्रकृति	फेरा एक जटिल एवं कठिन प्रक्रिया एवं कानून था।	फेमा विदेशी मुद्रा नियमन एव नियंत्रण का सरल एवं उदार कानून है ।
2. उद्देश्य	फेरा-1973 का उद्देश्य दुर्लभ विदेशी मुद्रा का संरक्षण एवं प्रभावी नियन्त्रण करना था	फेमा - 1999 का उद्देश्य विदेशी व्यापार एवं भुगतान को सुविधाजनक बनाना तथा विदेशी मुद्रा बाजार का विकास करना है।
3. भारत में विदेशी निवेश	फेरा में भारत में विदेशी निवेशों को शंका की दृष्टि से देखने के कारण नियम कठोर थे।	भारत में विदेशी निवेशों को आकर्षित करने की दृष्टि से फेमा के नियमों को काफी उदार बनाया गया है ।
4. सीमा/क्षेत्र	विभिन्न उद्देश्यों - विदेश यात्राओं, उपहार, दान आदि के लिये विदेशी मुद्राओं के आहरण की समता सीमित थी ।	इसके अन्तर्गत आहरण की सीमा काफी बढ़ गयी है ।
5. अपराध की प्रवृति	इसके अन्तर्गत नियमों के उल्लंघन के मामले में अपराधों के तरीके से किया जाता था । जिसमें जेल भेजने की व्यवस्था थी ।	इसके अन्तर्गत नियमों के उल्लंघन के मामलों का निपटारा सिविल अपराधी के तरीके से केवल कुछ अपवादों को छोड़कर, जेल की सजा नहीं वरन् अर्थदण्ड की व्यवस्था है ।
6. दण्ड	इसके अन्तर्गत नियमों के उल्लंघन के मामलों में दण्ड की राशि जहां सम्बद्ध राशि के पीच गुना तक हो सकती थी ।	इसके अन्तर्गत दण्ड की राशि तीन गुना तक हो सकती है ।
7. दायित्व	इसके अन्तर्गत सिद्ध करने का दायित्व अभियुक्त का होता था ।	इसके अन्तर्गत सिद्ध करने का दायित्व प्रवर्तन एजेन्सी पर है ।
8. अस्तित्व	इसका अस्तित्व 31 मई 2002 से पूर्णतः समाप्त हो गया है ।	इसका अस्तित्व 1 जून 2000 से आया है । वर्तमान में भारत में विदेशी विनिमय प्रबन्ध एवं नियमन का यही कानून लागू है।

10.5 विदेशी विनिमय प्रबन्धन अधिनियम-फेमा के प्रमुख प्रावधान (Main Provisions of Foreign Exchange management Act -FEMA)

विदेशी विनिमय प्रबन्धन अधिनियम - फेमा सम्पूर्ण भारत में लागू है । भारत के निवासी किसी भी व्यक्ति के स्वामित्व अथवा नियन्त्रण वाली भारत के बाहर सभी शाखाओं, कार्यालयों एवं एजेन्सियों पर भी लागू होता है । यह अधिनियम भारत के निवासी पर भारत के बाहर, अधिनियम का उल्लंघन करने पर लागू होता है । इस अधिनियम का प्रमुख उद्देश्य विदेशी मुद्रा सम्बन्धी लेन्देनों के कानून को विदेशी व्यापार एवं भुगतानों में सुविधा हेतु सुदृढ़ करना एवं भारत में विदेशी मुद्राबाजार का समुचित एवं सुव्यवस्थित विकास करना है ।

विदेशी विनिमय प्रबन्धन अधिनियम FEMA) के अन्तर्गत विदेशी विनिमय तथा प्रबन्ध के प्रमुख प्रावधान इस प्रकार हैं :-

(1) **विदेशी विनिमय एवं प्रतिभूतियों के लेन देन सम्बन्धी प्रावधान (धारा 3):** कोई भी व्यक्ति या संस्था भारतीय रिजर्व बैंक की सामान्य या विशेष अनुमति के बिना विदेशी विनिमय या प्रतिभूतियों का लेन-देन नहीं कर सकती है । इसके अन्तर्गत कोई भी व्यक्ति अधिकृत व्यक्ति के अतिरिक्त किसी से भी विदेशी प्रतिभूति का लेन देन नहीं करेगा । इसके अतिरिक्त कोई भी व्यक्ति किसी भी तरह से भारत के बाहर के निवासी व्यक्ति को या उसके साख हेतु भुगतान नहीं करेगा ।

(2) **विदेशी विनिमय धारित करने सम्बन्धी प्रावधान (धारा 4) :-** भारत में निवास करने वाला कोई भी व्यक्ति किसी भी विदेशी मुद्रा को अथवा किसी भी विदेशी प्रतिभूति अथवा भारत के बाहर स्थित किसी भी अचल सम्पत्ति को धारित, अधिप्राप्त या हस्तान्तरित नहीं कर सकेगा अथवा अपने कब्जे में नहीं रख सकेगा जब तक कि इस अधिनियम के अन्तर्गत अन्य कोई प्रावधान नहीं हो ।

(3) **चालू खाते के लेन-देनों से सम्बन्धी प्रावधान (धारा 5) :-** इस अधिनियम के अन्तर्गत यह एक प्रावधान किया गया है कि कोई भी व्यक्ति किसी भी अधिकृत व्यक्ति को विदेशी मुद्रा का विक्रय कर सकता है अथवा अधिकृत व्यक्ति से विदेशी मुद्रा आहरित कर सकता है यदि ऐसा विक्रय या आहरण चालू खाते के लेन्देन हो परन्तु केन्द्रीय सरकार जनहित में उचित समझे तो भारतीय रिजर्व बैंक से परामर्श करके चालू जाते के लेन्देनों पर कोई भी उचित प्रतिबन्ध लगा सकती है ।

(4) **पूँजी खाते से सम्बन्धी प्रावधान (धारा 6) :-**फेमा अधिनियम की धारा 6 के अन्तर्गत पूँजी खाते सम्बन्धी प्रावधान किया गया है । इसके अन्तर्गत कोई भी व्यक्ति पूँजी खाते के लेन-देन के लिये किसी भी अधिकृत व्यक्ति को विदेशी विनिमय का विक्रय कर सकता है अथवा उससे विदेशी विनिमय का आहरण कर सकता है । यद्‌यपि पूँजी खाते के लेन-देनों पर सामान्यत: कोई प्रतिबन्ध नहीं है, परन्तु भारतीय रिजर्व बैंक निम्नलिखित प्रतिबन्ध लगा सकता है यथा

(I) किसी श्रेणी या श्रेणियों के पूँजी खाते के लेन-देनों में जो अनुमति योग्य है ।

(II) ऐसे लेन देन के लिये स्वीकृत योग्य विदेशी विनिमय निर्धारित कर सकता है ।

(5) **वस्तुओं तथा सेवाओं सम्बन्धी प्रावधान (धारा 7):-**विदेशी विनिमय प्रबन्धन अधिनियम फेमा की धारा 7 के अन्तर्गत वस्तुओं एवं सेवाओं के निर्यात सम्बन्धी कई प्रावधान किये गये हैं - यथा,

निर्यातक पर निर्यात से सम्बन्धित तथ्यों की घोषणा करने का कर्तव्य है । इसके अतिरिक्त रिजर्व बैंक द्वारा अपेक्षित वे सूचनाऐं देना जो भारतीय रिजर्व बैंक निर्यात से प्राप्त होने वाली राशि की वसूली को सुनिश्चित करने के लिये आवश्यक हो ।

धारा 7 के अन्तर्गत यह भी प्रावधान किया गया है कि भारतीय रिजर्व को किसी भी निर्यातक को उन सभी अपेक्षाओं और बातों के पालन करने सम्बन्धी निर्देश देने का अधिकार है जिसमें माल का निर्यात मूल्य रिजर्व बैंक द्वारा वसूल किया जा सके । इसके अतिरिक्त यह भी प्रावधान किया गया है कि सेवाओं के प्रत्येक निर्यातक का यह कर्तव्य है कि वह भारतीय रिजर्व बैंक का एक घोषणा पत्र प्रस्तुत करेगा जिसमें निर्यात की गई सेवाओं के भुगतान से सम्बन्धित सही-सही एवं महत्वपूर्ण विवरण प्रस्तुत करेगा ।

(6) **विदेशी विनिमय की वसूली सम्बन्धी प्रावधान (धारा 8 :-**विदेशी विनिमय प्रबन्धन अधिनियम - फेमा की धारा 8 के अन्तर्गत विदेशी विनिमय की वसूली एवं प्रत्यावर्तन के सम्बन्ध में प्रावधान किया गया है जिसमें भारत के निवासी किसी व्यक्ति को विदेशी विनिमय देय अथवा अर्जित हो गई है तो वह व्यक्ति भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा निर्धारित विधि एवं अवधि से उस राशि को वसूलने तथा उसका भारत में प्रत्यावर्तन करने हेतु उचित कदम उठायेगा ।

10.6 विदेशी विनिमय प्रबन्धन अधिनियम-फेमा का उल्लंघन तथा दण्ड व्यवस्था (Contravention of FEMA and Penalties Arrangement)

विदेशी विनिमय प्रबन्धन अधिनियम फेमा के अन्तर्गत बनाये गये नियमों, अधिनियमों. जारी किये गये निर्देशों एवं आदेशों के उल्लंघन की दशा में दण्ड का प्रावधान किया गया है जिसका वर्णन संक्षेप में निम्नांकित बिन्दुओं के माध्यम से किया जा रहा है:-

(1) **न्यायिक अधिकारी द्वारा जुर्माना (धारा 13) :-** फेमा की धारा 13 के अन्तर्गत न्यायिक अधिकारी किसी भी दशा में दण्ड अथवा जुर्माना कर सकता है यथा यदि किसी व्यक्ति ने इस अधिनियम के किसी प्रावधान का उल्लंघन किया गया हो, यदि किसी व्यक्ति ने इस अधिनियम के अधीन बनाये गये किसी नियम, दिये गये आदेश या निर्देश का उल्लंघन किया हो एवं यदि किसी अधिकृत व्यक्ति ने भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा प्रदस्त अधिकार पत्र की किसी शर्त की अवमानना की हो ।

(2) **दण्ड अथवा जुर्माने की राशि (धारा 13) -** फेमा की धारा 13 के अन्तर्गत निर्धारित नियमों, अधिनियमों, दिशा निर्देशों का यदि कोई उल्लंघन करता है तो उस व्यक्ति पर उल्लंघन राशि के तीन गुना राशि का जुर्माना लगाया जा सकता है । यदि उक्त दण्ड राशि निर्धारित करना सम्भव न हो, तो उल्लंघन के दोषी व्यक्ति पर दो लाख रुपये तक का जुर्माना का प्रावधान किया गया है । यदि ऐसा उल्लंघन जारी रहता है तो उस व्यक्ति पर 5000 रु0 प्रतिदिन तक का जुर्माना लगाने का प्रावधान है ।

(3) न्यायिक अधिकारी द्वारा जुर्माने के अतिरिक्त अधिग्रहण का निर्देश (धारा 13) :- फेमा की धारा 13 के अन्तर्गत यदि न्यायिक अधिकारी उचित समझे तो फेमा के नियमों का उल्लंघन करने

की अवस्था में जुर्माने के अतिरिक्त सम्बन्धित करेन्सी, प्रतिभूति अथवा सम्पत्ति आदि को जज करने का भी आदेश अथवा निर्देश भी देने का अधिकार रखता है ।

(4) **धारित विदेशी विनिमय को देश में लाने व बाहर ले जाने का निर्देश (धारा 13) :-**विदेशी विनिमय प्रबन्धन अधिनियम - फेमा की धारा 13 के अन्तर्गत न्यायिक अधिकारी विदेशी विनिमय के उल्लंघन के दोषी व्यक्ति द्वारा धारित विदेशी विनिमय को देश में लाने व देश से बाहर रखने का निर्देश देने का अधिकार रखता है ।

10.7 अभ्यास प्रश्न

1. फेमा से आपका क्या अभिप्राय है एवं इसके मुख्य उद्देश्य बताईये?
2. आर्थिक उदारीकरण के दौर में फेमा में क्या-क्या रियायतें दी गई है?
3. फेरा व फेमा के तुलनात्मक अध्ययन की विवेचना कीजिये ।
4. विदेशी विनिमय प्रबन्धन अधिनियम-फेमा के प्रमुख प्रावधानों का वर्णन कीजिये ।
5. विदेशी विनिमय प्रबन्धन अधिनियम फेमा के नियमों के उल्लंघन करने पर क्या दण्ड व्यवस्था की गई है?
6. फेमा के प्रमुख प्रावधानों का वर्णन करते हुए यह बताइये कि इनके नियमों के उल्लंघन करने पर क्या दण्ड व्यवस्था की गई है?
7. फेमा पर एक निबन्ध लिखिये ।

10.8 संदर्भ पुस्तकें

1. भारतीय अर्थव्यवस्था - रुद्रदत्त एवं के.पी.एम. सुन्दरम
2. भारतीय अर्थव्यवस्था - मिश्रा एवं पुरी
3. अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था - एम.सी. वैश्य
4. अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था - एम.एल. झिंगन
5. International Trade - R.S. Sharma
6. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं वित्त - अग्रवाल, सिंह, गुप्ता
7. विदेशी व्यापार एवं विनिमय - इन्द्रवर्धन त्रिवेदी, रेणु जताना
8. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं वित्त - बी.एल. ओझा

इकाई-11: अस्वस्थ औद्योगिक कम्पनीज (विशेष प्रावधान) अधिनियम 1985 (Sick Industrial Companies (Special Provision) Act 1985

इकाई की रूपरेखा :

11.0 अध्ययन उद्देश्य

11.1 परिचय

11.2 औद्योगिक अस्वस्थता की गंभीरता की स्थिति

11.3 औद्योगिक अस्वस्थता की परिभाषाएं

11.4 औद्योगिक अस्वस्थता के कारक

11.4.1 आंतरिक कारक

11.4.2 बाह्य कारक

11.5 औद्योगिक अस्वस्थता के परिणाम

11.6 अस्वस्थ औद्योगिक कम्पनीज (विशेष प्रावधान) अधिनियम 1985.SICA

11.7 अधिनियम के उद्देश्य

11.8 अधिनियम के महत्वपूर्ण प्रावधान

11.9 औद्योगिक एवं वितीय पुनर्निर्माण बोर्ड

11.9.1. कार्य

11.9.2. अधिकार

11.9.3. प्रगति का मूल्यांकन

11.10 अस्वस्थ औद्योगिक कम्पनीज (विशेष प्रावधान) अधिनियम 1985 का मूल्यांकन

11.11 उपसंहार

11.12 अभ्यास प्रश्न

11.13 संदर्भ पुस्तकें एवं वेबसाइट

11.0 अध्ययन उद्देश्य

अस्वस्थ औद्योगिक कम्पनीज (विशेष प्रावधान) अधिनियम 1985 इकाई के अध्ययन उद्देश्य इस प्रकार हैं

- औद्योगिक अस्वस्थता की गंभीरता का ज्ञान कराना ।
- औद्योगिक अस्वस्थता का अर्थ कारकों एवं परिणामों से अवगत कराना ।
- अस्वस्थ औद्योगिक कम्पनीज (विशेष प्रावधान) इकाई के औचित्य तथा प्रावधानों की जानकारी प्रदान करना ।
- अस्वस्थ औद्योगिक कम्पनीज (विशेष प्रावधान) अधिनियम की उपादेयता की जानकारी देना ।

11.1 परिचय

अस्वस्थ औद्योगिक कम्पनीज (विशेष प्रावधान) अधिनियम 1985 के अध्ययन से पूर्व औद्योगिक अस्वस्थता से संबंधित विभिन्न पहलुओं की जानकारी अति आवष्यक है जिनका वर्णन इस प्रकार है

किसी भी राष्ट्र का औद्योगिक विकास आर्थिक विकास का एक महत्वपूर्ण मापदण्ड है । प्रत्येक राष्ट्र की सरकार औद्योगिक विकास के लिये हर संभव प्रयत्नशील रहती है, परन्तु जब उद्योगों के विकास प्रक्रिया में शिथिलता आती है तो औद्योगिक इकाइयों के समक्ष कई गंभीर समस्यायें उपस्थित होती हैं । इनमें एक महत्वपूर्ण समस्या "औद्योगिक अस्वस्थता की है । यह समस्या न केवल विकासशील देशों वरन् विकसित राष्ट्रों में भी विद्यमान रहती है अत: आर्थिक विकास की उच्च दर, औद्योगिक उत्पादकता में वृद्धि तथा रोजगार का उपयुक्त स्तर बनाये रखने के लिये औद्योगिक अस्वस्थता का समाधान अति आवश्यक है ।

11.2 औद्योगिक अस्वस्थता की गंभीरता की स्थिति

भारत में औद्योगिक अस्वस्थता निरंतर बढ़ती जा रही है । औसत तौर पर भारत में प्रतिदिन 55 औद्योगिक इकाईयां अस्वस्थता की श्रेणी में आ जाती है । पिछले दो दशक से यह समस्या और गंभीर हुई है इससे न केवल सूती वस्त्र जूट, चीनी जैसे परम्परागत उद्योग वरन् इंजीनियरिंग, इलेक्ट्रीकल, केमिकल, सीमेंट और कागज जैसे आधुनिक उद्योग भी प्रभावित हुये हैं बड़ी संख्या में बड़ी मध्यम तथा लघु औद्योगिक इकाइयों की संख्या और बैंक ऋणों की बकाया राशि में वृद्धि हुई हैं। मार्च 2003 के अंत में भारत में औद्योगिक अस्वस्थता की स्थिति निम्नलिखित तालिका में दर्शाई गई है :-

मार्च 2003 में भारत में औद्योगिक अस्वस्थता की स्थिति (राशि करोड़ रु. मे)

औद्योगिक इकाइयों का स्वरूप	**अस्वस्थ इकाइयों की संख्या**	**कुल बैंक की बकाया ऋण की राशि**	**बैंक ऋण का प्रतिशत**
1. बड़ी एवं मध्यम औद्योगिक इकाइयां	3396	29109	83.60
2. लघु औधीगिक इकाइयां	167980	5706	16.40
योग	171376	34815	100.0

स्रोत : हैंड बुक ऑफ स्टेटिसटिकल ऑन द इण्डियन इकोनोमी

तालिका से स्पष्ट होता है कि मार्च 2003 तक 1,71,376 बड़ी, मध्यम, तथा लघु औद्योगिक इकाइयां अस्वस्थ थीं और इनकी बैंक ऋण बकाया राशि 34815 करोड़ रुपये थी । बड़ी एवं मध्यम औद्योगिक इकाइयों के बैंक ऋण बकाया प्रतिशत 83.6 था, वहीं लघु औद्योगिक इकाइयों का यह प्रतिशत 16.40 था ।

11.3 औद्योगिक अस्वस्थता' की परिभाषाएँ

औद्योगिक अस्वस्थता की गंभीर समस्या के कारण भारत में औद्योगिक अस्वस्थता को परिभाषित करने के प्रयास किये गये हैं । विवेकीकरण हेतु गठित समिति (1972) के अनुसार किसी औद्योगिक इकाई के खाते दीर्घकालीन अनियमित है जिसके लिये पोषक कार्यक्रम के विकास एवं निकट अनुवर्तन की आवश्यकता है,"अस्वस्थ" इकाई है ।

1975 में स्टेट बैंक द्वारा लघु उद्योगों के ऋण एवं अग्रिमों हेतु गठित समिति ने औद्योगिक अस्वस्थता को इस प्रकार परिभाषित किया है "एक औद्योगिक इकाई जो नियमित रूप से आंतरिक आधिक्य उत्पन्न करने में असफल हो रही है तथा वह जीवित रहने के लिये बार-बार बाह्य कोषों पर निर्भर है, अस्वस्थ इकाई है ।"

रिजर्व बैंक के अनुसार 'वह इकाई अस्वस्थ है जो गत एक वर्ष से नकद हानि वहन कर रही है और आगामी दो वर्षो में भी हानि वहन करने की संभावना विद्यमान है ।

ये सभी परिभाषाएँ अपने-अपने दृष्टिकोण से दी गई हैं जिनमें औद्योगिक अस्वस्थता के विषय में एक मत नहीं है औद्योगिक अस्वस्थता की स्पष्ट परिभाषा अस्वस्थ औद्योगिक कंपनी (विशेष प्रावधान) अधिनियम Sick Industrial Companies(Special Provision)Act 1985 SICA में दी गई है, जो 8 जनवरी 1986 को लागू किया गया ।

इस अधिनियम के अनुसार उस औद्योगिक कम्पनी को "अस्वस्थ" माना गया है जिसमें निम्नलिखित तीन विशेषताएं हैं -

1. उसे पंजीकृत हुए कम से कम 7 वर्ष हो चुके हों ।
2. उसे चालू वर्ष और उससे पहले वाले वित्तीय वर्ष में नकद हानि हुई हो ।
3. उसकी निबल या शुद्ध मूल्य खत्म हो चुका हो ।

यदि पिछले पांच वर्षो में किसी भी वर्ष में किसी कम्पनी का शुद्ध मूल्य 50 प्रतिशत से कम रह जाये तो उसे "आरंभिक अस्वस्थ कंपनी" कहते हैं ।

प्रारंभ में इस अधिनियम के अधीन केवल निजी क्षेत्र की इकाइयों को शामिल किया गया, परन्तु दिसम्बर 1991 से सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों को भी इसमें शामिल किया गया ।

1992 के संशोधन विधेयक के द्वारा 1985 के अधिनियम में दो परिवर्तन किये गये । पहला-रजिस्ट्रेशन की अवधि 7 वर्ष से घटाकर पांच वर्ष कर दी गई तथा, दूसरा-नकद हानि को छोड़ दिया गया।

अस्वस्थ औद्योगिक कंपनीज (विशेष प्रावधान) निरसन अधिनियम 2003 में औद्योगिक अस्वस्थता की परिभाषा में काफी परिवर्तन किया गया है । इस एक्ट के अनुसार उस औद्योगिक कंपनी को अस्वस्थ माना जायेगा -

1. जिसकी विचाराधीन वर्ष में कुल संचित हानि पिछले चार वर्षो में उसकी औसत शुद्ध मूल्य के 50 प्रतिशत से अधिक हो ।
2. जो लोनकर्ता की मांग के बावजूद लगातार तीन तिमाही अवधियों में लिये गये ऋणों की अदायगी न कर सके हों ।

11.4 औद्योगिक अस्वस्थता के कारक

एक औद्योगिक इकाई के अस्वस्थता के दो मूलभूत कारक हैं-

11.4.1 आंतरिक कारक:

इन में उन कारकों को शामिल किया जाता है जो औद्योगिक इकाई के भीतर पैदा होते हैं। इनको आसानी से नियंत्रित किया जा सकता है । इनका हल संस्था के स्तर पर निकाला जा सकता है । ये कारक उत्पादन, प्रबंध एवं वित्तीय व्यवस्था से जुड़े होते हैं । आंतरिक कारक निम्नानुसार है:-

1. विभिन्न क्रियात्मक क्षेत्रों जैसे वित्त, उत्पादन, विपणन तथा कार्मिक में कुप्रबंधन ।
2. गलत स्थान पर औद्योगिक इकाई की स्थापना ।
3. मांग का अति अनुमान एवं गलत लाभांश नीति ।
4. अनुप्रयुक्त नियोजन एवं प्रबंधकीय, अकुशलता के कारण परियोजनाओं का कमजोर क्रियान्दयन।
5. निर्मित माल के संदर्भ में कच्चे माल, उपकरण आदि का कमजोर सामग्री प्रबंध ।
6. संसाधनों का अनावश्यक विस्तार एवं अन्यत्र प्रयोग ।
7. मशीनरी एवं उपकरण के ह्रास हेतु प्रावधान की कमी ।
8. बदलते परिवेश के अनुरूप उत्पादन उपकरणों को आधुनिकीकृत करने, उत्पादन सम्मिश्रण तथा विपणन सम्मिश्रण करने में असफलता ।
9. कमजोर श्रम-प्रबंध संबंध, श्रमिकों का निम्न मनोबल, कम उत्पादकता, हड़ताल एवं तालाबंदी ।
10. दोषपूर्ण संयंत्र एवं मशीनरी आदि ।

11.4.2 बाह्य कारक:-

वे कारक है जो औद्योगिक इकाई के बाहर से संबंधित है । इन पर इकाई विशेष का कोई नियंत्रण नहीं होता है । बाह्य कारक निम्नानुसार है -

1. कोयले की कमी तथा पावर-कट से उत्पन्न उर्जा संकट ।
2. कच्चे माल पूर्ति दशाओं की प्रतिकूलता के कारण अनुकूलतम क्षमता को प्राप्त करने में असफलता।
3. आधारभूत आर्थिक संरचना का अभाव जैसे :-यातायात, बीमा, बैंकिंग सुविधाएँ आदि ।
4. उत्पादन वितरण एवं कीमतों से संबंधित सरकारी नीति ।
5. खराब औद्योगिक संबंध ।
6. बाजार में मंदी की स्थिति, तकनीकी में परिवर्तन ।
7. प्रतिकूल अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियाँ एवं दबाव आदि ।

उपरोक्त सभी कारकों के संयोजन से औद्योगिक अस्वस्थता हो सकती है, परन्तु औद्योगिक अस्वस्थता का उत्तरदायी घटक प्रबंधकीय अयोग्यता है । एक अनुमान के अनुसार 44 प्रतिशत औद्योगिक कंपनी अयोग्यता के कारण अस्वस्थ हो जाती हैं । अत: औद्योगिक इकाई के मालिकों को प्रबंधकीय कुशलता पर ध्यान देना चाहिये । अच्छा प्रबंध अस्वस्थ इकाई को सक्षम इकाई में बदल सकता है, जबकि खराब प्रबंध, अच्छी तथा सक्षम इकाई को अस्वस्थ इकाई में बदल सकता है ।

11.5 औद्योगिक अस्वस्थता के परिणाम

औद्योगिक अस्वस्थता के फलस्वरूप संपूर्ण अर्थव्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है । इनमें से कुछ परिणामों को निम्नानुसार स्पष्ट कर सकते हैं :

1. **रोजगार में कमी-** औद्योगिक अस्वस्थता से औद्योगिक इकाई कार्य करना बंद कर देती है। परिणामस्वरूप श्रमिकों की छंटनी शुरु हो जाती है, वे बेरोजगार हो जाते हैं । अत: रोजगार की संभावनाओं पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है ।

2. **औद्योगिक अशान्ति -** औद्योगिक इकाई के बंद होने से व्यापक स्तर पर हड़ताल होती है जिससे औद्योगिक वातावरण की शांति भंग होती है ।

3. **साधनों का अपव्यय -** अस्वस्थ औद्योगिक इकाई में लगे साधन बेकार हो जाते हैं । यह समस्या उस समय और भी अधिक गंभीर हो जाती है जहां अस्वस्थ इकाई बहुत बड़ी हैं

4. **सहायक इकाईयों पर प्रतिकूल प्रभाव -** कई बार औद्योगिक इकाई अग्रगामी और पश्चगामी सम्बद्धता के द्वारा, दूसरी औद्योगिक इकाईयों से जुड़ी होती है इसमें एक इकाई के अस्वस्थ हो जाने पर दूसरी औद्योगिक इकाईयों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है ।

5. **बैंकों एवं वित्तीय संस्थाओं पर बुरा प्रभाव :-** औद्योगिक अस्वस्थता से बैंकों तथा वित्तीय संस्थाओं को भारी नुकसान होता है क्योंकि इन संस्थाओं ने जो ऋण राशि प्रदान की है वह अस्वस्थ इकाईयों में फंस जाती है, यद्यपि ये संस्थायें कानूनी कार्यवाही करती हैं, परंतु इससे एक ओर तो इनका समय लगता है दूसरी ओर दी गई पूरी ऋण राशि वापस नहीं आती है ।

6. **सरकारी आय में हानि :-** केन्द्र, राज्य तथा स्थानीय सरकारें औद्योगिक इकाइयों से कर के रूप में काफी राजस्व प्राप्त करती है अत: औद्योगिक इकाइयों की अस्वस्थता से सरकार को भारी मात्रा में आय की हानि होती है ।

7. **औद्योगिक-वातावरण में निराशा -**अस्वस्थ औद्योगिक इकाई के बंद होने पर निवेशकों और उद्यमियों में निराशा उत्पन्न होती है । इस निराशा से न केवल अस्वस्थ औद्योगिक इकाई के शेयर के मूल्य गिरते हैं, वरन् इस निराशा से अन्य औद्योगिक कंपनियों के शेयर गिरने लगते है । इससे निवेशकों एवं उद्यमियों की मनोवृत्ति पर बुरा प्रभाव पड़ता है ।

ऊपर वर्णित प्रभावों से राष्ट्र के सामाजिक आर्थिक स्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है अत: सरकार ने औद्योगिक अस्वस्थता को गंभीरता से लिया है और विभिन्न प्रयास किये हैं । इनमें सबसे महत्वपूर्ण वैधानिक उपाय, अस्वस्थ औद्योगिक कंपनीज ईवशेष प्रावधान) अधिनियम 1985 SICA है ।

11.6 अस्वस्थ औद्योगिक कम्पनीज (विशेष प्रावधान) अधिनियम.1985 (SICA)

अस्वस्थ औद्योगिक कंपनीज (विशेष प्रावधान) अधिनियम 1985 (SICA) :- अस्वस्थ औद्योगिक कंपनीज (विशेष प्रावधान) अधिनियम 1985 वैधानिक उपायों में अति महत्वपूर्ण है यह निजी, सार्वजनिक तथा दोनों क्षेत्रों में लागू होता है ।

इस अधिनियम को लागू करने का मुख्य कारण औद्योगिक इकाइयों में अस्वस्थता का निर्धारण करना था ताकि निवेश को लाभदायक बनाने के उद्देश्य से संभावित रूप से सक्षम इकाईयों का तेजी से पुनरुद्धार हो सके तथा उसी समय पर अन्य उत्पादक प्रयोग के लिये इकाई के बंद पड़े निवेश को छुड़ाने के लिये अस्वस्थ औद्योगिक कंपनी के समापन को सुनिश्चित किया जा सके ।

11.7 अधिनियम के उद्देश्य

अस्वस्थ औद्योगिक कंपनीज (विशेष प्रावधान) अधिनियम 1985 (SICA) के व्यापक उद्देश्य इस प्रकार है :

1. समय पर संभाव्य अस्वस्थ कंपनी का पता लगाना ।
2. अस्वस्थ औद्योगिक कंपनियों के लिये बचाव, उपचार एवं अन्य उपायों हेतु विशेषज्ञों की समिति का गठन करना।
3. स्वस्थ औद्योगिक कंपनी से जुड़े आकस्मिक एवं समस्त मामलों में उपायों को तेजी से लागू करना।

11.8 अधिनियम के महत्वपूर्ण प्रावधान

1. दो अर्ध न्यायिक निकायों के गठन (Two Quasi Judicial Bodies) इस अधिनियम में दो न्यायिक निकायों के गठन का प्रावधान किया गया है,ये हैं -औद्योगिक एवं वित्तीय पुनर्निर्माण बोर्ड (Induatrial and Financial Reconstrucation Board.BIFR) जिसका कार्य औद्योगिक अस्वस्थता से निपटने के लिये अस्वस्थ औद्योगिक इकाइयों के पुनरुद्धार तथा असक्षम इकाइयों के समापन का निर्णय लेना है । दूसरी न्यायिक निकाय औद्योगिक एवं वित्तीय पुनर्निर्माण अपीलीय प्राधिकरण(Appellate Authority for Industrial and Financial Reconstruction AAIFR) जो औद्योगिक एक वित्तीय पुनर्निर्माण बोर्ड के विरूद्ध अपील की सुनवाई के लिये गठित की गई ।

2. औद्योगिक एवं वित्तीय पुनर्निर्माण बोर्ड को किसी औद्योगिक कंपनी में अस्वस्थता निर्धारण के लिये निम्नलिखित परिस्थितियों में एक जांच करनी होगी :

1. यदि अस्वस्थ औद्योगिक कंपनी के बोर्ड निदेशकों ने कंपनी के उपचारात्मक उपायों हेतु औद्योगिक एवं वित्तीय पुनर्निर्माण बोर्ड के सक्षम संदर्भ प्रस्तुत किया है । इस क्रम में औद्योगिक कंपनी को अस्वस्थ होने की दशा में अपने विधिवत अंकेक्षित खातों को अंतिम रूप देने की तिथि से 60 दिनों के भीतर बोर्ड के समक्ष संदर्भ प्रस्तुत किया जाना चाहिये । इस संदर्भ में अस्वस्थ कंपनी के निदेशक मण्डल कारणों का उल्लेख भी करें ।

2. औद्योगिक कंपनी की अस्वस्थता तथा उसकी वित्तीय स्थिति से संबंधित 'संदर्भ' प्राप्त होने पर औद्योगिक एवं वित्तीय पुनर्निर्माण बोर्ड, केन्द्र सरकार, रिजर्व बैंकसंबंधित राज्य सरकार, संबंधित वित्तीय संस्थाओं एवं बैंकों को इस संदर्भ की सूचना प्रदान करे ।

3. यदि बोर्ड को यह प्रतीत होता है कि औद्योगिक कंपनी विशेष जांच के योग्य है तो कंपनी के वित्तीय तथा अन्य हितों की रक्षा के लिये बोर्ड एक या एक से अधिक विशेष निदेशकों की नियुक्ति कर सकता है । भारतीय कंपनी अधिनियम 1956 और औद्योगिक कंपनी के पार्षद सीमानियम, पार्षद अंतर्नियम और अन्य प्रपत्रों से संबंधित नियमों के तहत विशेष निदेशकों की नियुक्ति वैध एवं प्रभावी होगी । यदि जांच के पश्चात, बोर्ड संतुष्ट हो जाता है कि औद्योगिक कंपनी अस्वस्थ हो गई है तब

कंपनी से संबंधित तथ्यों एवं मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए निम्नलिखित निर्णय ले सकता है.

1. बोर्ड संबंधित कंपनी को संचित हानि के समायोजन हेतु शुद्ध मूल्य बढ़ाने के लिए निश्चित समय निर्धारित कर सकता है ।

2. यदि बोर्ड संबंधित कंपनी को एक निश्चित समय में संचित हानियों को कम करने तथा शुद्ध मूल्य बढ़ाने को सार्वजनिक हित में उचित नहीं मानता है, तो ऐसी दशा में बोर्ड अविलम्ब किसी कार्यशील संस्था को अस्वस्थता निवारण के संबंध मे उपायों की विभिन्न योजनाएं बनाने के लिये आदेशित कर सकता है, इन उपायों में निम्नलिखित उपाय शामिल हैं

(1) अस्वस्थ औद्योगिक कंपनी का वित्तीय पुनर्निर्माण ।

(2) कंपनी के प्रबंध में परिवर्तन तथा अधिग्रहण करके अस्वस्थ औद्योगिक इकाई का उचित प्रबंधन।

(3) अस्वस्थ औद्योगिक कंपनी का एक कंपनी में विलय या अन्य कंपनी का अस्वस्थ औद्योगिक कंपनी में विलय ।

(4) अस्वस्थ औद्योगिक कंपनी के कुछ या संपूर्ण भाग का विक्रय या पट्टा निर्धारण ।

(5) अस्वस्थ औद्योगिक कंपनी के लिये उपयुक्त अन्य बचाव एवं उपचारात्मक उपाय ।

(6) निर्धारित उद्देश्यों की पूर्ति से संबंधित अनुषांगिक, प्रासंगिक एवं पूरक उपाय ।

3. यदि बोर्ड का यह मत है कि अस्वस्थ औद्योगिक कंपनी उचित समय में अपनी शुद्ध मूल्य को संचित हानि से अधिक नहीं कर सकेगी और अपने सारे वित्तीय दायित्वों को निपटाने के पश्चात भविष्य में सक्षम नहीं हो सकेगी तो बोर्ड, कंपनी के समापन को उचित समझ कर संबंधित उच्च न्यायालय को रिपोर्ट भेज देता है । उच्च न्यायालय बोर्ड की राय के आधार पर कंपनी अधिनियम 1958 के समापन प्रावधानों के अनुरूप अस्वस्थ औद्योगिक कंपनी का समापन करेगा ।

4. यदि ऐसी औद्योगिक कंपनी जिसकी जांच पूर्ण नहीं हुई है, कोई योजना तैयार एवं स्वीकृत नहीं हो सकी है या स्वीकृत योजना के अंतर्गत क्रियान्वयन के अधीन है तो ऐसी कंपनी के समापन. निष्पादन तथा रखी हुई संपत्ति के विरूद्ध कोई दबाव संबंधी कोई कार्यवाही नहीं की जा सकेगी । ऐसी कंपनी से रूप या वसूली, किसी संपत्ति तथा गारंटी के विरूद्ध वाद प्रस्तुत नहीं किया जा सकेगा । इसके साथ ही बोर्ड अस्वस्थ औद्योगिक कंपनी के लिये यह घोषणा कर सकता है कि कंपनी के अस्वस्थता के आदेश से पूर्व की अवधि तक, कंपनी के सभी या किसी अनुबंध, संपत्ति के आश्वासन. समझौते, पुरस्कार, स्थायी आदेश आदि सभी निलंबित माने जायेंगे तथा कंपनी के अधिकार, विशेषाधिकार, कर्त्तव्य, दायित्व भी निलंबित रहेंगे । बोर्ड के विशिष्ट निर्देशों से ही प्रवर्तनीय होगा । ये सभी घोषणायें दो वर्ष तक के लिये की जा सकती हैं आवश्यक होने पर इनको एक-एक वर्ष से बढ़ाया जा सकता है जो कुल 7 वर्ष की अवधि से अधिक नहीं होगी ।

5. जिन औद्योगिक कंपनियों ने इसके प्रावधानों, योजनाओं या बोर्ड तथा अपीलीय प्राधिकरण के आदेशों की अवहेलना की है उन्हें कारावास की सजा होगी । सजा की अवधि अधिकतम तीन वर्ष तक है और उसे जुर्माना भी देना होगा ।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि अस्वस्थ औद्योगिक कंपनीज अधिनियम (विशेष प्रावधान) 1985 (SICA) में औद्योगिक इकाई के अस्वस्थता की जांच तथा उपायों के साथ-साथ, आदेशों के उल्लंघन पर सजा का भी प्रावधान है

11.9 औद्योगिक एवं वितीय पुनर्निर्माण बोर्ड

इस अधिनियम में अस्वस्थ औद्योगिक कंपनी की जांच तथा विभिन्न उपायों के निर्धारण में महत्त्वपूर्ण भूमिका **औद्योगिक एवं वित्तीय पुनर्निर्माण बोर्ड** की है । इसका वर्णन इस प्रकार है :

औद्योगिक एवं वित्तीय पुनर्निर्माण बोर्ड एक शीर्ष संस्था है । भारत सरकार ने जनवरी 1987 में अस्वस्थ औद्योगिक कंपनीज (विशेष प्रावधान) अधिनियम 1965 के अंतर्गत, औद्योगिक एवं वित्तीय पुननिर्माण बोर्ड की स्थापना की । इसका प्रमुख उद्देश्य औद्योगिक अस्वस्थता की जांच करना तथा अस्वस्थता निवारण के उपायों का निर्धारण करना था ।

11.9.1 इस बोर्ड के कार्य निम्नानुसार हैं :-

(1) अस्वस्थ औद्योगिक इकाइयों के विषय में सभी उपायों का निर्धारण करना जिससे कि औद्योगिक अस्वस्थता रोकी जा सके ।

(2) यदि कोई औद्योगिक इकाई अस्वस्थ है, तो इसके अस्वस्थता निवारण के उपायों पर विचार करना।

(3) उपाय निश्चित हो जाने के पश्चात् इन्हें शीघ्रातिशीघ्र लागू कराने संबंधी सिफारिश करना ।

11.9.2 इस बोर्ड के अधिकार निम्नानुसार हैं :-

1. अस्वस्थ इकाई के पुनरुद्धार योजनाओं की तैयारी हेतु कार्यशील संस्था की नियुक्ति का अधिकार।
2. कंपनी के विशेष-हितों की रक्षा के लिये विशेष निदेशकों की नियुक्ति का अधिकार ।

बोर्ड इन अधिकारों के द्वारा अपने विभिन्न कार्यो को आसानी से संपन्न करता है । यह निश्चित हो जाने पर कि औद्योगिक इकाई अस्वस्थ हैबोर्ड तय करता है, कि अस्वस्थ इकाई के लिये किस तरह की कार्यवाही की जाये ? इस संबंध में तीन प्रकार के निर्णय लेता है -

(1) कंपनी के निदेशकों को समय दिया जाना ताकि वे वित्तीय संस्थाओं द्वारा प्रारंभ की गई योजना से. उचित समय में अपनी शुद्ध पूंजी की मात्रा को ठीक कर सके । फ़

(2) किसी भी कार्यशील संस्था के माध्यम से कंपनी विशेष के लिये पुनरुद्धार योजना तैयार करने संबंधी निर्णय लेना।

(3) कंपनी के समापन की सिफारिश करना ।

11.9.3 औद्योगिक एवं वित्तीय पुनर्निर्माण बोर्ड के उद्देश्य एवं कार्य व्यापक है । औद्योगिक एवं वित्तीय पुनर्निर्माण बोर्ड के समक्ष मई 1987 में अपनी स्थापना से लेकर अगस्त 2005 के अंत तक 6775 मामले आये, इनमें ये 295 केन्द्र तथा राज्य सरकार के सार्वजनिक उपक्रमों से संबंधित थे। 5300 मामलों का पंजीकरण किया गया । 1987 मामलों को रह किया गया 637 मामलों में पुनर्निर्माण योजनाओं को स्वीकस्ती दी गई । इनमें से 218 मामले औद्योगिक एवं वित्तीय पुनर्निर्माण अपीलीय प्राधिकरण तथा उच्चतम न्यायालय से संबंधित हैं । 1306 कम्पनियों को बंद करने और 385 कंपनियों को 'अब अस्वस्थ नहीं है कहकर औद्योगिक कंपनी (विशेष प्रावधान) अधिनियम 1985 की धाराओं

से मुक्त कर दिया गया क्योंकि पुनरुद्धार योजनाओं के क्रियान्वयन के पश्चात उनकी शुद्ध पूंजी धनात्मक हो गई थी ।

अस्वस्थ औद्योगिक कंपनीज (विशेष प्रावधान) निरसन अधिनियम 2003 Sick Industrial companies(Spacial Provision) Repeal Act 2003 के पारित होने के पश्चात राष्ट्रीय कंपनी विधि ट्राइब्यूनल (National Companies Law Tribunal N.C.L.T..) की स्थापना की गई इससे पूर्व औद्योगिक अस्वस्थता के संबंध में तीन संस्थायें कार्यरत थीं-

1. **कंपनी विधि बोर्ड** जो कंपनी अधिनियम 1956 के नियमों का परिचालन और उससे संबंधित नियमों पर विचार करता था ।

2. **औद्योगिक एवं वित्तीय पुनर्निर्माण बोर्ड** जो अस्वस्थ इकाइयों के पुनर्निर्माण या पुनरुद्धार का कार्य देखता था और कंपनी को बंद करने की सिफारिश करता था ।

3. **उच्च न्यायालय** जो औद्योगिक एवं वित्तीय पुनर्निर्माण बोर्ड के सिफारिश पर कंपनी के समापन के आदेश जारी करता था ।

11.10 अस्वस्थ औद्योगिक कम्पनीज (विशेष प्रावधान) अधिनियम 1985 का मूल्यांकन

अस्वस्थ औद्योगिक कंपनी (विशेष प्रावधान) 1985 (SICA) के अंतर्गत औद्योगिक कंपनी की अस्वस्थता से संबंधित विभिन्न प्रावधान किये गये, परन्तु इस अधिनियम में कुछ कमियां रही हैं जो कि इस प्रकार हैं :-

1. औद्योगिक अस्वस्थता की **पहचान प्रक्रिया में देरी** हो जाती थी ।

2. औद्योगिक कंपनी की अस्वस्थता सिद्ध हो जाने के पश्चात अस्वस्थ **कंपनी के पुनर्निर्माण व पुनरुद्धार योजनाओं को लागू करने में काफी समय** लग जाता था ।

3. कई बार औद्योगिक कंपनियां जानबूझ कर "अस्वस्थ कंपनी. घोषित कराने के प्रयास करती थी जिससे वे विशेष योजनाओं का लाभ उठा सके और वित्तीय संस्थाओं से लिये ऋणों का पुनर्भुगतान विलम्बित कर सके । परिणामस्वरूप वास्तविक अस्वस्थ औद्योगिक इकाइयां इस अधिनियम के लाभ उठाने से वंचित रह गई । छ

4. अस्वस्थ औद्योगिक कंपनियां अस्वस्थता की आड़ में अपनी संपत्तियों को अन्यत्र विनियोजित कर कोषों का दुरूपयोग करती थीं ।

5. बोर्ड की स्वायत्तता के अभाव में कंपनी के समापन प्रकिया में अनावश्यक देरी होती थी क्योंकि कंपनी का समापन उच्च न्यायालय के आदेशानुसार ही होता था । उच्च न्यायालय में काफी समय लग जाता था परिणामस्वरुप औद्योगिक अस्वस्थता की गंभीरता में वृद्धि हो जाती थी ।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि इन्हीं कमियों के कारण इस अधिनियम की उपादेयता पर प्रश्न चिन्ह लग गया । उदारीकरण के दौर में सरकार की सोच में भी परिवर्तन हुआ, जहाँ पहले सरकार का यह प्रयास होता था कि अस्वस्थ औद्योगिक इकाई का पुनर्निर्माण तथा पुनराद्धार किया जाये ताकि श्रमिकों का रोजगार बचा रहे, वहीं अब सरकार की यह सोच है कि अस्वस्थ औद्योगिक इकाई को शीघ्रातिशीघ्र बंद किया जाये ताकि बैंकों, वित्तीय संस्थाओं एवं उद्योगपतियों के हितों की रक्षा हो सके। इन्हीं कारणों से ऐसे अधिनियम की आवश्यकता महसूस की गई जिससे अस्वस्थ औद्योगिक इकाई

से संबंधित सभी निर्णय अतिशीघ्र लागू किये जा सकें। परिणामस्वरुप इस अधिनियम को निरस्त किया गया और अस्वस्थ औद्योगिक कंपनीज (विशेष प्रावधान) निरसन अधिनियम 2003 (SICK Industrial Companies Special Provision) Repeal Act. 2003 पारित किया गया ।

11.11 उपसंहार

इस इकाई में औद्योगिक अस्वस्थता की समस्या की गंभीरता को ध्यान में रखते हुए औद्योगिक अस्वस्थता के विभिन्न पहलुओं को स्पष्ट किया गया है तथा अधिनियम के उद्देश्य, विभिन्न प्रावधानों औद्योगिक एवं वित्तीय पुनर्निर्माण बोर्ड के कार्य 'अधिकार एवं मूल्यांकन को स्पष्ट किया गया है अंत में इस अधिनियम का मूल्यांकन किया गया है ।

11.12 अभ्यास प्रश्न

1. औद्योगिक अस्वस्थता को परिभाषित कीजिए ।
2. औद्योगिक अस्वस्थता के विभिन्न कारकों एवं परिणामों को स्पष्ट कीजिए ।
3. अस्वस्थ औद्योगिक कम्पनीज (विशेष प्रावधान) अधिनियम की स्थापना क्यों की गई? स्पष्ट कीजिए ।
4. अस्वस्थ औद्योगिक कम्पनीज (विशेष प्रावधान) अधिनियम के उद्देश्य बताइये ।
5. अस्वस्थ औद्योगिक कम्पनीज (विशेष प्रावधान) अधिनियम के तहत गठित संस्थाओं के उद्देश्य बताइये ।
6. औद्योगिक एवं वित्तीय पुनर्निर्माण बोर्ड के कार्य एवं अधिकार बताइये ।
7. अस्वस्थ औद्योगिक कम्पनीज (विशेष प्रावधान) अधिनियम को क्यों निरस्त किया गया ?
8. अस्वस्थ औद्योगिक कम्पनीज (विशेष प्रावधान) अधिनियम की कमियाँ बताईये ।

11.13 संदर्भ पुस्तकें एवं वेबसाइट

अस्वस्थ औद्योगिक कम्पनीज के संबंध मे गहन अध्ययन हेतु निम्नलिखित संदर्भ पुस्तकें प्रयुक्त की जा सकती है :

एस. के मिश्र एवं वी. के पुरी - भारतीय अर्थव्यवस्था हिमालय पब्लिशिंग हाउस बोम्बे ।

रुद्र दत एवं के.पी.एम सुन्दरम - भारतीय अर्थव्यवस्था अंग्रेजी संस्करण - एस. चाँद एण्ड कंपनी, नई दिल्ली ।

स्वामी एवं गुप्ता - भारत में व्यावसायिक वातावरण, रमेश बुक डिपो, जयपुर

http://www.the hindubusinessline.com/

http://www.commontil.prg/

http://business.gov.in/

इकाई- 12:भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना

इकाई की रूपरेखा :

12.1 प्रस्तावना

12.2 भारतीय अर्थव्यवस्था की प्रमुख विशेषताएँ

12.3 भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास में आने वाली समस्यायें

12.4 भारत में मानवीय संसाधन

12.5 भारत की नई जनसंख्या नीति (फरवरी 2000)

12.6 आधारभूत आर्थिक संरचना

12.7 बोध प्रश्न

12.8 संदर्भ ग्रंथ

12.1 प्रस्तावना

भारतीय इतिहास आर्थिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण रहा है । 1947 में संघर्ष के बाद भारत को स्वतंत्रता मिली और इसके बाद पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से आर्थिक विकास के लिए सक्रिय कदम उठाये गये थे ।

भारतीय अर्थव्यवस्था विकासशील अर्थव्यवस्था है, यहां जनशक्ति एवं आर्थिक साधनों का उपयोग करने की दृष्टि से पूंजी का अभाव पाया गया है । देश की विशाल एवं विविधता पूर्ण अर्थव्यवस्था में जहां एक ओर सम्पन्नता में विपन्नता, औद्योगिक पिछड़ापन, बेकारी, भूखमरी है तो दूसरी ओर जनसंख्या वृद्धि, रूढ़िवादिता, क्षेत्रीय एवं आर्थिक असमानताएँ नजर आती है ।

भारत विश्व का सबसे बड़ा प्रजातंत्र एवं आध्यात्मिक गुरु होने के साथ-साथ विकासशील देशों का हितचिन्तक एवं मार्गदर्शक भी है । ऐसी विविधता वाली संस्कृति की भारतीय अर्थव्यवस्था में एक विकासशील देश के रूप में निम्न आधारभूत विशेषताएं है:-

12.2 भारतीय अर्थव्यवस्था की प्रमुख बिषेशताएँ

(i) **कृषि की प्रधानता** - भारतीय अर्थव्यवस्था एक कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था है । भारत में राष्ट्रीय आय का लगभग आधे से अधिक भाग कृषि उत्पादन से प्राप्त होता है । देश की कुल जनसंख्या में से लगभग 69.7 प्रतिशत जनसंख्या कृषि व इससे सम्बन्धित कार्यो में लगी हुई है । आंतरिक एवं विदेशी व्यापार में कृषि से उत्पन्न पदार्थो की प्रधानता है ।

(ii) **प्रतिव्यक्ति निम्न आय -** भारत में आर्थिक विकास के अभाव में राष्ट्रीय आय व प्रति व्यक्ति आय का स्तर विकसित राष्ट्रों की तुलना में काफी नीचा रहा है । विश्व विकास रिपोर्ट 2005 के अनुसार भारत की प्रति व्यक्ति आय 530 डालर थी, जबकि इसी वर्ष अमेरिका में यह 37610 डीलर थी, यह भारत की प्रति व्यक्ति आय का 71 गुणा अधिक थी । राष्ट्रीय आय की दृष्टि से भारत की स्थिति व 1950-51 में 9142 करोड़ रूपये थी जो बढ़कर 2002-03 में 19,79,639 करोड़ रू. हो गई थी। फिर भी विकसित देशों की तुलना में हम काफी पीछे है ।

(iii) **पूंजी निर्माण की निम्न दर :-** पूंजी निर्माण एवं संचय बचत की मात्रा पर निर्भर करती है । आर्थिक दरिद्रता और निम्न आय के कारण अर्थव्यवस्था में बचतों एवं विनियोग का स्तर नीचा है । जहां विकसित देशों मे पूंजी निर्माण की दर 25 प्रतिशत से 35 प्रतिशत है, वहां भारत की पूंजी निर्माण की दर 24 प्रतिशत है । भारत में 1950-51 में पूंजी निर्माण की दर 5.5 प्रतिशत वार्षिक थी, जो 2002-03 में बढ़कर 25.8 प्रतिशत हो गई थी ।

(iv) **आय के वितरण में असमानताएँ :-** भारत में धन एवं आय के वितरण में भारी असमानताएँ पाई जाती है । राष्ट्रीय आय का अधिकांश भाग अल्पसंख्यक अमीरों को प्राप्त होता है जबकि जनसंख्या के बहु त बड़े भाग को राष्ट्रीय आय का थोड़ा सा ही भाग मिल पाता है । भारत की दो तिहाई जनसंख्या निर्धनता के कगार पर है । देश के 15 प्रतिशत धनी राष्ट्रीय आय का 10 प्रतिशत भाग हड़प जाते है, जबकि 50 प्रतिशत लोगों को राष्ट्रीय आय का 22 प्रतिशत भाग ही मिल पाता है ।

(v) **औद्योगिक पिछड़ापन एवं असंतुलित विकास -** सभी अल्प विकसित देशों में बड़े पैमाने के उद्योगों का अभाव पाया जाता है । अर्थव्यवस्था में आधारभूत संरचना के अभाव में विकास तीव्र गति से नहीं हो पाता है । भारतीय अर्थव्यवस्था में धीमी गति से औद्योगिकीकरण के कई कारण रहे है, जैसे - पूंजी की कमी, आधारभूत संरचना का अभाव, भारी मशीनों का अभाव, प्रशिक्षण संस्थाओं की कमी एवं पूँजी की कमी, इत्यादि ।

(vi) **जनसंख्या में वृद्धि :-** भारतीय अर्थव्यवस्था में जनसंख्या की विस्फोटक वृद्धि से जनसंख्या का भार निरन्तर बढ़ता जा रहा है । भारत में विश्व की 1687 प्रतिशत जनसंख्या है, परन्तु क्षेत्रफल केवल 2.4 प्रतिशत ही है । जनसंख्या की दृष्टि से विश्व में दूसरा स्थान हैं । 1951 में भारत की जनसंख्या 36 करोड़ थी जो बढ़कर 2001 में 102.7 करोड से अधिक हो गई थी ।

(vii) **निर्धनता का कुचक्र :-** भारत में समाज का एक बड़ा भाग अभी भी अपने जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पाता है । 1999-2000 में 26.17 प्रतिशत लोग निर्धनता रेखा के नीचे जीवन यापन कर रहे थे ।

(viii) **अर्द्ध-विकसित विकासशील अर्थव्यवस्था :-** भारतीय अर्थव्यवस्था एक पिछड़ी किन्तु विकासशील अर्थव्यवस्था है । अर्थव्यवस्था मे आर्थिक पिछड़ापन एवं दरिद्रता, पूंजी निर्माण की धीमी गति, बेरोजगारी, तकनीकी ज्ञान का अभाव, जनसंख्या का अत्यधिक भार आदि के समापन के लिए योजनाबद्ध विकास द्वारा भारतीय अर्थव्यवस्था अब निरन्तर आर्थिक विकास की ओर बढ़ती जा रही है । औद्योगिकीकरण, कृषि विकास, परिवहन एवं संचार का विस्तार हो रहा

(ix) **निम्न जीवन स्तर :-** भारतीय अर्थव्यवस्था में जनता का जीवन-स्तर विकसित देशों के मुकाबले मे काफी नीचा है । देश की 26 प्रतिशत जनता गरीबी रेखा से नीचे जीवन जी रही हैं । उन्हें जीवन की सुविधाएं तो दूर, भर-पेट भोजन तक नहीं मिलता है ।

(x) **बाजार की अपूर्णताऐं :-** भारत में बाजार से संबंधित कई अपूर्णताऐ देखने को मिलती हैं । जैसे - उत्पादन के साधनों की अगतिशीलता मूल्यों की बेलोचता बाजार की परिस्थितियों की अज्ञानता, बेलोचदार ढांचा एवं विशिष्टीकरण का अभाव आदि अपूर्णताओं के मरण उद्योगों में विनियोग नहीं हो पाता है ।

12.3 भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास में आने वाली समस्याऐं

भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास में आने वाली कठिनाईयां निम्नानुसार है :-

(1) आर्थिक समस्याएँ

(i) **पूंजी की कमी :-** भारत में प्रति व्यक्ति आय व राष्ट्रीय आय कम होने से बचत कम होती है, जिसके परिणामस्वरूप पूंजी निर्माण की दर कम होती है । पूंजी निर्माण की दर कम होने से उद्योगों की स्थापना विकास व विस्तार में समस्याएँ उत्पन्न होती है ।

(ii) **प्राकृतिक एवं मानवीय साधनों का कम विदोहन :-** भारत में प्राकृतिक एवं मानवीय साधन भरपूर मात्रा में है परन्तु उनका पूर्ण उपयोग न करने के कारण आर्थिक विकास कम हुआ है ।

(iii) **आर्थिक वृद्धि दर में कमी :-** भारत में वित्तीय वर्ष 2002-03 की राष्ट्रीय आय से संबंधित अनुमान में यह बताया गया है कि आर्थिक वृद्धि दर घट कर 6 प्रतिशत रह गई है ।

(iv) **विदेशी ऋण भार में वृद्धि :-** भारत पर कुल विदेशी ऋण मार्च के अन्त में 9768 अरब डीलर था जो बढ़कर मार्च 2003 के अन्त में 98.44 अरब डीलर हो गया था ।

(v) **औद्योगिक रूग्णता :-** मार्च, 2002 तक देश में ऋण एवं कमजोर इकाइयों की संख्या 38 फीसदी से बढ़कर 3 लाख से अधिक हो चुकी है । इनमें से अधिकतर लघु इकाइयां है । रूग्ण लघु इकाइयों की संख्या 3,06,221 है, जबकि गैर लघु इकाइयों की संख्या 2,792 है । इन इकाईयों में 4313 करोड़ रू. लघु इकाईयों में तथा 15,150 करोड़ रू. गैर लघु इकाइयों में फंसे हुए है ।

(vi) **बेरोजगारी में वृद्धि :-** भारत में वर्ष 2002 तक भारत के सेना केन्द्रों में 4-10 करोड़ बेरोजगार पंजीकृत थे ।

(vii) **तकनीकी विकास का अभाव :-** भारत में तकनीकी एवं प्रौद्योगिकी विकास बहुत ही पिछड़ा हुआ है । इसके साथ ही विशेषज्ञों व प्रशिक्षण कर्त्ताओं का अभाव रहा है ।

(2) राजनैतिक समस्याएँ

(i) **राजनैतिक अस्थिरता :-** राजनैतिक अस्थिरता के कारण आर्थिक विकास कमजोर रहा है । राजनेता अपनी कुर्सी बचाने के चक्कर में आर्थिक विकास की उपेक्षा करते रहे और आर्थिक विकास को बाधा पहुंचाई है ।

(ii) **राजनैतिक भष्ट्राचार :-** आज भी प्रशासन में लालफीताशाही, भाई भतीजावाद और रिश्वतखोरी का बोलबाला है । भ्रष्ट प्रशासन आर्थिक विकास मे बहुत बड़ी बाधा रहा है ।

(iii) **जन सहयोग में कमी -** भारत में राजनैतिक सत्ताधारियों के प्रति जनता का विश्वास कम हुआ है । जनता का पूर्ण सहयोग प्राप्त नहीं हो पाया है । जिसके परिणामस्वरूप आर्थिक विकास की दर कम रही है ।

(iv) **अकुशल नेतृत्व -** भारत में स्वतंत्रता के बाद कुशल, योग्य व ईमानदार राजनेताओं का अभाव रहा है । अधिकांश राजनेता सिर्फ अपने स्वार्थ के लिए जनता का शोषण करते हैं ।

(v) **बढ़ता आतंकवाद -** भारत में आतंकवादी गतिविधियों मे तेजी से वृद्धि रही है । मासूम लोगों की जान से खेला जा रहा है ।

(3) सामाजिक एवं अन्य समस्याएँ

(i) **जनसंख्या में वृद्धि :-** भारत में जनसंख्या की वृद्धि तेजी से हो रही है । प्रतिवर्ष जनसंख्या में 1.93 प्रतिशत की वृद्धि, 2.7 करोड़ नये बच्चे जन्म ले रहे हैं ।

(ii) **रूढ़िवादी समाज :-** भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में बसने वाली जनसंख्या अत्यधिक रूढ़िवादी और उनमें प्रगतिशीलता का अभाव है ।

(iii) **अशिक्षा :-** भारत में शिक्षा का अभाव है । कुल जनसंख्या का 65.4 प्रतिशत ही साक्षर है । उनमें भी स्त्रियों की साक्षरता 54.61 प्रतिशत ही है ।

(iv) **धार्मिक अंधविश्वास :-** भारत की अधिकांश जनता अभी भी धार्मिक अंधविश्वासों एवं भाग्य के भरोसे रहती है । लोगों की सोच आर्थिक विकास की ओर नहीं रही है ।

(v) **स्त्रियों को निम्न स्थान :-** भारत में आज भी महिलाओं को उचित स्थान नहीं मिल पाया हैं। महिलाओं के प्रति बढ़ता शोषण, अत्याचार से उनका समुचित विकास नहीं हो पाया हैं

निष्कर्ष :- इस प्रकार इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि भारत के अल्पविकास एवं पिछड़ेपन में आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक कारणों का सम्मिलित प्रभाव पड़ा है । देश के विकास के लिए औधोगिकीकरण, कृषि विकास एवं परिवहन के साधनों को बढ़ाना होगा । प्रभावी व कुशल नियोजन से निर्धनता के कुचक्र को तोड़ना होगा । जनसंख्या पर नियन्त्रण करना_ होगा । दोषपूर्ण आर्थिक एवं सामाजिक संगठन को विकासोन्मुख बनाना होगा, तभी देश अल्प विकास एवं पिछड़ेपन से ऊपर उठ सकेगा ।

12.4 भारत में मानवीय संसाधन

किसी भी देश की वास्तविक सम्पति मानवीय संसाधन ही होते है । मानवीय संसाधन देश की श्रम शक्ति का स्त्रोत है । देश का आर्थिक स्तर प्राकृतिक साधनों पर निर्भर करता है, परन्तु प्राकृतिक साधनों का उचित प्रयोग मानवीय साधनों के द्वारा ही किया जाता है । यदि देश की जनसंख्या गुणात्मक दृष्टि से श्रेष्ठ है तथा उसका कुशल प्रबन्धन किया जाता है तो आर्थिक विकास में उसकी सकारात्मक भूमिका होती है, नहीं तो जनसंख्या में प्रत्येक वृद्धि प्रति व्यक्ति आय को कम करती है । देश के आर्थिक विकास में बाधक बनती है ।

भारत में जनसंख्या वृद्धि

जनसंख्या की दृष्टि से विश्व में भारत का चीन के बाद दूसरा स्थान है । भारत का कुल क्षेत्रफल विश्व के कुल क्षेत्रफल का 2.5 प्रतिशत है । विश्व की कुल आबादी का 16.7 प्रतिशत हिस्सा भारत में निवास करता है । 1911 में भारत की जनसंख्या 25.2 करोड़ थी जो 2001 में बढ़कर 102.87 करोड़ हो गई । भारत सरकार के महापंजीयक कार्यालय के पूर्वानुमान के अनुसार 2021 तक भारत की जनसंख्या 134.7 करोड़ हो जायेगी । देश में प्रतिवर्ष 1.7 करोड़ व्यक्ति जनसंख्या में जुड़ जाते हैं, जो लगभग एक आस्ट्रेलिया हर साल उत्पन्न हो जाता है ।

भारत में जनसंख्या वृद्धि की स्थिति (1951-2001)

वर्ष	कुल जन संख्या (करोड़)	दशक मे परिवर्तन (करोड़)	वार्षिक व्रद्धि दर (प्रतिशत)
1951	36.11	+4.24	1.25
1961	43.92	+7.81	1.96

1971	54.82	+10.90	2.20
1981	68.33	+13.51	2.22
1991	84.64	+16.31	2.14
2001	102.87	+18.24	2.00

भारत में अति जनसंख्या की समस्या

भारत में जनसंख्या की वृद्धि भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए एक गम्भीर समस्या बनी हुई है। कुछ विद्वानों का मत है कि भारत में जनसंख्या की मात्रा कोई समस्या नहीं है, बल्कि वास्तविक समस्या जनसंख्या प्रबन्धन की है, जिसके कारण कम उत्पादन एवं नीची प्रति व्यक्ति आय भारतीय अर्थव्यवस्था की समस्या बनी हुई है । भारत के निवासियों का जीवन स्तर अपेक्षाकृत काफी नीचा है । भारत में जनसंख्या वृद्धि की समस्या आर्थिक एवं सामाजिक दोनों ही आयामों में से एक गम्भीर समस्या होती जा रही है । भारत में जनाधिक्य है इसके लिए निम्नलिखित तर्क दिये जाते हैं -

(i) **नीचा जीवन स्तर -** अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की आय गणना की नई विधि पर्चेजिंग पावर पेरिटि टर्म्स (P.P.P.) के अनुसार 2003-04 में भारत की प्रति व्यक्ति आय मात्र 2537 डीलर थी जबकि जापान की 28,700 डीलर, बैल्लियम की 29127 डीलर तथा दक्षिण कोरिया की 19497 डीलर थी । शिशु मृत्युदर भी भारत में श्रीलंका तथा बांग्लादेश जैसे देशों से भी अधिक थी । यह तथ्य भारत के नीचे जीवन स्तर को बताती

(ii) **बेरोजगारी एवं निर्धनता -** भारत में 2001-02 में बेरोजगारों की संख्या 35 करोड़ अनुमानित की गई थी । सरकारी आकड़ों के अनुसार 1999-2000 में भारत में 26.1 प्रतिशत लोग गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन कर रहे थे ।

(iii) **प्राकृतिक संसाधनों पर बढता दबाव :-** भारत में कुछ वर्षो से प्राकृतिक संसाधनों पर भी जनसंख्या वृद्धि से दबाव बढ़ता जा रहा है । इसका दुष्प्रभाव पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी तंत्र पर भी बढ़ता जा रहा है ।

(iv) **खाद्यान्नों का निरन्तर अभाव :-** जनसंख्या वृद्धि से भारत में खाद्यान्नों का अभाव बढ़ता जा रहा है । पिछले 50 वर्षो से भी भारत में खाद्यान्न उत्पादन सिर्फ 5.5 करोड़ टन से बढ़कर 20.9 करोड़ टन ही हुआ है । पिछले कुछ वर्षो में भारत को 12 हजार करोड़ रू. का खाद्यान्न आयात करना पड़ा है ।

(v) **प्राकृतिक प्रकोप -** माल्थस के जनसंख्या सिद्धान्त के अनुसार प्राकृतिक प्रकोपों को जनसंख्या वृद्धि का सूचक माना जाता है । भारत में कुछ वर्षो में प्राकृतिक प्रकोप जैसे - भूकम्प, बाढ़, अकाल इत्यादि तथा एड्स, पीलिया, क्षयरोग, प्लेग, हैजा आदि का प्रकोप बढ़ता जा रहा है ।

भारत में जनसंख्या वृद्धि के कारण

भारत में पिछले कुछ वर्षो में जनसंख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है । पिछले दो दशकों में जनसंख्या वृद्धि 2.2 प्रतिशत से 2.5 प्रतिशत हो गई है । जनसंख्या वृद्धि के कारणों को तीन श्रेणियों मे वर्गीकृत किया गया है । (1) ऊंची जन्म दर वाले कारण (2) नीची मृत्यु-दर वाले कारण, (3) राजनैतिक कारण ।

1. **ऊंची जन्मदर वाले कारण -** भारत की जलवायु, शिशु मृत्यु दर, संयुक्त परिवार प्रणाली, बाल विवाह, परिवार नियोजन कार्यक्रम के प्रति अज्ञानता, बड़े परिवार की कामना, भाग्यवादिता, मनोरंजन के साधनों का अभाव, धार्मिक रूढ़िवादिता आदि ।
2. **नीची मृत्यु दर वाले कारण :-** चिकित्सा एवं स्वास्थ्य सुविधाओं का विस्तार एवं विकास, महामारियों, अकाल पर रोकथाम, दवाईयों का विकास, प्रत्याशित आयु में वृद्धि, आर्थिक स्तर में वृद्धि आदि।
3. **राजनैतिक कारण :-** शरणार्थियों का आकर बसना, भारतीयों की वापसी आदि ।

जनसंख्या का व्यावसायिक वितरण

जनसंख्या का विभिन्न व्यवसायों के आधार पर वितरण उसका व्यावसायिक वितरण कहलाता है । व्यवसायों को मुख्यत: तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया जाता है ।

(I) **प्राथमिक क्षेत्र :-** इसमें कृषि, पशुपालनवन, मछली पालन तथा बागानों से संबंधित क्रियाऐं शामिल की जाती है ।

(II) **द्वितीयक क्षेत्र :-** इसमें खनन, घरेलू उद्योग, विनिर्माण उद्योग तथा भवन निर्माण के कार्य सम्मिलित किए जाते है ।

(III) **तृतीयक क्षेत्र :-** इस क्षेत्र को सेवा क्षेत्र भी कहा जाता है । इसमें व्यापार, व्यवसाय, परिवहन, संचार, सार्वजनिक प्रशासन, सुरक्षा एवं अन्य प्रकार की सेवाऐं सम्मिलित की जाती है ।

भारत में जनसंख्या का व्यावसायिक वितरण (प्रतिभात)

क्र.स.	क्षेत्र	1951	1971	1981	1999	2001
1.	प्राथमिक क्षेत्र	72.1	72.1	70.0	67.0	65.0
2.	द्वितीयक क्षेत्र	10.7	11.2	12.8	13.0	14.0
3.	तृतीय क्षेत्र	17.3	16.7	17.2	20.0	21.0

12.5 भारत की नई जनसंख्या नीति (फरवरी 2000)

जनसंख्या की वृद्धि पर नियन्त्रण एवं इसके कुशल प्रबन्धन के लिए सभी योजनाओं में अलग-अलग नीतियां बनाई गई थी । जनसंख्या नियन्त्रण हेतु आपातकाल में भारत सरकार ने राष्ट्रीय जनसंख्या नीति, 1976 लाग की, परन्तु इसका क्रियात्मक सही ढंग से नहीं होने के कारण परिणाम सही प्राप्त नहीं हो सके । 15 फरवरी, 2000 को सरकार ने पुन: नई राष्ट्रीय जनसंख्या नीति की घोषणा की थी, जिसमें निम्नलिखित बातें रखी गई :-

(i) **स्वास्थ्य बीमा-योजना :-** निर्धनता रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले तथा परिवार नियोजन को अपनाने वाले परिवारों के लिए पांच हजार रूपये तक की स्वास्थ्य बीमा योजना तथा उन दम्पतियों को इक्का लाभ मिलेगा जो नसबंदी करा चुके हैं तथा जिनके दो से ज्यादा बच्चे नहीं हैं ।

(ii) **राष्ट्रीय आयोग का गठन :-** जनसंख्या नियन्त्रण के लिए प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में एक राष्ट्रीय आयोग का गठन किया गया । यह आयोग राष्ट्रीय जनसंख्या नीति के क्रियान्वयन की समीक्षा करेगा तथा इस संबंध में आवश्यक दिशा-निर्देश भी देगा । जनसंख्या नियंत्रण हेतु केन्द्र व राज्य सरकार के मध्य सामंजस्य बिताना भी आयोग का कार्यक्षेत्र होगा ।

(iii) **स्थिर जनसंख्या का लक्ष्य :-** नीति में 2045 तक जनसंख्या को स्थिर कर देने का लक्ष्य रखा गया है । इसके लिए एक दम्पति के दो बच्चों का लक्ष्य रखा गया है ।

(iv) **कुछ राज्यों के लिए विशेष कार्य योजना -** यू. पी., राजस्थान, बिहार, एमपी सहित 12 राज्यों में देश की 50 प्रतिशत से ज्यादा आबादी निवास करती है । जनसंख्या नियंत्रण हेतु विशेष कार्य योजना की घोषणा की गई है । जिससे की लोगों के जीवन स्तर में सुधार किया जा सकें ।]

(v) **निःशुल्क विद्यालयी शिक्षा** - अनुभवी परिणामों से पता चलता है कि साक्षरता एवं जनसंख्या नियंत्रण में धनात्मक सहसंबंध है । 4 वर्ष तक की आयु वर्ग वाले बच्चों के लिए विद्यालयी शिक्षा निःशुल्क एवं अनिवार्य की गई है ।

(vi) **लोकसभा में सीटों की संख्या :-** लोकसभा में सीटों का निर्धारण 1971 की जनगणना के आधार पर किया हुआ था, जिसे नई जनसंख्या नीति में 2026 तक जारी रखने का निर्णय किया गया है ।

(vii) **पुरस्कार योजना:** - बाल-विवाह को रोकने के लिए तथा गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले दम्पति अगर कानूनन निर्धारित आयु सीमा के बाद विवाह करते हैं तथा वह महिला 21 वर्ष बाद पहली संतान को जन्म देती है तो उस दम्पति को पुरस्कृत किया जाएगा । इसी प्रकार परिवार नियोजन को प्रोत्साहन देने वाली पंचायतों व जिला परिषदों को भी पुरस्कृत किया जाएगा।

इस नीति के प्रमुख तीन उद्देश्य रखे गये थे :-

(अ) तात्कालिक उद्देश्य - गर्भ निरोधकों की जरूरतों को पूरा करना, स्वास्थ्य संबंधी आधारभूत ढांचे की व्यवस्था करना आदि ।

(ब) मध्यकालीन उद्देश्य:- 2010 तक प्रजनन दर को एक पीढ़ी के बराबर की दूसरी पीढ़ी की संख्या रखने तक लाना।

(स) दीर्घकालीन उद्देश्य:- 2045 तक स्थिर जनसंख्या की प्राप्ति करना ।

नीति का मूल्यांकन :- नई राष्ट्रीय जनसंख्या नीति में कई खामियां रही थी । इस नीति में भारत में लिंग अनुपात की समस्या को नजर अंदाज किया गया है । इसी प्रकार जनसंख्या नीति में लड़कियों का विवाह 18 वर्ष से पहले नहीं करने को तो प्रोत्साहित किया गया है, किन्तु इस आयु को बढ़ाने पर जोर नहीं दिया गया है । इस नीति में लक्ष्य व उद्देश्य सही निर्धारित किये गये थे, परन्तु सही ढंग से उन्हें प्राप्त नहीं किया जा सका । जनसंख्या नीति में कहा गया है कि 'यदि राष्ट्रीय जनसंख्या नीति 2000 में दी गई कार्य योजना का अनुसरण एक राष्ट्रीय आन्दोलन के रूप में किया गया तो ही सफलता प्राप्त होगी ।"

12.6 आधाभूत आथिक संरचना

किसी देश की अर्थव्यवस्था के विकास के लिए आधारभूत आर्थिक संरचना का विकसित होना आवश्यक है । देश के आर्थिक आधारभूत ढांचे में सिंचाई, परिवहन, ऊर्जा, संचार सुविधाऐं, बैंकिंग, विज्ञान एवं तकनीकी ज्ञान आदि को सम्मिलित किया जाता है ।

1. **सिंचाई :-** भारत में कृषि उतादकता को प्रभावित करने वाले घटकों में सिंचाई सुविधा महत्वपूर्ण है परन्तु भारत में केवल 38 प्रतिशत कृषि क्षेत्र पर ही सिंचाई की सुविधा प्राप्त है, शेष 62 प्रतिशत क्षेत्र वर्षा पर निर्भर है । वर्षा ऋतु में वर्षा का वितरण अनियमित रहता है ।

सिंचाई के साधन :-

(i) **नहरें :-** भारत में शुद्ध सिंचित क्षेत्र के 31.3 प्रतिशत भाग पर नहरों द्वारा सिंचाई की जाती है । भारतीय नहरों की कुल लम्बाई लगभग 1.20 लाख किलोमीटर है जो विश्व में सर्वाधिक है । देश में बाढ़ वाली नहरें, बांध वाली नहरें तथा जलाशयों वाली नहरों से सिंचाई की जाती है ।

(ii) **तालाब -** देश के कुल सिंचित क्षेत्र के लगभग 57 प्रतिशत भाग पर तालाबों से सिंचाई की जाती है । दक्षिण भारत में तालाब सिंचाई के प्रमुख साधन है । तालाबों से सिंचाई में सबसे बड़ी कठिनाई यह आती है कि जिस वर्ष वर्षा कम होती है तो इनमें पानी एकत्रित नहीं हो पाता और सिंचाई नहीं हो पाती है ।

(iii) **कुएं :-** कुएं सिंचाई के सबसे महत्वपूर्ण साधन है । कुल सिंचित क्षेत्र का लगभग 58.1 प्रतिशत हिस्सा कुओं से सिंचित किया जाता है । कुएं दो प्रकार के होते है - सतही कुएं और नलकूप । देश में कुओं की अपेक्षा नलकूपों से अधिक सिंचाई की जाती है । भू-जल के गिरते स्तर के कारण नलकूपों की संख्या में वृद्धि हुई है ।

पंचवर्षीय योजनाओं में सिंचाई के साधनों पर व्यय:

प्रथम सात योजनाओं (1951-52 से 1989-90) के दोरान जल नियंत्रण कार्यक्रमों पर लगभग 45000 करोड़ रू. व्यय किए गए । जिनमें सिंचाई परियोजनाओं पर व्यय के अलावा कमाण्ड क्षेत्र विकास पर 2000 करोड़ रूपये तथा बाढ़ नियंत्रण पर 2500 करोड़ रूपये का व्यय किया गया है । आठवीं योजना (1992- 1997) में सिंचाई व बाढ़ नियंत्रण कार्यक्रमों पर 36649 करोड़ रूपये व्यय किये गये । नौवीं योजना (1997-2002) में 55420 करोड़ रूपये तथा दसवीं योजना (2002-2007) में 103315 करोड़ रूपये व्यय किये गये थे ।

भारत की प्रमुख सिंचाई परियोजनाएं :- देश में सिंचाई की बहुउद्देशीय परियोजनाओं को प्राथमिकता दी गई है । इनके उद्देश्य सिंचाई, विद्युत उत्पादन, नौकायन, भू-संरक्षण, वन विकास आदि है ।

(i) **भाखडा-नांगल परियोजना :-** यह भारत की सबसे बड़ी बहुउद्देशीय नदी घाटी परियोजना हैं । इसमें भाखड़ा के पास सतलज नदी पर 518 मी. लम्बा एवं 226 मी. चौड़ा तथा 29 मी. ऊंचा नागल बांध बनाया गया है । 64 किलोमीटर नांगल हाइडल चैनल पर दो बिजली घर, मुख्य नहरें व वितरिकाऐ शामिल है । इस परियोजना से पंजाब, हरियाणा एवं राजस्थान को सिंचाई की सुविधाएं प्राप्त होगी।

(ii) **दामोदर घाटी परियोजना :-** यह पश्चिम बंगाल तथा बिहार की संयुक्त योजना है । इस योजना में चार बांध बनाए गए है । इन चारों बाधों पर एक-एक बिजली घर भी बनाया गया है ।

(iii) **हीराकुण्ड परियोजना :-** उड़ीसा स्थ्य्रेंनद्री पर यह बांध बनाया गया है । यह विश्व का सबसे लम्बा बांध है । इस पर दो बिजलीघर चिपलिमा तथा हीराकुण्ड बनाए गए है ।

(iv) **कौसी परियोजना -** बिहार का शौक कही जाने वाली नदी पर इस योजना का निर्माण किया गया है । बिहार में बाढ़ को रोकने में महत्वपूर्ण भूमिका रही है ।

(v) **चम्बल परियोजना :-** इस योजना के प्रथम चरण में गांधी सागर बांध एवं बिजली घर कोटा, दूसरे चरण में राणा प्रताप सागर बांध एवं बिजली घर तथा तीसरे चरण में जवाहर सागर बांध एवं बिजलीघर का निर्माण कार्य पूरा हो चुका है । इस योजना का लाभ मध्यप्रदेश व राजस्थान को मिल रहा है।

(vi) **व्यास परियोजना :-** इस योजना में व्यास सतलज कड़ी पोंग स्थान पर व्यास नदी पर बांध एवं व्यास ट्रांसमिशन सीस्टम सम्मिलित है । यह योजना मुख्य रूप से सिंचाई परियोजना है । इसमें पंजाब, हरियाणा व राजस्थान राज्य लाभान्वित होते हैं ।

(vii) **इन्दिरा गांधी नहर परियोजना :-** यह सतलज एवं व्यास नदियों के संगम पर बने हरी के जलाशय से निकाली गयी है । इस योजना के दो भाग हैं राजस्थान फीडर तथा राजस्थान मुख्य नहर। इस परियोजना से पश्चिमी राजस्थान में सिंचाई होती है ।

2. **ऊर्जा :-** एक अर्थव्यवस्था का विकास वहां के ऊर्जा संसाधनों पर निर्भर करता है । कृषि क्षेत्र, औद्योगिकीकरण, परिवहन विकास, संचार सुविधाऐं आदि ऊर्जा विकास पर आधारित होते हैं । ऊर्जा के स्त्रोतों को उपयोग के आधार पर दो भागों में बांटा जाता है :- **(1) व्यावसायिक ऊर्जा** - जिसमें कोयला, विद्युत, गैस एवं पैट्रोलियम आदि **। (2) गैर व्यवसायिक ऊर्जा** - जिसमें गोबर, लकड़ी, कृषिगत व्यर्थ पदार्थ, सूर्य की रोशनी आदि । समय के साथ आजकल गोबर गैस व सौर ऊर्जा का व्यावसायिक प्रयोग भी होने लगा है ।

भारत में विद्युत उत्पादन में योजनाकाल में काफी वृद्धि हुई है । परन्तु आज भी विद्युत की पूर्ति उसकी मांग की तुलना में कम है । भारत में विद्युत का उत्पादन तीन प्रकार से किया जाता है - **(1) ताप विद्युत** - जो कोयला, पेट्रोलियम व गैस से उत्पन्न की जाती है । **(2) जलीय विद्युत** - जल के द्वारा उत्पन्न की जाती है । **(3) आणविक विद्युत** - जो आणविक शक्ति के द्वारा उत्पन्न की जाती है । इसके अलावा पवन ऊर्जा भी विद्युत उत्पादन में सहायक हैं

विद्युत उत्पादन में विभिन्न स्ट्रोतों का अंश **(प्रतिशत में)**

क्र.स.	**स्त्रोत**	**2002-03**	**2004-05**
1.	ताप(थर्मल)	84.38	81.73
2.	जल विद्धुत	12.00	15.47
3.	परमाणु	3.62	2.80

भारत में विद्युत उत्पादन (सकल)

(बिलियन किलोवाट में)

वर्ष	**विद्युत उत्पादन**
1950-51	6.6
1990-91	289.4
2003-04	633.3

विद्युत उत्पादन में 1950 से लेकर 2004 तक में 96 गुना वृद्धि प्राप्त हुई है ।

देश में विद्युत के उपयोग में भी बदलाव आया है । 1950-51 मे कृषि क्षेत्र में विद्युत की खपत 3.9 प्रतिशत से बढ़कर 2003-04 में 24.1 प्रतिशत हो गई । उद्योग एवं वाणिज्यिक क्षेत्र में विद्युत का उपभोग का अनुपात कम हुआ है । घरेलू उपभोग का अनुपात 12.6 से बढ़कर 24.9 प्रतिशत हो गया है ।

भारत में विद्युत विकास के लिए काफी प्रयास किये गये है । 1975 में नेशनल थर्मल पावर कॉरपोरेशन तथा नेशनल हाइड्रोइलेक्ट्रिक पावर कॉरपोरेशन (N.H.P.C.) की स्थापना की गई । वर्तमान

में N.T.P.C. के अधीन देश में सिंगरोली (यूपी.), कोरबा (मप्र.) आदि विद्युत की बड़ी परियोजनायें संचालित है । इसके अतिरिक्त गैस आधारित 5 बड़ी परियोजनाओं का संचालन किया जा रहा है । इसी प्रकार N.H.P.C. के अधीन दूलहस्ती (J & K)] उड़ी तथा सलाल (J & K)] चमेरा (H.P.) टनकपुर (यूपी.) आदि विद्युत परियोजनायें संचालित हैं । 1988 में स्थापित नाथपा-झाकड़ी विद्युत निगम तथा टिहरी जल विकास निगम भी विद्युत उत्पादन में महत्वपूर्ण है ।

12.8 परिवहन विकास

(A) **रेल परिवहन :-** भारत मे रेल का इतिहास काफी पुराना है । देश में पहली रेलवे लाईन 1853 में बोम्बे से थाणे तक प्रारम्भ की गई थी । वर्ष 1950-51 में रेल मार्ग की कुल लम्बाई 53600 किमी. थी, जो 2004 में 63221 किमी. हो गई थी । जिसमें से 46.807 किमी. ब्रॉडगेज 13290 किमी. मीटर गेज तथा 3124 किमी. नैरो गेज मार्ग था । इस नेटवर्क का लगभग 28 प्रतिशत भाग विद्युतीकृत है । भारतीय रेल के विकास के लिए इंजन व डिब्बे बनाने के लिए चितरंजन लोकोमोटिव वर्क्स, डीजल लोकोमोटिव वर्क्स, वाराणसी तथा इष्ट्रीग्रल कोच फैक्ट्री पेराम्बूर तथा मद्रास में तीन कारखाने स्थापित किये गये है । 1984-85 में मेट्रो रेल की शुरूआत कलकत्ता शहर से हुई थी ।

1950-51 में रेलवे को माल ढुलाई से 139.3 करोड़ रू. का राजस्व प्राप्त हुआ जो बढ़कर 2003-04 में 27646.2 करोड़ रू. हो गया । यात्री किराये से 1950-51 में 982 करोड़ रू. राजस्व प्राप्त हुआ जो बढ़कर 2002-03 में 1275.4 करोड़ रू. हो गया था ।

(B) **सड़क परिवहन :-** भारत मे सड़क परिवहन का महत्वपूर्ण योगदान है । भारतीय सड़कें यात्रियों का 85 प्रतिशत तथा माल ढुलाई का 70 प्रतिशत अंश ढोती है ।

भारतीय राष्ट्रीय मार्ग प्राधिकरण ने राष्ट्रीय राजमार्ग विकास परियोजना प्रारम्भ की है । इस योजना में 142.79 किमी. राष्ट्रीय राजमार्ग को 4 या 6 लेनों मे परिवर्तन किया जाना है । इसकी अनुमानित लागत 65000 करोड़ रूपये होगी । इस परियोजना के निम्न घटक है :-

(i) दिल्ली, मुम्बई, चेन्नई और कोलकाता को जोड़ने वाली 5646 किमी. लम्बी स्वर्णिम चतुर्भुज योजना ।

(ii) श्रीनगर से कन्याकुमारी तक और पूर्व में सिल्वर से पश्चिम में पोरबन्दर तक जोड़ने वाले मार्ग (7300 किमी.) को पूरा करना ।

(iii) बंदरगाह तथा अन्य परियोजनाओं की संयोजकता लगभग 1133 किमी. को जोड़ना ।

ग्रामीण सडकें :- ग्रामीण क्षेत्रों में सड़क परिवहन के विकास के लिए दिसम्बर 2000 में केन्द्र द्वारा 'प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना' प्रारम्भ की गई है । इस योजना में 14789 करोड़ रू. की राशि तक के परियोजना प्रस्तावों का अनुमोदन किया गया है ।

योजना काल में देश मे सडकों का तेजी से विकास हुआ है । 1950-51 में सडकों की कुल लम्बाई 4 लाख किलोमीटर थी, जो बढ़कर 2001 -02 तक 24.83 लाख किमी. हो गई । जिसमें राष्ट्रीय राजमार्ग एवं राज्य राजमार्गो की लम्बाई 1.22 लाख किमी थी ।

(C) **जल-परिवहन :-** जल परिवहन अधिक दूरी तक भारी माल ढोने का सस्ता साधन है । भारत में व 2 प्रमुख बड़े बंदरगाह है । जो लगभग 75 प्रतिशत यातायात की व्यवस्था करते हैं । साथ ही 185 छोटे बंदरगाह है ।

भारत में बड़े बंदरगाह पर 1950-51 में 1.9 करोड़ टन माल ढोया गया था जो 2003-04 में बढ़कर 34.5 करोड़ टन हो गया है । 10 वीं पंचवर्षीय योजना के अंतिम वर्ष में बड़े बंदरगाहों पर 41.5 करोड़ टन माल ढोने का अनुमान है ।

(D) **वायु-परिवहन :-** 1948 में सरकार एवं निजी क्षेत्र की साझेदारी में एयर इण्डिया इन्टरनेशनल उपक्रम की स्थापना की गई थी, जिसमें सरकार का हिस्सा 49 प्रतिशत था । भारत सरकार ने 1953 में एयर कॉरपोरेशन अधिनियम के साथ हवाई यातायात का राष्ट्रीकरण किया था । केन्द्र सरकार ने वायु परिवहन के विकास के लिए 1 अगस्त, 1953 को दो निगमों की स्थापना की ।

(i) **एयर इण्डिया :-** जो अन्तर्राष्ट्रीय सेवाऐं संचालित करता है ।

(ii) **इण्डियन एयरलाइंस** :- अन्तर्राज्यीय एवं पडौसी देशों के लिए हवाई सेवाऐं संचालित करता है ।

1960-61 में एयर इण्डिया व इण्डियन एयरलाईन्स के बेड़े में क्रमश: व 3 एवं 88 विमान थे, जो 2003-04 में क्रमश: 35 एवं 56 थे । नीजिकरण को बढ़ावा देने के कारण निजी एयर लाइनों का घरेलू हवाई यातायात में हिस्सा 61.1 प्रतिशत हो गया है ।

मुम्बई एवं दिल्ली हवाई अड्डों का पुनर्गठन करने एवं आधुनिक बनाने के प्रयास जारी है । इसके लिए ए. बी. एन. एमरो, एशिया कॉरपोरेट फाइनेंस (ई) प्रा. लि. और एयर प्लान आस्ट्रेलिया को क्रमश: वित्तीय सलाहकार और वैश्विक तकनीकी सलाहकार के रूप में नियुक्त किया गया है ।

12.7 बोध प्रश्न

1. भारतीय अर्थव्यवस्था पर टिप्पणी कीजिए ।
2. भारतीय अर्थव्यवस्था की विशेषताओं को समझाइए ।
3. भारतीय अर्थव्यवस्था में उत्पन्न होने वाली प्रमुख बाधाओं का वर्णन कीजिए ।
4. मानवीय संसाधन से आप क्या समझते है? समझाइए ।
5. अति जनसंख्या की समस्या का संक्षिप्त वर्णन कीजिए ।
6. सामाजिक संरचना के अन्तर्गत शिक्षा का मानव जीवन पर प्रभाव बताइए ।
7. आधारभूत आर्थिक संरचना से आप क्या समझते हैं? समझाइए ।
8. भारत की प्रमुख सिंचाई संसाधन का अर्थव्यवस्था पर प्रभाव समझाइये ।

12.8 संदर्भ ग्रंथ

1. भारतीय अर्थव्यवस्था - दत्त,सुंदरम
2. भारतीय अर्थव्यवस्था - बी.एल.ओझा
3. भारतीय अर्थव्यवस्था - एम. राणा व मोनिका दवे
4. भारतीय अर्थव्यवस्था - मिश्रा, पूरी
5. पर्यावरण एवं भारतीय अर्थव्यवस्था - ओ.पी. शर्मा

6. भारत का आर्थिक पर्यावरण - त्रिवेदी, शर्मा

इकाई-13: आर्थिक नियोजन एवं ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना

इकाई की रूपरेखा :

13.1 प्रस्तावना

13.2 आर्थिक नियोजन की परिभाषा

13.3 आर्थिक नियोजन की विशेषताएँ

13.4 आर्थिक नियोजन के लाभ

13.5 नियोजन की सफलता के लिए आवश्यक शर्त

13.6 विकासशील राष्ट्रों में आर्थिक नियोजन में कठिनाइयाँ

13.7 आर्थिक नियोजन के उद्देश्य

13.8 ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना

13.9 बोध प्रश्न

13.10 संदर्भ ग्रंथ

13.1 प्रस्तावना

आर्थिक नियोजन वर्तमान परिप्रेक्ष्य में सर्वाधिक लोकप्रिय विषय है । सामान्य अर्थ में पूर्व निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार विवेकपूर्ण नीति से कार्य करने को नियोजन कहा जाता है और इस अर्थ में नियोजन मानव जीवन की एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है । प्रत्येक व्यक्ति के साधन सीमित होते हैं जबकि उसकी आवश्यकताएँ असीमित होती हैं । नियोजन ही उसकी इस समस्या का हल प्रस्तुत कर सकता है । किसी संकल्प प्रयोजन अथवा विकल्प को लेकर कार्य करना ही नियोजन है । आर्थिक नियोजन वस्तुत: आधुनिक युग की आर्थिक एवं सामाजिक व्याधियों की एक अचूक एवं रामबाण औषधि है । व्यक्तिगत जीवन में ही नहीं, सामाजिक एवं राष्ट्रीय जीवन में भी ठीक उपयुक्त वर्णित सिद्धान्त कार्यशील होते हैं । विश्व का प्रत्येक देश चाहे वो विकसित हो एवं अर्द्ध-विकसित, पूँजीवादी देश हो या समाजवादी अथवा साम्यवादी देश व किसी न किसी रुप में आर्थिक नियोजन को अवश्य अपनाता है।

आर्थिक नियोजन की लोकप्रियता अनियोजित एवं स्वतंत्र अर्थव्यवस्था की त्रुटियाँ जैसे उत्पादन अनियमितता, गरीबी, बेरोजगारी आदि एवं नियोजित अर्थव्यवस्था की सफलताओं जैसे देश के साधनों का सर्वोत्तम उपयोग, प्रत्येक नागरिक के लिए रोजगार, भौतिक सुख-सुविधाएँ, उन्नत जीवन स्तर, अत्यधिक सामाजिक विकास आदि में निहित है । अर्द्ध-विकसित राष्ट्र अपने सीमित साधनों का सर्वोत्तम प्रयोग कर विकास की गति बढ़ाने, देश में बेकारी, निर्धनता को समाप्त करने व विकसित राष्ट्र और अधिक सुदृढ़, आर्थिक विकास एवं स्थायित्व के लिए नियोजन का सहारा लेते हैं ।

अत: नियोजन अपने महत्व के कारण सैद्धान्तिक व व्यवहारिक दोनों ही रुपों में लोकप्रिय है। आर्थिक नियोजन को विभिन्न व्यक्तियों ने विभिन्न प्रकार से परिभाषित किया है ।

13.2 आर्थिक नियोजन की परिभाषाएँ

प्रो एच. डी. डिकिन्सन (Prof.H.D.Dickison) के अनुसार, "आर्थिक नियोजन प्रमुख आर्थिक निर्णयों का करना है, जिसमें सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में व्यापक सर्वेक्षण के आधार पर एक निर्धारक सत्ता

द्वारा सोच-विचार कर निर्णय लिये जाते हैं कि क्या और कितना उत्पादन किया जाये और उसका वितरण किसको किया जाये ।"

इस प्रकार डिकिन्सन के अनुसार आर्थिक नियोजन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा देश की कोई सत्ता उत्पादन तथा वितरण के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण निर्णय विस्तृत आर्थिक सर्वेक्षणों के आधार पर करती है ।

लेविस लॉर्विन (Lewis Lorwin) के शब्दों में, "नियोजित अर्थव्यवस्था आर्थिक संगठन की एक ऐसी प्रणाली है, जिसमें वैयक्तिक और पृथक संयंत्रों, उपक्रमों एवं उद्योगों को एक व्यवस्था की समन्वित इकाइयाँ मानते हैं, जिसका उद्देश्य एक निश्चित अवधि में समस्त उपलव्य साधनों का किसी जन-समुदाय की आवश्यकताओं की अधिकतम सन्तुष्टि के लिए उपयोग करना है ।

लॉर्विन के अनुसार आर्थिक नियोजन एक प्रणाली या व्यवस्था है । नियोजित अर्थव्यवस्था में व्यक्ति, संयंत्र, उद्योग, आदि सभी को एक ही व्यवस्था की समन्वित इकाइयाँ माना जाता है ।

श्रीमती बी बूटन (Mrs.B.Wooton) के अनुसार, "आर्थिक नियोजन एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें बाजार प्रक्रिया (Market Mechanism) को जानबूझ कर इस प्रकार परिचालित किया जाता है जिससे ऐसी व्यवस्था उत्पन्न हो जो बाजार प्रक्रिया को स्वतंत्र रखने पर उत्पन्न हुई व्यवस्था से भिन्न हो ।

डाल्टन (Dalton) के अनुसार, "व्यापक अर्थ में आर्थिक नियोजन विशाल साधनों के प्रभारी द्वारा निश्चित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए आर्थिक क्रियाओं का इच्छित संचालन करना है ।"

इस प्रकार डाल्टन के अनुसार आर्थिक नियोजन के अन्तर्गत आर्थिक क्रियाओं का संचालन नियोजन अधिकारी के आदेशों के अनुसार होता है ।

भारत के योजना आयोग (Planning Commission of India) के अनुसार "नियोजन निर्धारित सामाजिक लक्ष्यों के रुप में अधिकाधिक लाभ के उद्देश्य से साधनों को संगठित करने और उपयोग करने की विधि है । नियोजन के विचार के दो प्रमुख अंग हैं - (i) उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए अपनाई गई प्रणाली, एवं (ii) उपलव्य साधनों एवं उनके अधिकतम आवंटन के सम्बन्ध में ज्ञान ।'

उपर्युक्त परिभाषाओं के अध्ययन के बाद यह कहा जा सकता है कि आर्थिक नियोजन का तात्पर्य एक ऐसी व्यवस्था से होता है जिसमें निश्चित अवधि में किसी केन्द्रीय नियोजन सत्ता द्वारा देश के उपलव्य साधनों का विवेकपूर्ण उपयोग अधिकतम सामाजिक कल्याण प्राप्त करने के लिए किया जाता है तथा साधनों के अविवेकपूर्ण उपयोग को रोका जाता है । संक्षेप में, आर्थिक नियोजन किसी भी देश के सीमित साधनों से एक निश्चित अवधि में उपयोगिता प्राप्त करने की विधि है ।

13.3 आर्थिक नियोजन की विशेषताएँ (Characteristics of Economic Planning)

आर्थिक नियोजन की विभिन्न विद्वानों की परिभाषाओं के अध्ययन से इसकी निम्न विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं -

1. **आर्थिक संगठन की विधि (A way of Economic Organisation) -** आर्थिक नियोजन आर्थिक संगठन की एक विधि है, जिसमें अर्थव्यवस्था को विशेष प्रकार से व्यवस्थित किया जाता है।

2. **निरंतर प्रक्रिया (Continuous Process) -** नियोजन अल्पकालीन न होकर निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है ।
3. **पूर्व निर्धारित उद्देश्य (Pre-determind Object)** - आर्थिक नियोजन का निर्माण पूर्व निर्धारित तथा सुविचारित उद्देश्यों को प्राप्त करना होता है ।
4. **प्राथमिकताओं का निर्धारण (Determination of Priorities) -** आर्थिक साधन सदैव सीमित होते हैं । विकास के लिए सम्मावनाएँ अधिक होती हैं, किन्तु सभी कार्य एक समय में नहीं हो पाते हैं । अत: उद्देश्यों में प्राथमिकता का निर्धारण करना होता है ।
5. **साधनों का आवंटन एवं उपयोग (Allocation and use of resources)** - आर्थिक नियोजन में देश में उपलब्ध सभी साधनों पर सामान्यतया सरकार या नियोजन अधिकारी का नियंत्रण होता है।
6. **केन्द्रीय नियोजन संस्था (Central Planning organisation)** - आर्थिक नियोजन का निर्माण करने के लिए देश में केन्द्रीय नियोजन संस्था संगठित की जाती है । यह नियोजन संस्था देश के साधनों के अनुसार विकास कार्यक्रम बनाती है ।
7. **सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था पर नियोजन का लागू होना (Plan for the Whole Economy)**- आर्थिक नियोजन सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के लिए होता है जिसे कार्यान्दयन की सुविधा के लिए विभिन्न उप-विभागों एवं स्तरों में विभाजित किया जाता है ।
8. **निश्चित अवधि (Definite Period)** - प्रत्येक देश में आर्थिक नियोजन की एक निश्चित अवधि होती है । भारत में नियोजन की अवधि सामान्यत: 5 वर्षो की होती हैं
9. **मूल्यांकन (Appraisal) -** नियोजित अर्थव्यवस्था में केवल विकास कार्यो का निर्धारण कार्य ही नहीं होता है, बल्कि उन कार्यक्रमों को लागू कर देने के बाद उन कार्यक्रमों का मूल्यांकन भी किया जाता है ।
10. **जनसहयोग (pubilc Co-operation) -** आर्थिक नियोजन जन-सहयोग पर आधारित होता है।
11. **राजकीय हस्तक्षेप (State Intervention) -** राजकीय हस्तक्षेप के बिना नियोजन की सफलता संदिग्ध होती है ।
12. **सामाजिक एवं आर्थिक ढाँचे में परिवर्तन (changes In Social and Economic) -** आर्थिक नियोजन के फलस्वरुप देश में रुढ़िवादी, सामाजिक एवं आर्थिक ढाँचे को आधुनिक परिस्थितियों के अनुकूल ढाँचे में बदला जाता है।
13. **अन्तिम उद्देश्य (Ultimate Objectvies) -** आर्थिक नियोजन के अनेक उद्देश्य होते हैं परन्तु इसका अन्तिम उद्देश्य विद्यमान एवं सम्भावित संसाधनों से अधिकतम उत्पादन प्राप्त करना तथा सामाजिक कल्याण को बढ़ाना होता है ।

13.4 आर्थिक नियोजन के लाभ

राष्ट्र के निरन्तर एवं स्थायी विकास के लिए आर्थिक नियोजन की उपयोगिता अब सिद्ध हो चुकी है । अत: नियोजित अर्थव्यवस्था के लाभों का विश्लेषण करना अत्यन्त आवश्यक हो जाता है। इससे निम्न लाभ प्राय: प्राप्त होते है.

1. **आर्थिक असमानताओं में कमी :** सम्पूर्ण आर्थिक समानता का अस्तित्व केवल काल्पनिक हो सकता है, किन्तु सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक दृष्टि से यह असम्भव है । मूल प्रश्न अब यही नहीं है कि समाज में पूर्ण आर्थिक समानता स्थापित की जाय अथवा न की जाय, बल्कि यह है कि विद्‌यमान आर्थिक असमानताओं को आर्थिक नियोजन के द्‌वारा कितना और कैसे कम किया जाय ।
2. **जीवन-स्तर में सुधार :** आर्थिक नियोजन का एक प्रमुख उद्देश्य वास्तविक आय में वृद्धि करना होता है, जिससे आर्थिक स्तर में स्वत: ही सुधार होता जाता है । राजकीय प्रयत्नों के द्‌वारा अधिकाधिक व्यक्तियों के लिए जीवन एवं आरामप्रद निवास, पर्याप्त वस्त्र, शिक्षा, चिकित्सा एवं मनोरंजन की पर्याप्त सुविधाएँ जनसाधारण को प्रदान की जा सकती है ।
3. **पूर्ण रोजगार :** भौतिक एवं वित्तीय नियोजन के साथ-साथ नियोजित अर्थ व्यवस्था में मानव शक्ति का उचित नियोजन इस प्रकार किया जाता है कि जिससे मानव शक्ति के अपव्यय को रोका जा सके तथा उपलव्य मानव शक्ति का अधिकतम उत्पादन के लिए उपयोग किया जा सके ।
4. **साधनों का सर्वोत्तम उपयोग :** नियोजित अर्थ-व्यवस्था में केन्द्रीय निर्देशन तथा समन्वय के कारण उपलव्य साधनों का सर्वोत्तम उपयोग किया जा सकता है और इस प्रकार अपव्यय को बचाकर उत्पादन की मात्रा में वृद्धि की जा सकती है । विभिन्न प्रकार के भौतिक एवं वित्तीय नियन्त्रणों के द्‌वारा अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में पूँजी का सन्तुलित विनियोग सम्भव हो जाता है ।
5. **निरर्थक प्रतियोगिता में कमी :** प्रतियोगिता को स्वतन्त्र अर्थ-व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण गुण माना गया है क्योंकि इसके द्‌वारा प्रत्येक व्यवसायी अपने उत्पादनों में अन्यों से अधिक उत्कृष्टता लाने का प्रयत्न करता है । इस प्रकार खुली प्रतियोगिता से कुछ उद्‌योगपतियों को लाभ होता है जो इसके द्‌वारा समस्त समाज को होने वाली हानि की तुलना में बहु त कम होता है । नियोजित अर्थ व्यवस्थाओं में खुली प्रतियोगिता या तो होती ही नहीं है और यदि कुछ सीमा तक होती भी है तो उसे सरलता से समाप्त किया जा सकता है ।
6. **एकाधिकारी प्रवृत्तियाँ :** अनियोजित अर्थ-व्यवस्था में खुली प्रतियोगिता से एकाधिकारी प्रवृतियाँ उत्पन्न हो जाती है जिन्हें राज्य के हस्तक्षेप से नियन्त्रित करना आवश्यक हो जाता है ।
7. **उचित प्राथमिकता का निर्धारण :** नियोजित अर्थ व्यवस्था में राज्य योजना तन्त्र के द्‌वारा विभिन्न क्षेत्रों एवं विभिन्न उद्‌योगों के लिए उचित प्राथमिकताओं को निर्धारण करता है । केन्द्रीय नियोजन के अधीन उपलव्य साधनों को दृष्टिगत रखकर एवं समाज की तात्कालिक और भावी आवश्यकताओं के सन्दर्भ में प्राथमिकताओं का क्रम निर्धारित कर किन वस्तुओं का कितना और कैसे उत्पादन किया जाय, का निर्णय आर्थिक नियोजन के अन्तर्गत किया जाता है ।
8. **आर्थिक स्थायित्व :** नियोजित अर्थव्यवस्था तात्कालिक आर्थिक वृद्धि के बजाय दीर्घकालीन आर्थिक प्रगति को अधिक महत्व प्रदान करती है । पूँजी के अधिक अथवा कम विनियोग के कारण तथा माँग, पूर्तिा एवं मूल्यों में निरन्तर होने वाले हेरफेर के कारण उत्पन्न आर्थिक उतार चढ़ाव नियोजित अर्थ व्यवस्था में नहीं दिखायी देते और इसलिए यह अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक तनावों एवं झटकों का अधिक प्रभावपूर्ण तरीके से सामना कर सकती है ।
9. **असामाजिक गतिविधियाँ :** अनियोजित अर्थ व्यवस्था में अनेक प्रकार की ऐसी आर्थिक, वित्तीय एवं व्यापारिक गतिविधियाँ उत्पन्न हो जाती है जिन्हें समाज विरोधी कहा जा सकता है जैसे अनुचित संग्रह, अत्यधिक मूल्य वृद्धि मुद्रा की चोरी, करों की चोरी आदि । पूर्ण नियोजन की दशा में इस

प्रकार की गतिविधियों में बहुत अधिक कमी की जा सकती है एवं कठोर अनुशासन व राजकीय नियमन की सहायता से इन्हें प्रतिबन्धित किया जा सकता हैं ।

13.5 नियोजन की सफलता के लिए आवश्यक शर्तें (Essentials Conditions for the Success of Planning)

नियोजन एक स्वचालित व्यवस्था नहीं है । नियोजन की सफलता हेतु कुछ आवश्यक शर्तों को पूरा करना होता है । इन शर्तों के पूरा करने पर ही आर्थिक नियोजन सफलतापूर्वक चल सकता है अन्यथा नहीं । नियोजन की सफलता हेतु निम्न शर्तें पूरी होना आवश्यक है -

1. **यथार्थवादी उद्देश्य एवं योजनाएँ (Essentials conditions for the Success of planning)-** नियोजन की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि योजना जिन उद्देश्यों हेतु बनाई गई हो वे वास्तविक हों तथा योजना अपने उद्देश्यों को प्राप्त कर सकने योग्य होनी चाहिए ।
2. **सुनिश्चित एवं स्पष्ट उद्देश्य (Well Defined Objectvies) -** योजना के उद्देश्य न केवल यथार्थवादी होने चाहिए वरन् सुनिश्चित एवं स्पष्ट भी होने चाहिए ।
3. **प्राथमिकताओं का विवेकपूर्ण निर्धारण (Rational Determination of Priorities)-** साधनों की सीमितता एवं विकास के लिए अधिक क्षैत्र होने के कारण यह निश्चित करना आवश्यक है कि किस कार्य को प्राथमिकता दी जाये ।
4. **राजनीतिक स्थायित्व (Political Stability) -** सफल नियोजन के लिए राजनीतिक स्थायित्व आवश्यक है ।
5. **उपयुक्त नियोजन संगठन (Suitable Planning Organisation) -** सब कार्यों के लिए पृथक नियोजन संगठन की आवश्यकता होती है, जिसमें इसके विशेषज्ञ ही रखे जायें । उपयुक्त नियोजन संगठन होने पर नियोजन सफल हो सकता है ।
6. **उत्तम सरकार (Good Government) -** नियोजन की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि देश में एक स्वस्थ एवं सुदृढ़ सरकार हो ।
7. **पर्याप्त एवं सही सांख्यिकीय आंकने एवं सूचनाएँ (Adequate and Correct Statistical Data Information)-**नियोजन का निर्माण करने के लिए देश के वर्तमान तथा सम्भावित साधनों के बारे में पर्याप्त एवं सही सांख्यिकीय आक्रणए एवं सूचनाएँ उपलब्ध होनी चाहिए ।
8. **जन-सहयोग (Public Co-operation) -** जन-सहयोग के अभाव में किसी भी देश की आर्थिक योजना की सफलता की आशा करना व्यर्थ होता है ।
9. **कुशल एवं ईमानदार प्रशासन (Efficient and Honest Administration) -** नियोजन की सफलता के लिए देश का प्रशासन कुशल एवं ईमानदार होना चाहिए । प्रशासन शीघ्र, पक्षपात-रहित, विवेकपूर्ण निर्णय लेनेवाला होना चाहिए ।
10. **पर्याप्त वित्तीय एवं भौतिक साधन (Adequte Financial and Physical Resources)-** नियोजन की सफलता हेतु पर्याप्त वित्तीय साधन आवश्यक होते है ।
11. **उच्च राष्ट्रीय चरित्र (High National Character)-** नियोजन की सफलता राष्ट्र के लोगों के स्वच्छ चरित्र पर भी निर्भर करती है । यदि देशवासियों में राष्ट्र के लिए मर-मिटने की भावना होती है

तथा वे अपने कर्त्तव्यों एवं दायित्वों के प्रति ईमानदार होते हैं तो वे हर मुसीबत एवं कठिनाई में भी हिम्मत नहीं हारते तथा विकास के कठिन मार्ग पर आगे ही बढ़ते जाते हैं ।

12. **विभिन्न प्रकार के सन्तुलन (Different Balances) -** नियोजन की सफलता के लिए विकास कार्यक्रमों के विभिन्न पहलुओं में संतुलन बनाये रखना आवश्यक है ।
13. **उत्तरदायी राजनीतिक विपक्ष (Responsible Political Opposition) -** प्रजातान्त्रिक देशों में नियोजन की सफलता के लिए उत्तरदायी राजनीतिक विपक्ष का होना भी आवश्यक है । विरोधी राजनीतिक दल ऐसे हों जो सरकार तथा नियोजन की कमियों को समय पर बतावें तथा साथ ही नियोजन की अच्छाइयों को स्वीकार कर उसे सफल बनाने में अपना पूर्ण सहयोग दें ।
14. **निजी क्षेत्र की भूमिका (Role or Private Sector) -** नियोजन के सफल संचालन में निजी क्षेत्र का भी आवश्यक सहयोग प्राप्त करना चाहिए । ऐसा करने से सरकार अपने सीमित साधनों का अधिक आवश्यक विकास कार्यो में उपयोग करके विकास की दर को अधिक तीव्र कर सकती है।
15. **योजना में विविध सन्तुलन (Blances in planning) -** नियोजन अपनाते समय न केवल पूरे देश का ध्यान रखा जाना चाहिए अपितु ऐसे क्षेत्रों का विशेष ध्यान रखना चाहिए जहाँ विकास कम हुआ है । इसी तरह अर्थव्यवस्था के सभी पहलुओं पर बराबर जोर दिया जाना चाहिए अन्यथा असन्तुलन की स्थिति उत्पन्न हो सकती है ।
16. **उपयुक्त मूल्य-नीति (Suitable Price Policy) -** नियोजन की सफलता के लिए उपयुक्त मूल्य नीति भी आवश्यक है । मूल्यों में बराबर वृद्धि से देश के निवासियों में असंतोष उत्पन्न होता है, जिससे वे सरकार से असहयोग करने लगते हैं
17. **सर्वांगीण विकास नीति (All Round Development Policy) -** नियोजन की सफलता के लिए न केवल यह आवश्यक है कि एक योजना बनाकर उसे पूरा करने के प्रयत्न किये जायें वरन् यह भी आवश्यक है कि उन सभी साधनों के विकास की ओर ध्यान दिया जाये जिससे दीर्घकाल में विकास की सम्भावना बढ़ती हो
18. **उपयुंक्त आर्थिक संगठन (SuitableEconomicOrganization) -** विभिन्न प्रकार के आर्थिक संगठनों के अपने दोष होते हैं व कोई भी आर्थिक संगठन सर्वोत्तम नहीं कहा जा सकता । किन्तु देश में प्रचलित आर्थिक संगठन में आवश्यकतानुसार परिवर्तन कर प्रभावी नियंत्रण द्वारा नियोजन को सफल बनाया जा सकता है ।

13.6 विकासशील राष्ट्रों में आर्थिक नियोजन में कठिनाइयाँ (Difficulties in Planning in Developing Countries)

विकासशील देशों में नियोजन में निम्नलिखित कठिनाइयाँ प्रमुख हैं -

1. **साधनों का अभाव (Lack of Resources) -** नियोजन की सफलता के लिए पर्याप्त भौतिक साधनों की आवश्यकता होती है, किन्तु विकासशील देशों में प्राय: इन साधनों का अभाव होता है ।
2. **वित्त का अभाव व पूँजी निर्माण की नीची दर (Lack of Finance and Low Rate of Capital Formation) -** विकास की कमी के कारण विकासशील देशों में वित्त का अभाव होता है, जिससे योजना का क्रियान्ययन नहीं हो पाता। विकास की कमी से कम राष्ट्रीय आय, कम बचत तथा पूँजी निर्माण की दर भी नीची रहती है।

3. **लक्ष्य और प्राथमिकताएँ निर्धारित करने में कठिनाई (Difficulty in Determining Objectives Priorities) -** विकासशील देश में लक्ष्य निर्धारित करना कठिन होता है एवं यह निर्धारित करना भी कठिन होता है कि पहले कौनसा कार्य किया जाये ।
4. **नियोजकों का अभाव (Lack of Sufficient Data) -** योजना बनाने, उनके क्रियान्वयन एवं मूल्यांकन के लिए प्रशिक्षित नियोजकों की आवश्यकता पड़ती है जिनकी विकासशील देशों में शिक्षा के अभाव के कारण कमी होती है ।
5. **पर्याप्त समंकों का अभाव (Lck of Sufficient Data) -** पर्याप्त एवं विश्वसनीय समंक योजना का आधार होते हैं किन्तु विकासशील देशों में समंक उपलव्य नहीं होते हैं । इससे योजना बनाने, उनके क्रियान्वयन एवं मूल्यांकन में कठिनाई आती है ।
6. **जन-सहयोग का अभाव (Lck of Public co-operation)** - अशिक्षा, सामाजिक और धार्मिक परम्पराओं, कम, आय आदि के कारण विकासशील देशों में जन-सहयोग का अभाव रहता है ।
7. **अकुशल तथा भ्रष्ट प्रशासन (Inefficient and Corrupt Government Machinery) -** प्राय: सभी विकासशील राष्ट्रों में अकुशल प्रशासन पाया जाता है । प्रशासन में भ्रष्ट व्यक्तियों की अधिकता, आर्थिक के स्थान पर राजनीतिक आधार पर कार्य करना, प्रबन्ध व नियोजन के सिद्धान्तों का पालन न करना आदि के कारण नियोजन में अनेक कठिनाइयाँ आती हैं व नियोजन सफल नहीं हो पाता ।
8. **जनाधिक्य (Over population) -** विकासशील देश में प्राय: जनसंख्या वृद्धि दर अधिक होती है । जनाधिक्य आर्थिक नियोजन में सबसे बड़ी बाधा होती है, क्योंकि जितना उत्पादन बढ़ता है, वह जनसंख्या वृद्धि के कारण कम हो जाता है ।
9. **विशेषज्ञों का अभाव (dearth of Specialists) -** अर्द्ध-विकसित देशों में शिक्षा की कमी के कारण विभिन्न कार्यो में विशेषज्ञ उपलव्य नहीं होते हैं ।

उपर्युक्त कठिनाइयों के कारण विकासशील देशों में नियोजन आसानी से नहीं अपनाया जा सकता । यदि अपनाया जाता है तो भी नियोजन पूर्ण रुप से सफल नहीं हो पाता व विकास की गति कम होती है ।

13.7 आर्थिक नियोजन के उद्देश्य (Objectvies of Economic Planning)

आर्थिक नियोजन के उद्देश्य

(अ) आर्थिक उद्देश्य	(ब) सामाजिक उद्देश्य	(स) राजनीतिक उद्देश्य
(i) तीव्र आर्थिक विकास	(i) सामाजिक सुरक्षा	(i) विदेशी आक्रमणों से सुरक्षा
(ii) उत्पादन में वृद्धि	(ii) सामाजिक समानता	(ii) शत्रुओं पर आक्रमण व विजय
(iii) साधनों का सर्वोत्तम उपयोग	(iii) वर्ग–संघर्ष का अन्त	(iii) शान्ति स्थापना
(iv) पूर्ण रोजगार	(iv) नैतिक एवं बौद्धिक उत्थान	(iv) अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग
(v) कृषि का विकास	(v) अहितकर कार्यों पर रोक	
(vi) औद्योगिक विकास		
(vii) सन्तुलित क्षेत्रीय विकास		
(viii) आर्थिक विषमता का समापन		
(ix) आर्थिक स्थायित्व की प्राप्ति		
(x) युद्धोपरान्त पुनर्निर्माण		
(xi) आत्म–निर्भरता		
(xii) राष्ट्रीय तथा प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि।		

(अ) आर्थिक उद्देश्य

आर्थिक नियोजन में आर्थिक उद्देश्य सबसे अधिक महत्वपूर्ण होते हैं । अर्द्ध-विकसित अथवा विकासशील देशों के नियोजन के आर्थिक उद्देश्य शीघ्र विकास, औद्योगीकरण, संतुलित क्षेत्रीय विकास, बेरोजगारी निवारण आदि होते हैं, जबकि विकसित देशों के नियोजन के आर्थिक उद्देश्य विकास की गति को बनाये रखना, पूर्ण रोजगार की स्थिति प्राप्त करना, आर्थिक स्थायित्व लाना तथा प्रतियोगिता में विजय प्राप्त करना होते हैं । यहाँ विकासशील तथा विकसित सभी देशों के नियोजन के प्रमुख आर्थिक उद्देश्यों का वर्णन किया गया है

(i) **तीव्र आर्थिक विकास -** तीव्र गति से आर्थिक विकास नियोजन द्वारा ही संभव है । नियोजन से समस्त साधनों का अनुकूलतम उपयोग एवं साधनों की बर्बादी पर रोक लगाने के कारण आर्थिक विकास की दर तेज हो जाती है ।

(ii) **उत्पादन में वृद्धि -** आर्थिक नियोजन का एक मुख्य उद्देश्य न्यूनतम लागत पर अधिकतम उत्पादन करना होता है।

(iii) **साधनों का सर्वोत्तम प्रयोग -** नियोजित अर्थव्यवस्था में देश के भौतिक एवं वित्तीय साधनों का सर्वोत्तम उपयोग कर समाज के सर्वाधिक हित के अनुसार प्रयोग किया जाता है ।

(iv) **पूर्ण रोजगार -** आर्थिक नियोजन का एक मुख्य उद्देश्य रोजगार के अवसर बढ़ाना जिससे बेरोजगारी समाप्त हो एवं पूर्ण रोजगार की स्थिति प्राप्त करना होता

(v) **कृषि विकास -** अधिकांश देशों में रोजगार तथा आय का साधन कृषि है । कृषि प्रधान देशों को नियोजन के तहत कृषि का विकास करना एक प्रमुख उद्देश्य है ।

(vi) **औद्योगीकरण -** औद्योगीकरण विकास का पर्यायवाची है । विकासशील देश नियोजन के द्वारा आधारभूत एवं अन्य उपभोक्ता उद्योगों की स्थापना करके तीव्र गति से औद्योगिक विकास करना चाहते हैं ।

(vii) **संतुलित क्षेत्रीय विकास -** अनियोजित विकास विधि से देश के कुछ क्षेत्रों का तो अत्यधिक विकास हो जाता है तथा बहुत से क्षेत्र आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए रह जाते है । अत नियोजन का एक उद्देश्य सन्तुलित क्षेत्रीय विकास करना होता है ।

(viii) **आर्थिक विषमता की समाप्ति -** स्वतंत्र बाजार अर्थव्यवस्था में आय तथा सम्पत्ति के क्षेत्र में अत्यधिक आर्थिक विषमताएँ होती है । आर्थिक नियोजन का उद्देश्य एक तरफ उत्पादन में तेजी से वृद्धि करना होता है और दूसरी तरफ इस उत्पादन का समाज के विभिन्न वर्गो में न्यायोचित वितरण करना होता है ।

(ix) **आर्थिक स्थायित्व -** स्वतन्त्र बाजार अर्थव्यवस्थाओं में सदैव व्यापार चक्रों का दौर चलता रहता है, कभी तेजी तथा कभी मन्दी की स्थिति देखने को मिलती है । तेजी एवं मन्दी का समाज के विभिन्न वर्गो पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है । आर्थिक नियोजन का एक उद्देश्य अर्थव्यवस्था में आने वाले व्यापार चक्रों पर रोक लगाकर स्थायित्व के साथ विकास करना होता है ।

(x) **युद्धोपरान्त पुनर्निर्माण -** युद्ध के बाद देश में आर्थिक नियोजन का प्रधान उद्देश्य युद्धोपरान्त पुनर्निर्माण करना होता है ।

(xi) **आत्म निर्भरता -** प्रत्येक विकासशील देश अपनी नियोजन व्यवस्था द्वारा जल्दी से जल्दी आत्मनिर्भर बनना चाहता है, जिससे उसे अपने भावी विकास के लिए अन्य राष्ट्रों की सहायता पर निर्भर नहीं रहना पड़े ।

(xii) **राष्ट्रीय आय एवं प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि -** आर्थिक विकास का मापदण्ड राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति आय होता है । अत: नियोजन का उद्देश्य राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि से सामान्य जनता के जीवन स्तर में सुधार होता है ।

(ब) सामाजिक उद्देश्य

आर्थिक नियोजन में आर्थिक उद्देश्य ही प्रधान होते हैं । परन्तु विभिन्न देशों के नियोजन में निम्नलिखित सामाजिक उद्देश्य भी दिखाई देते हैं :-

(i) **सामाजिक सुरक्षा -** समाज के प्रत्येक सदस्य को समय-समय पर पाँच शत्रुओं- मृत्यु, दुर्घटना, बीमारी, बुढ़ापा तथा बेकारी का सामना करना पड़ता है । आर्थिक नियोजन में इन शत्रुओं के विरूद्ध सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था की जाती है ।

(ii) **सामाजिक समानता -** आर्थिक नियोजन में एक तरफ आर्थिक समानता की स्थापना की जाती है वहीं सामाजिक समानता का उद्देश्य भी रखा जाता है ।

(iii) **वर्ग संघर्ष का अन्त -** पूँजीवादी व्यवस्था में समाज दो वर्गो में बँटा हुआ होता है- एक समृद्ध अथवा धनी वर्ग तथा दूसरा निर्धन वर्ग । नियोजन' में इस वर्ग-भेद को समाप्त कर संघर्ष के स्थान पर एकता का वातावरण निर्मित किया जाता है ।

(iv) **नैतिक एवं बौद्धिक उत्थान -** आर्थिक नियोजन से सभी व्यक्तियों के लिए कार्य की व्यवस्था करके, आर्थिक विषमताओं में कमी करके, निजी लाभ के उद्देश्य को समाप्त करके तथा समाज को अधिकतम सुरक्षा प्रदान करके जनता का नैतिक स्तर ऊँचा उठाया जाता है । जनता के बौद्धिक उत्थान के लिए भी अनिवार्य शिक्षा तथा प्रौढ़ शिक्षा की व्यवस्था की जाती है ।

(v) **अहितकर कार्यो पर रोक -** नियोजन में व्यक्तियों के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक वस्तुओं के उत्थान एवं उनके वितरण पर रोक लगायी जाती है ।

(स) राजनीतिक उद्देश्य

सामान्यतया एक देश में योजनाएँ बनाने एवं उनको कार्यान्वित करने का कार्य एक देश की सरकार द्वारा किया जाता है । देश की सरकार अपने विभिन्न राजनीतिक उद्देश्यों की प्राप्ति नियोजन के माध्यम से करती है । नियोजन के प्रमुख राजनीतिक उद्देश्य निम्नलिखित हैं

(i) **विदेशी आक्रमण से सुरक्षा -** राष्ट्र नियोजन से रक्षा व्यवस्था को मजबूत करके विदेशी आक्रमणों से सुरक्षा का उद्देश्य प्राप्त करता है ।

(ii) **शत्रुओं पर आक्रमण एवं विजय -** दुनियाँ के कुछ देश अपने खोये क्षेत्र को प्राप्त करने हेतु नियोजित ढंग से अपनी सैनिक शक्ति बढ़ाकर, शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के लिए नियोजन का सहारा लेते हैं ।

(iii) **शान्ति स्थापना -** आज विश्व-शान्ति स्थापना हेतु अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर नियोजन की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी है ।

(iv) **अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग** - दुनियाँ के अनेक देशों ने अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के लिए नियोजन का प्रयोग किया है । अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग विकास में सहायक होता

(द) अन्य उद्देश्य

आर्थिक नियोजन के उपर्युक्त महत्त्वपूर्ण उद्देश्यों के अतिरिक्त अन्य सहायक उद्देश्य भी होते हैं । इनमें उद्योग-धन्धों का विकेन्द्रीकरण, सामाजिक चेतना, जनसंख्या नियन्त्रण, कला-कौशल का विकास तथा अन्तर्राष्ट्रीय जगत में ख्याति प्राप्त करना आदि को सम्मिलित किया जा सकता है ।

13.8 ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना

भारत की ग्यारहवीं योजना (2007-2012) को राष्ट्रीय विकास परिषद् का अनुमोदन प्राप्त हो गया है । केन्द्रिय मंत्रिमण्डल ने 30 नवम्बर, 2007 को एवं प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने भी इसे मंजूरी प्रदान कर दी है । योजना में 9% की औसत वृद्धि दर के साथ अन्तिम वर्ष 2011-2012 में 10% वृद्धि का लक्ष्य रखा गया है, 9% वार्षिक विकास के लिए 2007-2012 के दौरान कृषि में 4% तथा उद्योगों व सेवाओं में 9-11% प्रतिवर्ष की दर से वृद्धि । इस योजना के मुख्य बिन्दु निर्धनता निवारण, शिक्षा, महिलाओं एवं बच्चों के स्वास्थ्य की स्थिति, आधारिक संरचना व पर्यावरण हैं ।

ग्यारहवीं योजना के दृष्टिकोण पत्र के प्रमुख बिन्दु निम्नलिखित हैं -

1. दसवीं योजना के अन्तिम वर्ष (2006-2007) में संभावित 8% वार्षिक की संवृद्धि दर के साथ ग्यारहवीं योजना में 9 प्रतिशत वार्षिक की संवृद्धि का लक्ष्य जिसे अन्ततः ग्यारहवीं योजना के अन्तिम वर्ष (2011-2012)ए में बढ़ाकर 10 प्रतिशत किया जाना हैं
2. तीव्रतर विकास के साथ अधिक संहित संवृद्धि की दुतरफा रणनीति ।
3. निर्धनता अनुपात में सन् 2007 तक 5 प्रतिशतांक की तथा सन् 2012 तक 15 प्रतिशताक की कमी लाना ।
4. कम से कम ग्यारहवीं योजना में होने वाली श्रम बल वृद्धि को उच्च गुणवत्ता युक्त रोजगार मुहैया कराना ।
5. से 2011 तक के दशक में जनसंख्या संवृद्धि की दशकीय वृद्धि को घटाकर 16.2% के स्तर पर लाना ।

6. .ग्यारहवीं योजना अवधि में साक्षरता दर को बढ़ाकर 75% करना ।
7. .सन् 2012 तक देश के सभी गाँवों में स्वच्छ पेयजल की अवरित पहुँच सुनिश्चित करना ।
8. योजनावधि में रोजगार के 7 करोड़ नए अवसर सृजित करना ।
9. सन् 2009. तक देश के सभी गाँवों एवं निर्धनता रेखा से नीचे रहने वाले सभी परिवारों/घरों में विद्युत संयोजन सुनिश्चित करना तथा 2012 तक 24 घण्टे विधुत आपूर्ति की व्यवस्था करना ।
10. देश के प्रत्येक गाँव टेलीफोन सुविधा एवं सन् 2012 तक प्रत्येक गाँव को ब्रॉडबैण्ड सुविधा से जोड़ना ।

इस प्रकार आर्थिक नियोजन के अंतर्गत ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना की रुपरेखा सर्वशिक्षा, निर्धनता निवारण, सबको स्वस्थ जीवन, महिलाओं की स्थिति में सुधार, ज्यादा से ज्यादा रोजगार, विद्युत आपूर्ति आदि उद्देश्यों को पूर्ण करने के लिए की गई है ।

13.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. आर्थिक नियोजन से आप क्या समझते हैं? आर्थिक नियोजन की विशेषताओं एवं उद्देश्यों की व्याख्या कीजिए ।
2. नियोजन की तकनीक एवं विधि पर एक आलोचनात्मक लेख लिखिए ।
3. आर्थिक नियोजन के लाभ तथा हानियों की संक्षेप में विवेचना कीजिए ।
4. "नियोजन दासता का मार्ग है ।" स्पष्ट कीजिए ।
5. आर्थिक नियोजन को परिभाषित कीजिए । भारत जैसे विकासशील देश में आर्थिक नियोजन का महत्व समझाइये ।
6. ग्यारहवीं पाँच वर्षीय योजना के मुख्य उद्देश्य बताइये ।

13.10 संदर्भ ग्रन्थ:

❖ भारत में आर्थिक पर्यावरण - डी. वी. के. वशिष्ठ, डी. पी. सी. भिण्डा, डी. एम. जी. वार्ष्णेय, शम्भू सिंह झाला।
❖ आर्थिक नीति एवं विकास - डी. बी. एल. माथुर
❖ भारत में आर्थिक पर्यावरण - डी. एम. डी. अग्रवाल, डी. ओ पी. गुप्ता
❖ पद भारतीय अर्थव्यवस्था - दत्त एवं सुन्दरम
❖ पद भारतीय अर्थव्यवस्था - मिश्रा, पूरी
❖ पद भारतीय अर्थव्यवस्था - ए. एन. अग्रवाल

इकाई- 14: आर्थिक नीति (Economic Policy)

इकाई की रूपरेखा :

14.0 प्रस्तावना
14.1 आर्थिक नीति का अर्थ एवं परिभाषा
14.2 आर्थिक नीति की विशेषताएँ
14.3 आर्थिक नीति के उद्देश्य
14.4 नवीन आर्थिक नीति एवं इसके उपकरण
14.5 आर्थिक नीति के संघटक
14.6 आर्थिक नीति का महत्व
14.7 अभ्यासार्थ प्रश्न
14.8 संदर्भ ग्रन्थ

14.0 प्रस्तावना

आर्थिक नीति से आशय उन सरकारी नीतियों से होता है जिनके द्वारा किसी देश के आर्थिक क्रियाकलापों का नियमन होता है । आर्थिक नीति का सम्बन्ध आर्थिक मामलों से सम्बन्धित कुछ निर्धारित परिणामों की प्राप्ति हेतु अपनाई गई कार्यविधि से होता है । स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत ने अनेक क्षेत्रों में, विशेषकर आर्थिक इतिहास में व्यापक कदम उठाये हैं । हमारे देश में विद्यमान गरीबी, बेरोजगारी एवं अर्द्ध-बेरोजगारी, कम आय, निम्न जीवन स्तर, सामान्य जीवन, उपयोगी वस्तुओं की कमी को दूर करने, आर्थिक विषमता एवं स्थायी आर्थिक विकास के लिए आर्थिक नियोजन अपनाया गया । भारत में योजनाबद्ध विकास की प्रक्रिया 1 अप्रैल, 1951 से प्रारम्भ की गई । इसमें सरकार द्वारा अनेक कार्यक्रम चलाये गये एवं चलाये जा रहे हैं, जिनके सफल क्रियान्वयन हेतु आर्थिक नीतियाँ बनायी गयी । इसके अतिरिक्त देश में कुछ ऐसे महत्त्वपूर्ण क्षेत्र हैं जिनमें देश की आर्थिक नीति के माध्यम से ही क्रियान्वयन होता है, जैसे-देश में उपलब्ध प्राकृतिक एवं मानवीय साधनों का उपयोग, जनता को न्याय एवं शोषण से मुक्ति, आर्थिक सत्ता का विकेन्द्रीकरण और देश के विकास के लिये आधारभूत ढाँचा तैयार करना आदि । आर्थिक नीति एक व्यापक नीति है और इसमें अनेक नीतियों का समावेश किया जाता है ।

14.1 आर्थिक नीति का अर्थ एवं परिभाषा

आर्थिक नीति दो शब्दों, आर्थिक एवं नीति के योग से बना है । प्रथम शब्द, आर्थिक का अर्थ उत्पादन, आय एवं सम्पत्ति का वितरण, वस्तुओं एवं मानवीय संसाधनों का प्रयोग, निर्यात-आयात एवं सामाजिक कल्याण में वृद्धि आदि का सरकार द्वारा संचालन एवं नियमन से है । द्वितीय शब्द, नीति एवं नीतियों का अर्थ एक सामान्य कथन या समझने वाली बातें हैं जो एक संगठन के सदस्यों को अपना कार्य करते समय मार्गदर्शन करती है । इस प्रकार संयोजित रूप में, आर्थिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए व्यापार, वाणिज्य एवं उद्योग में अपनाये जाने वाले मार्गदर्शक सूत्रों को आर्थिक नीतियाँ कहा जाता है ।

सामाजिक विज्ञान के विश्वकोष के अनुसार, "आर्थिक नीति शब्द का प्रयोग आर्थिक क्षेत्र में सरकार की उन सभी क्रियाओं में सम्मिलित किया जा सकता है, जिनका सम्बन्ध उत्पादन, वितरण एवं उपयोग में जानबूझकर अथवा अधिक सरकारी हस्तक्षेप से होता है ।"

इस प्रकार आर्थिक नीति किसी सरकार का वह आर्थिक दर्शन और व्यापक शब्द है जिसके अन्तर्गत विभिन्न नीतियाँ, जैसे - कृषि नीति, औद्योगिक नीति, वाणिज्य नीति, राजकोषीय नीति, मौद्रिक नीति, नियोजन नीति, आय नीति, रोजगार नीति, परिवहन नीति एवं जनसंख्या नीति आदि सम्मिलित हैं, में समन्वय कर निर्धारित लक्ष्यों एवं उद्देश्यों को पूरा करने के लिए वह कदम उठाती है ।

14.2 आर्थिक नीति की विशेषताएँ

आर्थिक नीति के उपर्युक्त विवेचन एवं अध्ययन से इसमें निम्नलिखित विशेषताएँ देखी जा सकती है:

1. **आर्थिक दर्शन :** आर्थिक नीति किसी सरकार का एक आर्थिक दर्शन या विस्तृत विचारधारा है, जिसके माध्यम से वह अपने निर्धारित लक्ष्यों को पूरा करने का प्रयास करती है ।
2. **मार्गदर्शक सूत्र** : आर्थिक नीतियाँ, आर्थिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये व्यापार, वाणिज्य एवं उद्योग में अपनाये जाने वाली कार्यविधि या मार्गदर्शक सूत्र है । अर्थात् आर्थिक नीति में सरकार की उन सभी आर्थिक क्रियाओं एवं क्रियाकलापों सहनियमन को सम्मिलित किया जाता है, जिनका सम्बन्ध उत्पादन, आय एवं सम्पत्ति का वितरण तथा उपयोग, संसाधनों का प्रयोग, विनियोग (निर्यात-आयात) तथा सामाजिक कल्याण में वृद्धि आदि में जानबूझकर अथवा अधिक सरकारी हस्तक्षेप से होता हैं ।
3. **व्यापक शब्द** : आर्थिक नीति एक व्यापक शब्द है क्योंकि इसमें विभिन्न नीतियाँ सम्मिलित की जाती है, जैसे - कृषि नीति, औद्योगिक नीति, वाणिज्यिक नीति, राजकोषीय नीति, मौद्रिक नीति, नियोजन नीति, आय नीति, रोजगार नीति, परिवहन नीति एवं जनसंख्या नीति आदि ।
4. **विभिन्न नीतियों में समन्वय :** देश की विभिन्न आर्थिक नीतियों में समन्वय स्थापित कर निर्धारित लक्ष्यों एवं उद्देश्यों को पूरा करने का कदम उठाया जाता है । यही नहीं, आर्थिक नीति में विभिन्न विरोधी लक्ष्यों के मध्य भी समन्वय स्थापित किया जाता है ।
5. **आर्थिक उद्देश्यों को प्राप्त करने के एक साधन के रूप में :** आर्थिक नीतियों को राज्य द्वारा अपने आर्थिक उद्देश्यों को प्राप्त करने के साधन के रूप में प्रयोग किया जाता है ।
6. **एक सुविचारित नीति :** आर्थिक नीति किसी देश की सरकार द्वारा अपनायी गयी एक सुविचारित नीति है जो अर्थव्यवस्था के प्रबन्ध, नियमन एवं नियंत्रण को सरल बनाती हैं।
7. **प्रशासन तन्त्र का मार्गदर्शन :** आर्थिक नियोजन में सरकार उद्देश्य निर्धारित करती है, जिन्हें प्राप्त करने के लिए आर्थिक नीतियाँ बनाती है । आर्थिक नीतियाँ प्रशासन तन्त्र का मार्गदर्शन करती है परिणामस्वरूप आर्थिक उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सके ।
8. **विशिष्ट उद्देश्य एवं निश्चित कार्यक्रम में सम्बन्ध :** आर्थिक नीति में सरकार विशिष्ट उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए कुछ निश्चित कार्यक्रम अपना सकती है ।

9. **क्रियाओं को प्रोत्साहित, नियमित एवं नियंत्रित करना :** जब सरकार उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए निश्चित कार्यक्रम तैयार करती है तो कुछ क्रियाओं को प्रोत्साहित करती है तो कुछ को नियमित एवं नियंत्रित भी करती है ।
10. **सामाजिक एवं राजनीतिक नीतियों से प्रभावित :** आर्थिक नीतियाँ सामान्य रूप से सामाजिक एवं राजनीतिक नीतियों से प्रभावित होती है । हमारा उद्देश्य जनता का जीवन-स्तर ऊँचा करना, समाजिक सुरक्षा प्रदान करना, देश में शान्ति बनाये रखना एवं राजनीतिक स्थिरता हो तो आर्थिक नीति का इनके अनुकूल होना आवश्यक है ।

14.3 आर्थिक नीति के उद्देश्य

आज की आर्थिक नीति का मुख्य उद्देश्य देश में आर्थिक विकास की दर में वृद्धि करना है । अतः इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु आर्थिक नीति के अन्य उद्देश्य निम्नलिखित है:

1. **आर्थिक विकास एवं दर में वृद्धि करना :** देश में आर्थिक विकास एवं दर में वृद्धि करना आर्थिक नीति का मुख्य उद्देश्य है । विनियोग कार्यो को प्रोत्साहित करना, देश में उपलब्ध संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग करना एवं सन्तुलित आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करना चाहिए ।
2. **नियोजित विकास एवं प्रक्रिया पर बल देना :** देश में नियोजित विकास के मार्ग को स्वीकार किया गया ताकि सन्तुलित विकास के साथ निश्चित उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सके । अतः हमारी सभी नीतियों का उद्देश्य नियोजित विकास एवं प्रक्रिया पर बल देना तथा नियोजन को सफल बनाना है ।
3. **देश में आर्थिक संकेन्द्रण को कम करना :** आर्थिक नीति का उद्देश्य देश में आर्थिक संकेन्द्रण को कम करना है । यह संकेन्द्रण आय एवं सम्पत्ति दोनों ही क्षेत्रों में हैं।
4. **सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र में समन्वय स्थापित करना :** भारत में मिश्रित उार्थव्यवस्था को अपनाया गया है । इसमें सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र में समन्वय स्थापित करना आर्थिक नीति का महत्वपूर्ण उद्देश्य है ।
5. **आर्थिक दृष्टि से कमजोर एवं पिछड़े लोगों की प्रगति पर ध्यान देना :** आर्थिक नीति का उद्देश्य आर्थिक दृष्टि से कमजोर एवं पिछड़े लोगों की प्रगति के लिए आर्थिक नीतियाँ ऐसी हों जो इनको सामाजिक एवं राजनीतिक न्याय दे, समाज में व्याप्त आर्थिक असमानता, अन्याय एवं शोषण को दूर किया जा सके और समाज में सम्पत्ति, आय एवं अवसरों की समानता बढ़े ।
6. **देश के औद्योगिक विकास की गति को तेज करना :** देश में तेजी से औद्योगिक विकास द्वारा विकसित देशों की श्रेणी को प्राप्त किया जा सकता है । इसलिए देश की आर्थिक नीति का उद्देश्य औद्योगिक विकास की बाधाएँ समाप्त करके तेजी से देश का औद्योगिक विकास करना है ।
7. **व्यापार संवर्द्धन की सम्भावनाओं का अवलोकन करते हुए निर्यात में अभिवृद्धि करना :** हमारी वाणिज्यिक नीति का उद्देश्य व्यापार संवर्द्धन की संभावनाओं का अवलोकन करते हुए निर्यात में अभिवृद्धि करना है ।
8. **तेजी से कृषि विकास करना :** कृषि हमारी अर्थव्यवस्था का आधार है । अतः कृषि का तेजी से विकास करना. एवं बहु-संख्यक कृषक वर्ग का जीवन-स्तर उन्नत करना आर्थिक नीतियों का उद्देश्य है ।

9. **पूर्ण रोजगार की स्थिति प्राप्त करना :** देश में बेरोजगारी की स्थिति को समाप्त करके काम चाहने वाले प्रत्येक नागरिक को काम उपलब्ध कराना आर्थिक नीति का महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है ।
10. **देश में आर्थिक स्थिरता बनाये रखना :** आर्थिक स्थिरता या स्थायित्व का आशय स्थायी एवं नियमित उन्नति से है । इसलिए आर्थिक नीति का एक यह भी उद्देश्य होता है कि व्यापार चक्रों के कारण तेजी-मन्दी को नियंत्रित करने के लिए अनेक कार्य जैसे- मुद्रा-प्रसाद के समय कठोर मौद्रिक नीति अपनाना और मन्दी के समय उदार मौद्रिक नीति अपनाकर स्थायित्व बनाए रखना ।
11. **देश के नागरिकों का अधिकतम सामाजिक कल्याण करना :** आर्थिक नीति का उद्देश्य देश के नागरिकों का अधिकतम सामाजिक कल्याण करना भी होता है । जनता को अधिकतम कल्याण की प्राप्ति हो, आय एवं सम्पत्ति का वितरण गरीब व्यक्तियों के पक्ष में हो और प्रगतिशील कर नीति अपनायी जाये ।
12. **देश के नागरिकों को वैध कार्य करने की छूट देना :** सरकार द्वारा देश के प्रत्येक नागरिक को व्यवस्था करने की पर्याप्त सुविधा प्रदान की जानी चाहिए । अतः आर्थिक नीतियों का उद्देश्य देश के नागरिकों को वैध कार्य करने की छूट देना भी है । परिणामस्वरूप व्यक्ति स्वतंत्रतापूर्वक अपना जीवनयापन कर सके ।
13. **विदोहन को अनुकूल करना :** देश की अर्थव्यवस्था का आर्थिक विकास वहाँ के प्राकृतिक संसाधनों के सन्तुलित विदोहन पर निर्भर करता है । इसलिए सरकार की आर्थिक नीति का एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य संसाधनों का अनुकूलतम विदोहन करना होता है ।
14. **आधारभूत सुविधाओं का विकास :** देश का औद्योगिक विकास वहाँ पर उपलब्ध आधारभूत सुविधाओं पर निर्भर करता है । ये जितनी अधिक होगी अर्थव्यवस्था का विकास भी उतनी ही तेजी के साथ हो सकेगा । इसके अन्तर्गत बिजली का विकास, परिवहन एवं संचार के साधनों का विकास आदि को सम्मिलित किया जाना है ।
15. **विनिमय दर में स्थायित्वता लाना :** दो देशों के बीच में मुद्रा के आपसी लेन-देन के समय विनिमय दर की स्थायित्वता महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती है । विनिमय दरों की अस्थिरता अर्थव्यवस्था के लिए हानिकारक मानी जाती है, इसलिए इनमें स्थायित्वता लाना आवश्यक है ।

14.4 नवीन आर्थिक नीति की मुख्य विशेषताएँ अथवा इसके उपकरण

"आर्थिक नीति, बहु-आयामी नीति है ।" यह कथन बिल्कुल सही है क्योंकि आर्थिक नीति के अनुरूप ही देश की अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों की नीति तैयार की जाती है । यदि विभिन्न नीतियाँ आर्थिक नीति के अनुरूप नहीं बनायी जाती है तो आर्थिक नीति के उद्देश्यों को प्राप्त करने में कठिनाई आयेगी । आर्थिक नीति एक व्यापक नीति है और इसमें अनेक नीतियों का समावेश किया जाता है। इसलिए भी आर्थिक नीति एक बहु-आयामी नीति है ।

आर्थिक नीति के उपकरण

विभिन्न आर्थिक नीतियों के सफलतापूर्वक क्रियान्वयन के लिए कुछ उपकरणों की आवश्यकता होती है । आर्थिक नीति के सन्दर्भ में जिन उपकरणों को प्रयुक्त किया जाता है वे निम्नांकित है:

राजकोषीय उपकरण (Fiscal Instruments)

आर्थिक नीति के राजकोषीय उपकरण के अन्तर्गत सरकार द्वारा वित्त एकत्रित करने एवं उसको व्यय करने से सम्बन्धित क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है । आर्थिक विकास, सामाजिक कल्याण में वृद्धि हेतु सरकार को नवीन सुविधाओं के विकास एवं विस्तार के लिए धन की आवश्यकता पड़ती है, जिसकी पूर्ति निम्न साधनों से की जाती है :

1. **करारोपण (Taxalion) :** कर राजकीय आय का एक महत्वपूर्ण स्त्रोत है । करारोपण का उद्देश्य आय प्राप्त करना एवं वितरण व्यवस्था को न्यायोचित बनाना होता है ।
2. **सार्वजनिक ऋण (Public Debts) :** सार्वजनिक ऋण का आशय सरकार द्वारा प्राप्त किया जाने वाले सरकारी ऋण से है ।
3. **हीनार्थ प्रबन्धन (Deficit financing) :** हीनार्थ प्रबन्धन अथवा घाटे की वित्त व्यवस्था का राष्ट्र के वित्तीय साधनों में महत्वपूर्ण योगदान होता है ।

मौद्रिक उपकरण (Monetary instruments) :

मौद्रिक उपकरणों का प्रयोग अर्थव्यवस्था में मुद्रा व साख की मात्रा को नियन्त्रित करने के उद्देश्य से किया जाता है ।

आर्थिक नीति के संचालन एवं सफलता के लिए जिन प्रमुख मौद्रिक उपकरणों को प्रयुक्त किया जाता है वे निम्नांकित है :

1. **साख नियन्त्रण :** इसका आशय साख की मात्रा को देश की आवश्यकताओं के अनुरूप समायोजित करना है ।
2. **ब्याज दर :** विकासशील देशो में मौद्रिक नीति की सफलता के लिए बैंक विभिन्न प्रकार के निक्षेपों तथा ऋणों के लिए भिन्न-भिन्न व्याज की दरों को निर्धारित करती है जिसका उद्देश्य जमाओ अथवा ऋणों को प्रोत्साहित या निरूत्साहित करना होता है ।
3. **विनिमय दर :** मौद्रिक नीति का मुख्य उद्देश्य विनिमय दर में स्थिरता बनाये रखना है ।
4. **बैंकिग विकास :** आर्थिक नीतियों के क्रियान्वयन में बैंक महत्वपूर्ण माध्यम सिद्ध हुए हैं।
5. **बचतों को प्रोत्साहन :** बैंकिग विकास की उपयुक्त नीति अपना कर समाज की अतिरिक्त आय को बचत के रूप में बैंको में जमा कर आर्थिक नीति के निर्धारित उद्देश्यों के अनुरूप धन की प्राप्ति की जा सकती है ।

व्यापारिक उपकरण :

आर्थिक नीति में व्यापारिक उपकरणों की भूमिका को निम्न प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है :

1. **मुक्त एवं प्रतिबन्धित व्यापार :** वर्तमान में नियन्त्रित व्यापार को अधिक महत्व प्रदान किया गया है । सुव्यवस्थित आर्थिक विकास हेतु प्रतिबन्धित व्यापार का विशेष महत्व होता है ।
2. **राष्ट्रनुसार प्राथमिकताएँ :** आर्थिक नीति में व्यापारिक नियन्त्रणों की सफलता हेतु विदेशी व्यापार में राष्ट्रनुसार प्राथमिकता की नीति को अपनाया जाता है ।
3. **वस्तुनुसार प्राथमिकता :** आर्थिक नीति की सफलता उपयुक्त वस्तुनुसार प्राथमिकता पर भी निर्भर करती है ।

नियन्त्रण :

आधुनिक अर्थव्यवस्थाओं में आर्थिक नियन्त्रणों का विशेष महत्व है ।

1. **निवेश नियन्त्रण :** तीव्र उद्योगीकरण तथा पूर्ण रोजगार की प्राप्ति के लिए पूँजी निवेश नियन्त्रण का विशेष महत्व है।
2. **मूल्य नियन्त्रण :** आर्थिक नीति के मूल्य नियन्त्रण सम्बन्धी उपकरणों का मुख्य उद्देश्य उपभोक्ता के हितों की रक्षा करना होता है ।
3. **सार्वजनिक वितरण व्यवस्था :** सार्वजनिक वितरण प्रणाली का आशय अत्यधिक उपभोग की वस्तुओं के वितरण की सरकारी स्तर पर व्यवस्था से है ।
4. **लाइसेंसिग व्यवस्था :** इस व्यवस्था द्वारा उत्पादित वस्तुओं, लागत साधनों तथा पद्धति पर नियन्त्रण रखा जाता है । लाइसेंसिग नीति आर्थिक नीति का एक महत्वपूर्ण उपकरण है, जिसकी सहायता से उत्पादन को नियन्त्रित किया जा सकता है ।

14.5 आर्थिक नीति के संघटक:

राष्ट्र की आर्थिक नीति की सफलता उसके संघटको पर आश्रित होती है । सामान्यत: निम्न नीतियों का प्रयोग आर्थिक नीति के संघटकों के रूप में किया जाता है :

1. **प्राकृतिक संसाधन नीति :** आर्थिक नीति के लक्ष्यों के अनुरूप प्राकृतिक संसाधनों का प्रयोग एवं विदोहन करना उपयुक्त होता है । खेती, वनों के विकास करने के लिए, सिंचाई आदी क्षेत्रों में विनियोग पर बल देना चाहिए।

2. **आर्थिक नियोजन :** नियोजन का सम्बन्ध अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों से होता है । इसलिए नियोजन नीति का निर्माण आर्थिक नीति के लक्ष्यों के अनुरूप होना आवश्यक है । भारत सरकार ने इस दिशा में अनेक योजनाएँ बनायी जिनमें वर्तमान योजना दसवीं पंचवर्षीय योजना है । इस योजना का मुख्य उद्देश्य अगले दस वर्षो में प्रति व्यक्ति आमदनी दुगुनी करना है । अत: इन बातों को ध्यान में रखते हुए निम्नलिखित लक्ष्य निर्धारित किये गये है:

(i) निर्धनता अनुपात 2012 तक कम करके 10 प्रतिशत तक लाना ।

(ii) प्राथमिक शिक्षा को सर्वव्यापक बनाना ।

(iii) सन् 2011 तक जनसंख्या की वृद्धि दर को 16.2 प्रतिशत तक लाना ।

(iv) सन् 2012 तक वनों एवं वृक्षों से घिरे क्षेत्र को 33 प्रतिशत तक बढ़ाना ।

(v) सभी मुख्य नदियों और अन्य अनुसूचित जल क्षेत्रों को 2012 तक साफ करना । इसके अतिरिक्त 2012 तक सभी गाँवों में पीने योग्य पानी को उपलब्ध कराना ।

इस प्रकार आर्थिक नियोजन के उद्देश्य एवं लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए भारत सरकार ने अनेक योजनाएँ बनायी एवं समय रहते हुए परिवर्तन तथा संशोधन भी किया ।

3. **जनसंख्या नीति :** किसी देश के आर्थिक विकास में मानवीय संसाधनों का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है । लेकिन देश की जनसंख्या में अधिक वृद्धि, उसके गुणात्मक पहलू में कमी आदि से देश के आर्थिक विकास में बाधा उत्पन्न होती है । औद्योगिक नीति की सहायक नीति के रूप में जनसंख्या नीति तैयार की जाती है । 15 फरवरी, 2000 को घोषित नयी राष्ट्रीय जनसंख्या नीति की मुख्य बातें निम्न प्रकार है :

(i) सन् 1971 की जनगणना के आधार पर लोक सभा के लिए निर्धारित सीटों की संख्या सन् 2026 तक स्थिर रखने का फैसला लिया गया ।

(ii) गरीबी की रेखा से नीचे रहने वाले तथा लघु परिवार के सिद्धान्त को अपनाने वाले परिवारों के लिए 5000 रू. तक की स्वास्थ्य बीमा योजना शुरू की जायेगी ।

(iii) सन् 2045 तक जनगणना के स्थिरीकरण का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए दो बच्चों के प्रावधान को जारी रखने का निर्णय लिया गया है ।

(iv) गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले दम्पत्ति यदि कानूनन योग्य आयु सीमा के बाद शादी करते हैं तथा सम्बद्ध महिला 22 वर्ष के बाद पहली बार माँ बनती है तो उस दम्पत्ति को पुरस्कृत किया जायेगा।

(v) सरकार ग्रामीण इलाकों में एबूलेन्स सेवा उपलब्ध करवाने वाले को मदद एवं ऋण उपलब्ध करायेगी ।

4. **कृषि नीति:** देश में कृषि का विकास, विस्तार, संस्थागत एवं तकनीकी परिवर्तनों के लिए कृषि नीति तैयार की जाती है । कृषि, विकास की नवीन नीति का प्रारम्भ 1964-65 एवं 1967-68 के बीच भू-जल साधनों का तेजी से विकास एवं उपयोग करने के लिए किया गया । इस नीति के प्रथम चरण में गहन कृषि जिला कार्यक्रम अपनाया गया । इन नीतियों के पश्चात् 2000, 2002 एवं 2003 में कृषि नीति बनायी गयी, जिनकी मुख्य बातें निम्नलिखित हैं

(i) कृषि क्षेत्र में 4 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि दर प्राप्त करना ।

(ii) बंजर भूमि को कृषि तथा वनों के लिए उपयोग में लाना ।

(iii) रबी उपजों के लिए न्यूनतम समर्थन मूल्य की व्यवस्था करना ।

(iv) राष्ट्रीय कृषि बीमा योजना प्रारम्भ करना ।

(v) पम्प सेट, निजी टयूबवैल एवं फिल्टर राजकीय टयूबवैल से लघु सिंचाई करना ।

(vi) कृषिगत विकास के लिए विभिन्न निगमों की स्थापना की गयी, जैसे - नाबार्ड, खाद्य निगम, ग्रामीण विद्युतीकरण निगम, जी.आई.सी., 4 सार्वजनिक क्षेत्र की कम्पनियाँ आदि ।

(vii) नई बीज नीति के अन्तर्गत नई पौध प्रजातियों को विकास हेतु अनुसंधान को बढ़ावा देकर बीज क्षेत्र में निवेश को बढ़ावा देने के उद्देश्य से बौद्धिक सम्पदा संरक्षण का पर्याप्त प्रावधान करना ।

5. **औद्योगिक नीति:** भारत सरकार ने 24 जुलाई, 1991 को नई औद्योगिक नीति की घोषणा की । इस नीति का मुख्य उद्देश्य देश में आर्थिक ढाँचे में आमूलचूल परिवर्तन करना था, ताकि देश में औद्योगिक विकास किया जा सके । इस नीति में मुख्यत: निम्न बातें सम्मिलित की गयीं:

(i) औद्योगिक नीति की घोषणा करते समय 18 उद्योगों, फिर 15 उद्योगों एवं वर्गों को, निजी क्षेत्र के उद्योगपतियों को लाईसेन्स लेना पड़ता था । किन्तु जुलाई, 2002 से केवल 53 उद्योगों को ही लाईसेन्स लेना पड़ता है ।

(ii) उद्यमियों को अपने उद्योगों का रजिस्ट्रेशन करवाने की आवश्यकता नहीं है ।

(iii) सार्वजनिक क्षेत्र में केवल 3 उद्योग ही आरक्षित रहेंगे ।

(iv) लघु उद्योग सभी लाईसेन्स प्रक्रिया से मुक्त होंगे ।

(v) लघु स्तरीय, सहायक उद्योग एवं लघुत्तर क्षेत्र की इकाइयों की पूँजी सम्पत्तियों में विनियोग सीमा क्रमशः 60 लाख से 1 करोड़ रू., 75 लाख से 1 करोड़ रू. और 5 लाख से 25 लाख

रू. कर दी गयी है । यही नहीं, लघु स्तरीय उद्योगों के लिए आरक्षित उद्योगों में अनिवासी भारतीयों को 24 प्रतिशत तक अंश पूँजी लगाने की छँट दे दी गयी है ।

(vi) विदेशी इक्विटी में 51 प्रतिशत तक की स्वचालित स्वीकृति प्रदान की गयी ।

(vii) विद्युत क्षेत्र में विदेशी निवेश की 15 अरब रूपये की सीमा को हटा दिया गया है ।

(viii) परिशिष्ट-तृतीय के 34 उद्योगों को छोडकर किसी भी अन्य उद्योग के लिए विदेशी तकनीक के समझौते को स्वत: अनुमति प्राप्त हो जायेगी, बशर्ते उसके किसी भी भुगतान के लिए खुली विदेशी मुद्रा की माँग नहीं की जानी है ।

6. **व्यापारिक नीति :** व्यापारिक नीति के अन्तर्गत प्रमुख रूप से आयात-निर्यात, अभ्यंश, दिशा व स्वभाव, स्वदेशी उद्योगों का संरक्षण एवं उनका स्वभाव विदेशी मुद्रा व सहायता, व भुगतान सन्तुलन आदि समस्याओं को सम्मिलित किया गया है । नवीन आयात निर्यात नीति 2002-07 की घोषण के मुख्य बिन्दु निम्न प्रकार हैं :

(1) देश से निर्यात वृद्धि को बढ़ावा ।

(2) कुछ संवेदनशील वस्तुओं को छोडकर सभी वस्तुओं के निर्यात पर मात्रात्मक प्रतिबन्ध समाप्त।

(3) कृषि निर्यात क्षेत्र एवं विशिष्ट निर्यात क्षेत्र की स्थापना ।

(4) खुली सामान्य लाइसेन्स व्यवस्था ।

(5) प्रत्यक्ष विदेशी विनयोग को प्रोत्साहन ।

(6) निर्यात योजनाओं का सरलीकरण ।

7. **परिवहन एवं संचार नीति :** देश में आधारभूत संरचना के निर्माण में परिवहन एवं संचार के साधनों की महत्वपूर्ण भूमिका है । इन साधनों से देश के विभिन्न क्षेत्र एक-दूसरे से जुड़ जाते हैं और भौगोलिक दूरियाँ कम हो जाती है । इसलिए भारत सरकार ने अनेक नीतियाँ घोषित की, जो निम्नलिखित है:

(i) दूरसंचार उपकरणों का उत्पादन कुछ सीमा तक निजी क्षेत्र के लिए खोल दिया गया है ।

(ii) कस्टमर-प्रेमीसेज-टेलीफोन उपकरणों के उत्पादन में निजी क्षेत्र को इजाजत दे दी गयी ।

(iii) ग्राहक द्वारा मॉगते ही टेलीफोन उपलब्ध करा दिया जायेगा, सभी गाँवों में यह सुविधा पहुँचा दी जायेगी।

(iv) शहरी क्षेत्रों में प्रति 500 व्यक्तियों पर एक (Public Call Office) स्थापित कर दिया जायेगा।

8. **कीमत नीति:** कीमत नीति द्वारा अर्थव्यवस्था में कीमतों का नियंत्रण एवं नियमन किया जाता है ताकि कीमतों में उच्चावचन न हो । विकासमान अर्थव्यवस्था में मूल्य नीति के निम्नांकित उद्देश्य हो सकते हैं:

(i) सरकार द्वारा समाज को उपयुक्त मुल्य पर उपभोग की वस्तुओं को उपलब्ध कराना ।

(ii) कृषिगत उत्पादन बढ़ाने के लिए फॉस्फेट एवं पोटाश उर्वरकों पर सब्सिडी बढ़ायी गयी है । ऐसे अनेक उपाय कर उत्पादन को प्रोत्साहित करना ।

(iii) आय की स्वैच्छिक घोषणा स्कीम लागू की गयी ।

(iv) सरकार सार्वजनिक विनियोग में वृद्धि करके औद्योगिक मन्दी को दूर करने का प्रयास करती है।

(v) करों की चोरी रोकने तथा अपराधों के विरूद्ध कड़ा अभियान चलाना ।

9. **मौद्रिक एवं साख नीति:** मौद्रिक कठिनाईयों को दूर करने तथा साख नियन्त्रण हेतु राष्ट्र की मौद्रिक नीति महत्वपूर्ण उपकरण है । भारत में रिजर्व बैंक द्वारा प्रति छः माह बाद मौद्रिक एवं साख नीति की घोषणा एवं परिवर्तित की जाती है ।

मौद्रिक नीति के महत्वपूर्ण उद्देश्य निम्न है :

(1) आर्थिक स्थायित्व बनाए रखना ।

(2) बैंक दर, रेपोदर आदि घटाना बढ़ाना, बचत दर, मुद्रा स्फीति दर को नियन्त्रण करना ।

(3) मौद्रिक नीति की सहायता से बचत एवं विनियोग के मध्य समन्दय स्थापित करके पूर्ण रोजगार की स्थिति को प्राप्त किया जा सकता है ।

(4) मुल्यों को स्थिर रखना ।

(5) मौद्रिक उपलब्धि एवं साख व्यवस्था का अनुकूल विकास करके आर्थिक विकास की व्यवस्था करना ।

(6) बचत को प्रोत्साहित करना ।

(7) मुद्रा प्रसार के प्रभावों को नियन्त्रित करना ।

10. **प्रशुल्क नीति:** प्रशुल्क नीति का ऋण एवं व्यय के वितरण, अर्थव्यवस्था की कार्यविधि को स्थित एवं सुव्यवस्थित आधार प्रदान करने हेतु प्रयोग किया जाता है । प्रशुल्क नीति का प्रमुख कार्य पूँजी निर्माण को प्रोत्साहित करना होता है । प्रशुल्क नीति के मुख्य उद्देश्यः

(1) आय की असमानता को दूर करना ।

(2) मुद्रा प्रसार की प्रवृत्तियों पर प्रभावी नियन्त्रण करना ।

(3) बचत एवं विनियोग को प्रोत्साहित करना ।

(4) आर्थिक विषमता को कम करने के उद्देश्य से धन एवं आय के समान वितरण के लिए राजकोषीय नीति का विशेष महत्व होता है ।

11. अन्य नीतियाँ

(i) ग्रामीण निर्धनता जैसी समस्या को दूर करने के लिए राष्ट्रीय रोजगार कार्यक्रम चलाना, मजदूरी के लाभ से सम्बन्धित सामाजिक सुरक्षा व्यवस्था और सामाजिक सेवाओं की दशा में सुधार करना ।

(ii) शिक्षित वर्ग में बेरोजगारी दूर करने के लिए व्यावसायिक प्रशिक्षण पर जोर दिया गया, नीची आमदनी एवं ऊँची निरक्षरता वाले राज्यों में आर्थिक विकास की तीव्र वृद्धि की रणनीतियाँ पर ज्यादा बल देना।

(iii) बहु राष्ट्रीय निगमों द्वारा जारी की गयी संकर किस्मों का अंधाधुंध उपयोग भारत में बढ़ाया जाए क्योंकि उचित मिट्टी एवं जल प्रबंधन के अभाव में वे देश के हितों को क्षति पहुँचा सकती है ।

(iv) कृषिगत अनुसन्धान, मानवीय संसाधनों के विकास, फसल के बाद की प्रबन्ध व्यवस्था एवं विपणन आदि में निजी क्षेत्र का निवेश बढ़ाया जायेगा ।

(v) साक्षरता की दरों को 2012 तक 80 प्रतिशत करना ।

(vi) मजदूरी से सम्बन्धित मजदूरी नीति बनाना ताकि श्रमिकों के हितों की सुरक्षा हो सके ।

इस प्रकार आर्थिक नीतियाँ एवं आर्थिक नियोजन प्रणाली के माध्यम से पंचवर्षीय योजनाओं का निष्पादन होता है जिनका प्रमुख उद्देश्य यहाँ के लोगों के आर्थिक जीवन को ऊँचा करना है । आर्थिक नियोजन के साथ-साथ देश में कुछ ऐसे महत्त्वपूर्ण क्षेत्र भी हैं जिनमें देश की आर्थिक नीति के माध्यम से ही क्रियान्वयन होता है । अत: आर्थिक नीति के अन्तर्गत ये बातें भी सम्मिलित की जा सकती हैं, जैसे, देश की व्यापार नीति, उद्योग के लिए नियमन एवं नियंत्रण नीति, कराधान नीति, सार्वजनिक व्यय एवं ऋण नीति, स्वदेशी विनियोजन नीति, आय, रोजगार एवं मूल्य नीति, देश की आय का वितरण एवं यहाँ के लोगों की आर्थिक स्थिति, आर्थिक मूलभूत ढाँचे की नीति और घाटे की वित्त व्यवस्था की नीति आदि ।

14.6 आर्थिक नीति का महत्त्व

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत ने अर्थव्यवस्था को गति प्रदान करने के लिए अनेक प्रयास किये । इन प्रयासों एवं संरचनाओं का मुख्य उद्देश्य अर्थव्यवस्था को अधिक मजबूत एवं स्वावलम्बी बनाना था । विकासशील देशों की दुनिया में भारतवर्ष एक अधिक स्थायी एवं स्वावलम्बी अर्थव्यवस्था वाले राष्ट्र के रूप में उभर कर सामने आया है । परिणामस्वरूप भारत को विश्व शान्ति की रक्षा करने एवं विश्व के नये आर्थिक कार्यक्रम की रचना करने, जो सम्मान एवं न्याय पर आधारित है, की स्थिति में रखा है ।

आर्थिक नीति के महत्व को इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है:

1. समाजवादी समाज की ओर कदम:

भारत का आर्थिक एवं सामजिक क्षेत्र में महत्वपूर्ण प्रयासों का एकमात्र लक्ष्य समाजवादी समाज की स्थापना करना है ।

2. कीमतों पर नियंत्रण :

आर्थिक निति के द्वारा देश में बढ़ी कीमतों पर नियंत्रण किया जा सकता है । इसका कारण यह है कि इसके अन्तर्गत केन्द्रीय एवं राज्य सरकार द्वारा यह ध्यान रखा जाता है कि अपने संसाधनों एवं कार्यक्रमों का कुशल संचालन एवं प्रबन्ध किया जाए । परिणामस्वरूप इससे न केवल लोगों को राहत मिलेगी, बल्कि हमारी नीति की उपयोगिता को समझने में भी सहायता मिल सकेगी । इसके अतिरिक्त सार्वजनित वितरण प्रणाली को और अधिक सुदृढ़ बनाकर उसका विस्तार करके एवं कुशल प्रबन्ध के द्वारा कीमतों पर नियंत्रण किया जाता हैं । यही नहीं आर्थिक नीति में बढ़ती हुई कीमतों की समस्या के निवारण के लिए सामाजिक स्तर पर भी लोगों में सामाजिक जागति फैलानी होगी ।

3. रोजगार के अधिक अवसर उपलब्ध कराना:

आर्थिक निति का महत्त्व रोजगार के अधिक अवसर उपलब्ध कराने के लिए भी है क्योंकि इसके अन्तर्गत निम्नलिखित विनियोजन एवं अन्य नीति बनायी जाती हैं :

(i) देश में व्याप्त गरीबी को दूर करने के लिए अधिक संसाधनों का अनुकूलता उपयोग करने के साथ-साथ हमें भूमिहीन किसानों एवं शिक्षित नवयुवकों को रोजगार के अधिक अवसर प्रदान करने की दिशा में महत्त्वपूर्ण कदम उठाना पड़ेगा ।

(ii) रोजगार के द्वारा समय-समय पर जिन रोजगार कार्यक्रमों की घोषणा की जाती रही है, उनके सही मूल्यांकन के लिए आवश्यक कदम उठाना, इस दिशा में अपरिहार्य हो गया है ।

4. आर्थिक शक्ति एवं संकेन्द्रण का कम होना:

आर्थिक नीतियाँ बनाने से देश में बड़े औद्योगिक घरानों की सम्पदा, आर्थिक शक्ति और आर्थिक संकेन्द्रण को कम किया जा सकता है ।

5. देश में तीव्र आर्थिक विकास:

आर्थिक नीतियों के माध्यम से देश में तीव्र आर्थिक विकास होता है क्योंकि इसके अन्तर्गत देश में उपलब्ध संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग कर अर्थतन्त्र को घोषित दिशा दी जाती है । यही नहीं, साधनों की सीमितता के कारण प्राथमिकताओं का निर्धारण कर अधिक महत्त्वपूर्ण परियोजनाओं को पहले पूरा किया जाता है । इसके अतिरिक्त आर्थिक नीति के आधार पर विकास के आधारभूत ढाँचे को सुदृढ़ भी किया जाता है ताकि देश के भावी विकास का मार्ग प्रशस्त हो ।

6. सार्वजनिक क्षेत्र की महत्त्वपूर्ण भूमिका:

देश में सार्वजनिक क्षेत्र की महत्त्वपूर्ण भूमिका के निर्वाह हेतु भी आर्थिक नीतियों का महत्त्व है । इसका कारण यह है कि औद्योगिक उपढाँचे के क्षेत्र में उत्पादकता, आधुनिकीकरण एवं अधिक उत्पादन के लिए विनियोग की प्राथमिकता में सुधार लाना आवश्यक हो गया है ।

7. नियोजित विकास को प्रोत्साहन :

विकासशील देशो ने तीव्र आर्थिक विकास के लिए नियोजन को अपनाया है । आर्थिक नीति से नियोजित विकास को प्रोत्साहन मिलता है क्योंकि इसमें बनायी गयी योजनाओं के अनुसार नीतियों में परिवर्तन किया जाता है, उन्हें सरल बनाया जाता है और कमियों को दूर किया जाता है ।

8. नागरिकों का अधिकतम सामाजिक कल्याण

आर्थिक नीतियाँ बनाने से देश के नागरिकों का अधिकतम सामाजिक कल्याण होता है । इसका कारण यह है कि देश में ऐसी नीतियाँ बनायी जाती हैं जिससे आय एवं सम्पत्ति का गरीब व्यक्तियों के पक्ष में वितरण हो । इसके अतिरिक्त आर्थिक साधनों द्वारा इस प्रकार का उपयोग किया जाता है कि अधिकतम कल्याण की प्राप्ति हो ।

9. उत्पादन में वृद्धि

आर्थिक नीति से उत्पादन में भी वृद्धि होती है क्योंकि:

(i) किसानों को उनकी उपज की उचित कीमत मिले और वे उत्पादन के लिए प्रोत्साहित हो, के लिए कृषि मूल्य नीति बनायी जाती है ।

(ii) औद्योगिक नीति इस प्रकार बनायी जाती है कि देश में तेजी से औद्योगिक विकास हो, उत्पादन बढ़े और जनता को उपयोग की वस्तुयें उपलब्ध हों । इसके साथ ही आधारभूत उद्योगों का विकास भी हो ।

(iii) वाणिज्य नीति भी इस प्रकार बनायी जाती है जिससे निर्यात बढ़े और आयात को सीमित करने में मदद मिले ।

(iv) राजकोषीय नीति ऐसी होती है जिससे उत्पादन विपरीत रूप से प्रभावित नहीं होता है ।

10. कीमतों पर नियंत्रण

आर्थिक नीति के द्वारा देश में बढ़ी कीमतों पर नियंत्रण किया जा सकता है । इसका कारण यह है कि इसके अन्तर्गत केन्द्रीय एवं राज्य सरकार द्वारा यह ध्यान रखा जाता है कि अपने संसाधनों एवं कार्यक्रमों का कुशल संचालन तथा प्रबन्ध किया जाये ।

11. विदेशी निजी विनियोजनों में वृद्धि:

भारत में आर्थिक नीतियों के द्वारा विदेशी निजी विनियोजकों में वृद्धि की जा सकती है ।

12. निर्यात में वृद्धि:

आर्थिक नीतियों से देश के निर्यातों में वृद्धि होती है क्योंकि इससे भुगतान असन्तुलन का सामना किया जा सकता है ।

14.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. आर्थिक नीति का अर्थ एवं उद्देश्य बताइये?
2. आर्थिक नीति से क्या तात्पर्य है? इसके विभिन्न उपकरण बताइये ।
3. आर्थिक नीति के विभिन्न संघटकों का वर्णन कीजिए ।
4. "आर्थिक नीति बहु-आयामी नीति है । " इस कथन की व्याख्या कीजिए ।
5. एक देश की आर्थिक नीति का अर्थ बताते हुए उसके महत्व की विवेचना कीजिए ।

14.8 संदर्भ ग्रंथ

- भारत में आर्थिक पर्यावरण : डी. वी. के. वशिष्ठ, डी. पी. सी. भिण्डा, डी. एम. जी. वार्ष्णेय, शम्भू सिंह झाला ।
- आर्थिक नीति एवं विकास : डी. बी. एल. माथुर
- भारत में आर्थिक पर्यावरण. डी. एम. डी. अग्रवाल, डी. ओ पी. गुप्ता
- भारतीय अर्थव्यवस्था : दत्त एवं सुन्दरम
- भारतीय अर्थव्यवस्था. मिश्रा, पूरी
- भारतीय अर्थव्यवस्था : ए. एन. अग्रवाल

इकाई-15: लघु उद्योग

इकाई की रूपरेखा :

15.1 प्रस्तावना
15.2 लघु उद्योगों की आवश्यकता
15.3 परिभाषा द्वारा स्पष्टीकरण
15.4 लघु उद्योगों का निष्पादन
15.5 समस्याएं एवं कमियाँ
15.6 लघु उद्योगों की नई नीति
15.7 मूल्यांकन
15.8 सुझाव
15.9 निष्कर्ष
15.10 अभ्यासार्थ प्रश्न
15.11 संदर्भ ग्रन्थ

15.1 प्रस्तावना

भारतीय आर्थिक विकास में लघु एवं कुटीर पैमाने के उद्योगों ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है । लघु पैमाने के उद्योग और कुटीर उद्योग भारत के विर्निमाण क्षेत्र की संरचना एवं स्वरूप के महत्वपूर्ण भाग है । छोटे पैमाने की औद्योगिक इकाइयाँ वे होती है जो मध्यम स्तर के विनियोग की मात्रा की सहायता से स्थायी पूंजी के रूप में उत्पादन प्रारम्भ करती है । इन इकाइयों मे श्रम शक्ति की मात्रा भी कम होती है और सापेक्षिक रूप से वस्तुओं एवं सेवाओं का कम मात्रा में उत्पादान किया जाता है वे बड़े पैमाने के उद्योगो से पूंजी की मात्रा रोजगार, उत्पादन एवं प्रबन्ध, आगतों एवं निर्गतो के प्रवाह इत्यादि की दृष्टि से भिन्न प्रकार की होती है । ये कुटीर उद्योगों से उत्पादन से यंत्रीकरण की मात्रा मजदूरी पर लगाये गये श्रमिकों एवं परिवारिक श्रमिकों के अनुपात, बाजार के भौगोलिक आकार विनियोजित पूंजी इत्यादि के आधार पर भिन्न होती है ।

लघु उद्योगों का वर्गीकरण तीन प्रकार उद्योगों में किया है । 1. सुश्म उद्योग 2. लघु उद्योग 3. मध्यम उद्योग । मुख्यतया: लघु उद्योगों को इन में विनियोजित राशि के मापदण्डो से वर्गीकरण किया जाता है । निर्माण उपाय के अर्न्तगत एक सुश्म उद्योग, जहाँ प्लाण्ट एवं मशीनरी में निवेश 25 लाख रूपये से अधिक नही होता है एवं लघु उद्योग वह है जहाँ प्लाण्ट एवं मशीनरी में निवेश 25 लाख रूपये से अधिक लेकिन 5 करोड़ रूपये से कम होता है, एवं मध्यम उद्योग वह है जिसमें प्लांट एवं मशीनरी में निवेश पाँच करोड़ रूपये से अधिक लेकिन 10 करोड़ रूपये से कम होता हो ।

सेवा उद्योग के स्वरूप में एक सुश्म उद्योग जहाँ उपकरणों में निवेश 10 लाख रू. से आगे नहीं बढ़ता है और लघु उद्योग, जहाँ उपकरणों में निवेश 10 लाख रूपये से अधिक लेकिन 2 करोड़ रूपये से अधिक नही है एवं मध्यम उद्योग जहाँ उपकरणों में निवेश 2 करोड़ रूपये से अधिक लेकिन 5 करोड़ रूपये से कम न हो ।

15.2 लघु उद्योगों की आवश्यकता

सुश्म, लघु एंव मध्यम उद्योग देश की सम्पूर्ण औद्योगिक अर्थव्यस्था में एक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते है । यह अनुमान किया जाता है कि मूल्य के अर्थ में यह क्षेत्र निमार्ण की दृष्टि से 39% एवं देश के कुल निर्यात के 33% के लिए जिम्मेदार है । इस क्षेत्र का लाभ यह है कि इसकी रोजगार क्षमता न्यूनतम पूंजी लागत पर है । 31 मार्च 2007 की स्थिति के अनुसार यह क्षेत्र 12.84 मिलियन माइक्रो और लघु उपक्रमों के जरिये अनुमानत 31.2 मिलियन व्यक्तियों को रोजगार देता है । इस क्षेत्र में मजदूरों की तीव्रता वृहद् उद्योगों की तुलना में करीब 4 गुना ज्यादा अनुमानित की गई है । लघु उद्योगों की आवश्यकता देश की परम्परागत प्रतिभा व कला की रक्षा हेतु भी आवश्यक है । अन्य महत्वपूर्ण दृष्टिकोण से लघु उद्योग निर्यात संवर्धन व देश को आत्म निर्भरता की और जाने हेतु है लघु उद्योग आयात प्रतिस्थापन में सहायक है । वे निर्यात की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है।

वर्तमान परिपेक्ष्य में लघु उद्योग बड़े पैमाने के उद्योगों की अपेक्षा अधिक निर्यात करते है एवं देश या राष्ट्र के आत्मनिर्भरता में भी लघु उद्योग आवश्यक है ।

15.3 परिभाषा द्वारा स्पष्टीकरण

लघु पैमाने के उद्योगों की अवधारणा में स्वयं कोई वैज्ञानिक परिभाषा अभिव्यक्त नहीं होती है । भाषा की दृष्टि से यह एक आम प्रवृति रही है कि कुटीर, ग्रामीण तथा लघु पैमाने के उद्योगों का आशय एक साथ ही समान रूप से लगाया जाता है जबकि इन दोनों में आधारभूत अन्तर है । कुटीर उद्योग तो किसी एक परिवार के सदस्यों द्वारा पूर्ण या अंशकालिक तौर पर चलाया जाता है इनमें पूंजी निवेश नाम मात्र का होता है । उत्पादन भी प्राय: हाथ द्वारा किया जाता है । परम्परागत ढंग से चलने वाली उत्पादन प्रक्रिया में वेतन भोगी श्रमिक नही होते हैं ।

लघु उद्योगों में आधुनिक ढंग से उत्पादन कार्य होता है । सवेतन श्रमिकों की प्रधानता रहती है तथा पूंजी निवेश भी होता है । कतिपय कुटीर उद्योग ऐसे भी है, जो उत्कृष्ट कलात्मकता के कारण निर्यात भी करते है । अत: उन्हे लघु क्षेत्र में रखा गया था, जिससे उन्हें भी सभी सुविधाएं प्राप्त होती रहे ।

10 हजार से कम जनसंख्या वाले ग्रामीण क्षेत्र में स्थापित तथा भूमि, भवन, मशीनरी आदि में प्रति कारीगर या कार्यकर्ता 15 हजार रूपये से कम स्थिर पूंजी निवेश वाले उद्योग ग्रामोद्योग के अन्तर्गत आते है । राज्य ग्रामोद्योग बोर्ड तथा ग्रामोद्योग उद्योग इन इकाइयों की स्थापना संचालन आदि में तकनीकी एवं आर्थिक सहायता प्रदान करते है ।

लघु उद्योगों के उद्देश्य:

1. लघु उद्योगों का मुख्य उद्देश्य रोजगार के अवसरों में वृद्धि करते हुए बेरोजगारी एवं अर्द्ध बेरोजगारी की समस्या का समाधान करना है क्योंकि लघु उद्यमों के श्रम प्रधान होने के कारण उनमें विनियुक्त पूंजी की इकाई अपेक्षाकृत अधिक रोजगार कायम रखती है ।
2. दूसरा मुख्य उद्देश्य आर्थिक शक्ति का समान वितरण करना है कुटीर व लघु उद्योगों से आर्थिक सत्ता का विक्रेन्द्रीयकरण होता है ।

3. लघु उद्योगों के माध्यम से औद्योगिक विक्रेन्द्रीयकरण सम्भव है । इससे देश का आर्थिक विकास प्रौद्योगिक सन्तुलन एवं क्षेत्रीय प्रौद्योगिक विषमता को कम करते हुए सम्भव होता है ।
4. श्रम प्रधान तकनीक के कारण श्रमिकों की बहुतायत रहती है । अत: आवश्यक है कि वे औद्योगिक शांति की स्थापना करें ।
5. लघु उद्योगों के माध्यम से देश की सभ्यता एवं संस्कृति सुरक्षित रहती है । अधिकाशत: लघु उद्योगों द्वारा कलात्मक एवं परम्परागत वस्तुओं का निमार्ण किया जाता है एवं अधिकांशत: ये उद्योग श्रम प्रधान तकनीक पर आधारित होते है । जिससे उद्योगों में पारस्परिक सदभावना सहकारिता, समानता एवं मातृत्व की भावना को बल मिलता है ।
6. लघु उद्योगों का मुख्य उद्देश्य है कि वे प्राकृतिक साधानों का अनुकूलतम उपयोग करें ।
7. मानवीय मूल्यों की दृष्टि से "सादा जीवन उच्च विचार" की भावना का सृजन करें ।
8. व्यापार संतुलन एवं भुगतान संतुलन को अनुकूल बनाने हेतु आवश्यक है कि ये अत्याधिक विदेशी मुद्रा का अर्जन करें ।
9. आम जनता को श्रेष्ठ वस्तुएं उपलब्ध कराना इनका मुख्य उद्देश्य है ।
10. भारतीय अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हुए इनका उद्देश्य अधिक से अधिक श्रेष्ठ उत्पादन करना है ।

भारतीय अर्थव्यवस्था में एक अहम भूमिका का निर्वाह करते हुए, यह उद्योग बेरोजगारी की समस्या के समाधान के रूप में उभरे है अत: आवश्यकता इस बात की है इन को पर्याप्त आर्थिक व तकनीकी सहायता दी जाए, जिससे ये अपने उद्देश्यों को पूर्ण करने में सक्षम हो सकें ।

लघु उद्योगों के विकास की दिशा में सरकार के कार्यक्रम :

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात के दशकों में भारत सरकार ने कई नितीगत एवं अन्य प्रकार के उपाय किये है, जो निम्न प्रकार से हैं -

1. सरकार द्वारा कई संस्थानों की स्थापना की गई है इन संस्थाओं द्वारा इनकी विविध आवश्यकताओं की पूर्ति एवं समस्याओं को हल करने में सहायता होती है । उद्योग मंत्रालय के अधीन "लघु उद्योग विकास निगम" (S.I.D.C) नामक संस्था की स्थापना की गई है । इसके अर्न्तगत सम्पूर्ण देश में लघु उद्योग सेवा संस्थाओं की शाखाएँ तथा विस्तार क्रेन्द्र खोले गये है जिनसे आर्थिक, प्रबन्धकीय एवं तकनीकी सेवाएँ प्रदान की जाती है तथा कर्मचारियों के प्रशिक्षण एवं इनके उत्पादों की विपणन सुविधा भी प्रदान होती है । दूसरी केन्द्रीय संस्था लघु उद्योग निगम को स्थापित किया गया है जो लघु औद्योगिक व्यवस्था इकाईयों को क्रय विधि के अनुसार मशीनों तथा उपक्रमों की व्यवस्था, कच्चे माल प्राप्त करने एवं माल की बिक्री में सहायतार्थ है । परम्परागत उद्योगों में विकास के लिए भारतीय स्तर पर हथकरधा बोर्ड, खादी एवं ग्रामीण उद्योग आयोग, क्रेन्द्रीय हथकरधा एंव हस्तशिल्प निगम, अखिल भारतीय हस्तशिल्प निगम, हथकरधा बोर्ड आदि निगमों की स्थापना की ।
2. लघु उद्योगों हेतु अब अत्याधिक मात्रा में वस्तुओं के उत्पादन हेतु औद्योगिक लाइसेंस प्राप्त करने की आवश्यकता नही है ।

3. अनेक मदों को लघु उद्योगों हेतु आरक्षित किया गया है । उदाहरण के लिए 836 मदों को दिसम्बर 1996 के अन्त तक आरक्षित किया जा चुका था । इसमें से 23 मदों को 1997-98 तथा 1998-99 में अनारक्षित किया जा चुका है । 2003-04 में अन्य 75 मदों को गैर आरक्षण में लाया गया। वास्तव में नवी योजना लघु इकाइयों के लिए आरक्षित मदों के गैर आरक्षण की कल्पना करती थी । छोटी इकाइयों को उनकी प्रौद्योगिक को सुधारने में, उनके उत्पादों की गुणवता सुधारने में तथा उनके निर्यातों को बल देने में सहायता करने की दृष्टि से आवश्यक हो जाता है ।
4. लघु उद्योगों द्वारा उत्पादित 410 वस्तुओं को पूर्ण रूप से सरकार द्वारा खरीदने का प्रावधान किया गया है।
5. सम्पूर्ण भारत में बहु त बड़ी संख्या में औद्योगिक बस्तियों की स्थापना की गई है, जहां फैक्ट्रियाँ बनी हु ई है और भवन भी बने हु ए है वे किराये पर प्रदान किये जाते है और अन्य प्रकार की संरचनात्मक सुविधाएँ भी लघु उद्योगों की इकाइयों की स्थापना के लिए की गई है ।
6. लगभग 430 जिलों में जिला उद्योग क्रेन्द्र (डी आई सी) की स्थापना की गई जिसके अर्न्तगत एक ही क्रेन्द्र से की गई सेवाएं तथा सुविधाएँ जैसे - साख, मार्ग-दर्शन, कच्चा माल, प्रशिक्षण, विपणन इत्यादि सुविधायें लघु एवं ग्रामीण उद्योगों को उपलब्ध हो जाती है ।
7. लघु एवं ग्रामीण उद्योगों को राज्य स्तर पर अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन वित्त सहयोग विशिष्ट वित्तिय संस्थाओं द्वारा प्रदान किया जाता है । इनमें सार्वजनिक बैंको और अन्य अनुसूचित बैकों द्वारा रियायती ब्याज दर पर ऋण प्रदान करने की सुविधा है ।
8. एक व्यापक स्तर के राजकोषीय एंव अन्य प्रकार की रियायतें भी लघु उद्योगों को प्रदान की जाती है । जैसे - उत्पादन कर से छूट रियायती उत्पादन शुल्क दरें । आदि पिछड़े क्षेत्रों में पूंजी अनुदान, निश्चित वर्षो के लिए कर मे छूट, नई औद्योगिक इकाईयों के लिए विनियोग भत्ता सीमित एवं आवश्यक स्वदेशी आयतित सामग्री का आवंटन आदि । इनकी सहायता प्राप्त होने से लघु उद्योगों को प्रतियोगी एवं आर्थिक सक्षमता की प्राप्ति में सहायता मिलती है ।
9. लघु क्षेत्र में वित्तीय सहायता के प्रावधनों को और मजबूत बनाने के लिए कई योजनाएं आरम्भ की गई है जैसे - लघु उद्योग विकास कोष 1986, राष्ट्रीय अंश कोष 1987, एक खिड़की योजना 1981 भारत का "लघु उद्योग विकास बैंक।" (SIDBI) स्थापित किया गया है । SIDBI के पास दो कोष है 1. लघु उद्योग विकास कोष और 2. लघु उद्योग विकास सहायता कोष ।
10. नायक समिति की सिफारिशों पर रिजर्व बैंक के उपायों के विशेष कार्यक्रम की घोषणा की ताकि लघु श्रेत्र के लिए पर्याप्त समयबद्ध साख व्यवस्था हो सके जो निम्न है
    1. बैंक ग्रामीण उद्योगों, लघु उद्योगों तथा अन्य लघु आकार की इकाइयों को इसी क्रम में प्राथमिकता दे जब वे लघु स्तर के क्षेत्र की साख आवश्यकताओं से निपट रहे हो ।
    2. बैंक साख प्रवाह की स्थापना करें ।
    3. प्रत्येक बैंक के भीतर प्रभावी शिकायत निदान तंत्र की स्थापना हो ।
    4. लघु इकाईयों की साख सुविधाओं से निपटने के लिए SIDBI की एकाकी निकासी योजना का बैंक पालन करे ।

11. वर्तमान में लघु स्तरीय उद्योगों की स्थिति मजबूत करने के उद्देश्य से बहु त से रियायतों की घोषणा की गई इनमें से प्रमुख है :-

    i. ग्रामीण तथा पिछड़े क्षेत्रों में मूलभूत सुविधाओं को मजबूत करने हेतु अनेक विकास कार्यक्रम चलाए गए है ।
    ii. लघु स्तरीय उद्योगों हेतु वस्तुओं की गुणवता सुधारने के लिए गुणवता प्रमाण-पत्र स्कीम चलाई गई है ।
    iii. लघुस्तरीय उद्योगों को साख सुविधा प्रदान करने के लिए 7 बिन्दु कार्य योजना बनाई गई है ।
    iv. उद्योगों का विस्तार, आधुनिकीकरण तथा तकनीकी अपग्रेडेशन हेतु राष्ट्रीय इक्विटी योजना के क्षेत्र को बढाया गया है ।
    v. तकनीकी विकास तथा आधुनिकीकरण फंड स्कीम चालू की है ।

12. 1999-2000 में एक नई क्रेडिट योजना लघु आकार की औद्योगिक इकाइयों को निवेश क्रेडिट के प्रवाह को सुधारने की घोषणा की गई ।
13. ग्रामीण औद्योगीकरण हेतु राष्ट्रीय कार्यक्रम की घोषणा ।
14. विश्व व्यापार संगठन के सम्बन्ध में सूचनाओं के आदान-प्रदान हेतु एक कक्ष की स्थापना ।
15. एक व्यापक नीतिगत पैकेज के अर्न्तगत उत्पाद शुल्क हेतु विमुक्ति सीमा को बढ़ाया गया, परीक्षण प्रयोगशालाओं को विकसित किया, संश्लिष्ट ऋणों के लिए सीमाओं को बढ़ाया गया, समेकित ढाँचागत विकास योजना के कवरेज को बढ़ाया, बाजार विकास सहायता योजना के नाम से लघु आकार क्षेत्र के लिए एकाकी तौर पर शुरू किया ।
16. 2002 मे सामान्य उत्पाद शुल्क रियायतें तथा आयकर विभक्ति योजना को और अधिक इकाइयों तक बढ़ाया । लघु आकार की औद्योगिक इकाईयों के लिए ऋण देने के रूप में सर्वोतम निष्पादन के लिए वाणिज्यिक बैंको के लिए राष्ट्रीय पुरस्कार की घोषणा की ।

लघु एवं मध्यम उपक्रमों के लिए साख नीति सम्बन्धी पैकेज की घोषणा

लघु एवं मध्यम उपक्रमों को साख प्रवाह में तेजी लाने के उद्देश्य से सारव नीतिगत पैकेज की घोषणा क्रेन्द्र सरकार ने 10 अगस्त 2005 को की । इसमें पहली बार मध्यम उपक्रमों को औपचारिक रूप से परिभाषित किया गया है । सरकार के इस नीतिगत दस्तावेज में मध्यम उपक्रम उसे कहा गया है जिसमें प्लाण्ट एवं मशीनरी में निवेश लघु उपक्रमों के लिए निर्धारित सीमा से अधिक है । किन्तु यह 10 करोड़ रूपये से अधिक न हो, इसके लिए साख नीति सम्बन्धी पैकेज की घोषणा करते हु ए वित्त मंत्री पी. चिदम्बरम् ने बताया कि लघु एवं मध्यम उपक्रमों के साख प्रवाह में प्रति वर्ष 20% की वृद्धि करने को कहा है इससे इस क्षेत्र में साख का प्रवाह 2004-05 में 67000 करोड़ रूपये दुगना हो 2009-10 मे 1,35,000 करोड़ रूपये हो सकेगा ।

उपरोक्त के अतिरिक्त विभिन्न प्रविधिगत सरलीकरण नये पंजीकरण फ़ार्मों सहित लागू हो चुका है ।

15.4 छोटे एवं लघु पैमाने के उद्योगों का निष्पादन:

लघु उद्योग क्षेत्र विगत लम्बे समय से देश की आर्थिक प्रगति में सकारात्मक योगदान दे रहा है दसवीं योजना में लघु क्षेत्र के लिए 12% वार्षिक दर और 44 लाख अतिरिक्त रोजगार अवसर जुटाने का लक्ष्य निर्धारित किया गया था । सरकार ने लघु उद्योग क्षेत्र की वित्त एवं रूग्णता सम्बन्धी समस्याओं के मूल्यांकन के लिए नायक समिति का गठन किया था, जिसने सितम्बर 1992 में अपनी रिर्पोट प्रस्तुत की । वर्ष 2004-05 के दौरान लघु उद्योग क्षेत्र की विकास दर 1993-94 की कीमतों पर 10% थी, जो कुल औद्योगिक क्षेत्र की 8.4% से अधिक थी ।

देश मे इस क्षेत्र का विकास तीव्र गति से हो रहा है जिसके चलते वित्तीय वर्ष 2006-07 में इस क्षेत्र में इकाइयों की संख्या, इनके सकल उत्पादन व जी डी पी में इनके योगदान में अत्याधिक वृद्धि हुई है । 31 मार्च 2007 की स्थिति में अनुसार देश में लघु औद्योगिक इकाइयों की कुल संख्या 1.29 करोड़ थी । 2006-07 मे इनका कुल उत्पादन (चालू मूल्यों पर) 4,27,296 करोड़ रूपये से बढ़कर 4,97,892 करोड़ रूपये हो गया है । इसके चलते देश के जी डी पी में लघु उद्योग क्षेत्र का योगदान 2005-06 में 6.8% से बढ़कर 2006-07 में 7.25% हो गया । देश के विनिर्माण क्षेत्र मे यह योगदान 39% है । 2006-07 में देश में लघु उद्योग क्षेत्र में 3.12 करोड़ लोगों को रोजगार प्राप्त था । 2006-07 में इस क्षेत्र का निर्यात कुल निर्यात का 33% रहा था । वर्तमान में, सरकार द्वारा क्षेत्र के पुनरूथान के लिए बड़ी पहल की गई उनमें निम्न शामिल है:

1. माइक्रो लघु और मध्यम उद्यम विकास अधिनियम 2006 का क्रियानवयन ।
2. “माइक्रो और लघु उद्योगो के सवंर्घन के लिए एक पैकेज" की घोषणा फरवरी 2007 में की गई। इस पैकेज में ऋण, राजकोषीय सहायता, समूह आधारित विकास, अवसंरचना, प्रौद्योगिकी और विपणन की समस्याओं में निदान के उपाय शामिल है ।
3. ऋण गारण्टी योजना को और अधिक आकर्षक बनाने के लिए निम्नलिखित परिवर्तन किये गए है।
   - (क) अर्द्धक ऋण सीमा को 25 लाख रूपये से बढ़ाकर 50 लाख रूपये करना ।
   - (ख) गारण्टी कवर का विस्तार 75% से बढ़ाकर 8०% करना ।
   - (ग) 5 लाख रूपये तक के ऋण वाले माइक्रो उद्यम ।
   - (घ) महिलाओं के स्वामित्वाधीन या संचालनाधीन माइक्रो और लघु उद्योग में वृद्धि करना।
   - (ङ) पूर्वो तर क्षेत्र मे सभी ऋणों के लिए एक बारगी गांरण्टी शुल्क कम करके 1.5% से 0.75% करना ।
4. विशिष्ट रूप से माइक्रो और लघु उद्यमों द्वारा विर्निमाण के लिए आरक्षित मदों की सूची से उत्पादो को चरणबद्ध तरीके से हटाया जाना चाहिये ।

13 मार्च 2007 को 125 मदों को आरक्षित किया गया है । जिसमें एकमात्र रूप से माइक्रो और लघु उद्यम क्षेत्र में विर्निमाण के आरक्षित मदों की संख्या घटकर 114 रह गई इसके अतिरिक्त 79 मदों को 5 फरवरी 2008 की एक अधिसूचना के तहत अनरिक्षत किया गया है । छोटे एवं लघु उद्योगों का निष्पादन निम्न तालिका द्वारा देख सकते है :-

छोटे एवं लघु पैमाने के उद्योगों का निष्पादन

इकाइयों की संख्या (लाख में)				उत्पादन	रोजगार	निर्यात
वर्ष	पंजीकृत	अपंजीकृत	कुल	करोड़ रु. में (2001-02 के मूल्यों पर)	लाख रु में	करोड़ रु. में
2002-03	16.03	93.49	109.49(4.1)	3,06,771(8.7)	236.68(4.5)	86013(20.7)
2003-04	17.12	96.83	113.95(4.1)	3,36,344(9.6)	275.30(4.4)	97644(13.5)
2004-05	18.24	100.35	118.59(4.1)	3,72,938(10.9)	287.55(4.5)	12441(27.4)
2005-06	19.30	104.12	123.42(4.1)	4,18,884(12.3)	299.85(4.3)	150242(20.8)
2006-07	20.32	108.12	128.44(4.1)	4,17,663(12.6)	312.52(4.2)	N.A

स्त्रोत: आर्थिक समीक्षा 2007-08

टिप्पणी: कोष्ठकों में ऑकडे पिछले वर्ष की तुलना में वृद्धि दर्शाते है ।

15.5 समस्याएँ एवं कमियाँ

यद्यपि छोटे पैमाने एवं कुटीर उद्योगों की उल्लेखनीय वृद्धि, संख्या, उत्पादन, रोजगार, निर्यात, क्षेत्रीय विकास इत्यादि की दृष्टि से उल्लेखनीय रही है, परन्तु इस क्षेत्र को कई प्रकार की अकुशलताएँ और समस्याएँ भी घेरे हुए है जो निम्नलिखित है -

1. छोटे पैमाने के उद्योगों की इकाइयाँ औद्योगिक राज्यों में अधिक केन्द्रित हैं न कि पिछड़े हुए राज्यों और छोटे-छोटे कस्बों में । यह स्वाभाविक भी है क्योंकि बहुत से लघु उद्योगों की इकाइयाँ बड़े पैमाने की इकाइयों पर आधारित है अथवा अपने आवश्यक सामानों के लिए बड़े शहरों पर आश्रित है । उनका स्थान विकसित राज्यों जैसे महाराष्ट्र, गुजरात, तमिलनाडु, पंजाब इत्यादि राज्यों में उनके हितों की दृष्टि से लाभदायक है जबकि यह पूरे देश के विकेन्द्रित एवं संतुलित विकास के लिए उपयुक्त नहीं है, न ही सभी राज्यों, जिलों एंव कस्बों के लिए यह स्थिति लाभदायक सिद्ध हो सकती है । इस प्रकार छोटे पैमाने की इकाइयों ने महानगरों में बढ़ती हुई भीड़भाड़ को और बढ़ाया है । आधुनिक छोटे पैमाने के उद्योग समुचित रूप से विकसित राज्यों एवं शहरों में केन्द्रित है जबकि परम्परागत छोटे पैमाने के, ग्रामीण एवं कुटीर उद्योग जो छोटे कस्बों तथा गाँवों से स्थित है, उनका विकास तेजी से नही हो सका है, उनकी ओर इतना ध्यान नहीं दिया जाता है, और न जन-समर्थन, और न साधनों का आबंटन ही हो पाता है जब ऐसे उद्योग दरिद्रता निवारण, बेरोजगारी दूर करने, ग्रामीण एवं नगरीय जनसंख्या के प्रतिकूल प्रवजन को रोकने में अधिक योगदान प्रदान करने की स्थिति में है ।
2. ऐसा कहा जाता है कि छोटे पैमाने की इकाइयों में से बहुतसी इकाईयॉ झूठी तथा नकली हैं । उनका अस्तित्व केवल नाममात्र का है और वे केवल सरकार के रजिस्टर में ही अंकित हैं अर्थात उनका वास्तविक अस्तित्व कहीं पर भी नहीं है । चालाक व्यक्तियों के लिये छोटी इकाइयों की स्थापना करना बहुत आसान है (बहुत कम प्रतिबंधों एवं आवश्यकताओं के कारण) और रियायती सुविधाओं एवं आयात लाइसेंसो, दुर्लभ कच्चे माल तथा वित्त सुविधाओं को प्राप्त करके उनका उद्देश्य सबसे अधिक कीमत देने वाले क्रेता को उपलब्ध करा देना ही होता

है । कहते हैं कि यह बुराई सम्पूर्ण लघु उद्योग क्षेत्र में व्यापक रूप में फैली हुई है । इसके विपरीत, सच्ची तथा वास्तविक इकाइयों को इससे अधिकतम हानि होती है क्योंकि जाली इकाइयाँ अधिकतम लाभों को हथिया लेती हैं ।

3. यह कहा जाता है कि लघु पैमाने के उद्योगों एवं कुटीर उद्योगों के श्रमिक एवं कर्मचारी संगठित उद्योगों की तुलना में कम संगठित है इसलिये इन उद्योगों के मालिकों द्वारा इनका अधिक शोषण किया जाता है । बड़े उद्योगों की तुलना में लघु उद्योगों तथा कुटीर उद्योगों के वेतन एवं मजदूरी का स्तर लगभग 50 प्रतिशत ही है । बड़े उद्योगों की तुलना में लघु उद्योगों के कर्मचारी एवं मजदूर अधिक घंटो तक एवं प्रतिकूल दशाओं में काम करते हैं । इस प्रकार की दशाओं से श्रमिकों और मालिकों के बीच कटु औद्योगिक सम्बन्धों को प्रोत्साहन मिलता है ।

4. छोटे पैमाने की औद्योगिक इकाइयाँ बनाम बड़े पैमाने के उद्योगों में कुशलता के स्तर के बारे में मतभेद पाया जाता है । कुछ अध्ययनों जैसे - लाइडल एवं धर ने यह पाया है कि छोटे उद्योग पुंजी एवं श्रम की उत्पादकता की तुलना की दृष्टि से बड़े उद्योगों की उत्पादन की अपेक्षा कम कुशल होते है, जबकि दूसरे अध्ययनों में इससे विपरीत परिणाम पाये गये है ।

5. लघु उद्योगों के मालिकों को उद्यमता की सामर्थ्य के विषय में भी संदेह प्रकट किये जाते है । छोटे उद्योगों के मालिक सरकार द्वारा प्रदान की जाने वाली उदार साख व अन्य सुविधाओं के उपयोग के बारे में तो अधिक उत्सुक पाये जाते है किन्तु आत्म-विश्वास और अपनी आरक्षित राशियों को बढ़ाने में कम रूचि रखते है । ऐसा प्रतीत होता है कि सरकार के समर्थन, संरक्षण एवं सुरक्षा के अभाव में लघु उद्योगों का काफी कम विकास हुआ है ।

6. जब हम लघु उद्योगों एवं बड़े उद्योगों में पाई जाने वाली रूग्णता एवं विफलताओ की तुलना करते है तो उपरोक्त निष्कर्षों को और भी बल एवं समर्थन मिल जाता है । बड़े उद्योगों की अपेक्षा लघु उद्योगों की रूग्णता अधिक पुरानी एवं जीर्ण प्रकार की पाई जाती है । मार्च 2001 के अन्त तक लघु उद्योगों की 2.5 लाख इकाइयाँ रूग्ण बताई गई, जिनमें बैंकों के लगभग 4,506 करोड़ रूपये फँसे हुए थे । छोटी इकाइयों की रूग्णता प्रतिरोधक सामर्थ कम होती है । बहुत अधिक लघु औद्योगिक इकाइयों का औसत जीवनकाल मुश्किल से दो वर्ष का होता है ।

7. बड़े पैमाने के उद्योगों की भाँति, लघु उद्योगों की इकाइयों में भी उत्पादन क्षमता के उपयोग का स्तर कम होकर, कुछ इकाइयों में 50 प्रतिशत के नीचे बिन्दु तक पहुँच गया है । प्रवेश की आसान दशाओं के कारण पूर्ति बिन्दु, शीघ्र पहुँचा दिया जाता है और क्रेता बाजार दशाओं में, ये इकाइयाँ अस्वस्थ प्रतियोगिता की क्रियाओं में सम्मिलित की जाती है ।

8. लघु पैमाने की इकाइयों में व्यवहार की अपरिपक्य दशाएँ भी देखी जाती है । कई प्रकार के फैक्ट्री और श्रम नियमों के पालन से बचने के लिए उद्योग इकाइयाँ मजदूरों के स्थान पर मशीनों का उपयोग करना शुरू कर देती है । अत: पूँजी गहन बन जाती है और इस प्रकार अपने पक्ष का एक प्रबल आधार श्रम गहनता को गवा देती है । इसी प्रकार कुछ लघु उद्योग की इकाइयॉ जब सरकार द्वारा दी गई परिभाषा के बराबर क्षमता प्राप्त कर लेती है, तो अपने

आकार को बढ़ाने का विचार त्याग देती है, क्योंकि उस समय उनके मन में सरकार द्वारा दी जाने वाली सुविधाआ, छूटों, समर्थन एवं सरंक्षण के लाभ उठाने की बात अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है ।

9. यह भी कहा जाता है कि कुछ बड़े औद्योगिक घरानों ने अपनी गतिविधियों को लघु उद्योग क्षेत्र में विस्तृत करना शुरू किया है क्योंकि इनमें सरकार के द्वारा आकर्षक रियायतें एंव छूटे प्रदान की जाती है । यदि यह सत्य है तो बड़े पैमाने तथा छोटे पैमाने के स्वामित्व के ढाँचे की स्थिति भ्रमपूर्ण बन जाती है ।

10. केन्द्र सरकार एवं राज्य सरकारों द्वारा अनेक प्रेरणादायक एवं संरक्षात्मक उपायों के बावजूद लघु पैमाने एवं कुटीर उद्योगों की कई इकाइयों को कच्चे माल, पर्याप्त साख, तकनीकी सहायता, बिक्री सुविधाओं आदि की कठिनइयाँ झेलनी पड़ती हैं ।

11. बहुतसी छोटे पैमाने की इकाइयों द्वारा उत्पादित वस्तुओं की किस्में वांछित निर्धारित स्तर की नहीं होती हैं । इसके कई कारण है। छोटे उद्योगों में जटिल प्रक्रियाओं के उत्पादन की क्षमता की कमी है । इसके अतिरिक्त, कई वस्तुओं के लिए अभी तक प्रमाणित स्तर का निर्णय भी नही हो पाया है । अभी लघु उद्योगों के पदार्थो के उपयोग करने वालों में किस्म के प्रति जागरूकता भी उत्पन्न नही हुई है । अनेक लघु उद्योग इकाइयों में किस्म नियंत्रण की कोई उचित व्यवस्था भी नहीं हो पाई है ।

15.6 छोटे पैमाने के उद्योग की नई नीति, 1991

सरकार द्वारा सम्मिलित रूप से नीतिगत उपायों के प्रस्ताव लघु, अति लघु, हथकरघा, हस्त शिल्प एवं ग्रामीण उद्योगों के लिए नीति के रूप में 1991 व में प्रस्तुत किये गये, जिनका उद्देश्य इस क्षेत्र में अधिक शक्ति, विकास एवं प्रोत्साहन प्रदान करना था । इस नीति की मुख्य विशेषताऐ निम्न है -

1. लघु उद्योग क्षेत्र में निवेश की सीमा नई नीति 1991 मे परिवर्तित नहीं की गई है । लेकिन बाद में इनको 1 करोड़ तक बढ़ा दिया गया है तथा बहुत छोटी इकाईयों के लिए यह निवेश सीमा 25 लाख तक कर दी गई है।

2. इस नीति की प्रमुख विशेषता लघु क्षेत्र के लिए चार सूत्रीय वित्तीय समर्थन की बनाई गई। नीति मे यह आश्वासन दिया गया है कि लघु लद्योगों की साख की माँग को पूरी तरह से पूर्ण किया जाएगा तथा इसकी क्रियाओं के संचालन के लिए एक संस्थान बनाया जाएगा, तथा अन्य औद्योगिक प्रतिष्ठानों को लघु इकाइयों की अंश पूँजी में 24 प्रतिशत भाग लेने की अनुमति दी गई है । इसका उद्देश्य लघु इकाइयों को पूँजी बाजार से सहयोग प्राप्त करने का अवसर दिलवाना है। जिससे आधुनिकीकरण तकनीकी सुधार सहायक इकाइयो की स्थापना और उप-ठेकों के लाभ भी प्राप्त हो सकेगे ।

   यह भी निश्चय किया गया कि राष्ट्रीय अंश पूएजी कोष योजना का विस्तार करके 10 लाख रूपये तक का अंश पूँजी सहयोग (जो 15% तक हो सकेगा, दिलाया जाये) एकल खिड़की योजना (एक ही केन्द्र के अन्तर्गत) का भी विस्तार किया गया है । इसके अतिरिक्त एक समिति साझेदारी अधिनियम को बनाना विचाराधीन है, जिससे क्षेत्र के लिए जोखिम पूँजी की पूर्ति

बढ़ाई जा सके । प्रस्तावित अधिनियम नये तथा गैर-सक्रिय साझेदारी, उद्यमकर्त्ताओं को जोखिम उनके द्वारा विनियोजित पूँजी तक ही सीमित होगा ।

भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक माध्यम से फैक्ट्रिग सेवाएँ चालू कराई जायेगी और पूरे देश मे ऐसी सेवाओं का जाल बिछाया जाएगा, जिसे व्यापारिक बैंको के माध्यामों से लागू किया जाएगा । इससे बड़ी इकाइयों द्वारा छोटी इकाइयो को भुगतान मे होने वाले विलम्ब की समस्या का समाधान निकाला जा सकेगा । इसके अलावा, लघु इकाइयों को तुरन्त भुगतान कराने के सम्बन्ध मे भी उचित कानून बनाए जायेगे ।

3. टाइनी क्षेत्र को सरकारी खरीद के कार्यक्रमों में ऊँची प्राथमिकता दी जाएगी । यद्यपि स्पष्ट तो नही किया गया है, किन्तु लगता है कि टाइनी क्षेत्र को श्रम अधिनियम के कुछ प्रावधानों के विषय मे अधिक उदारता प्रदान की जाएगी । टाइनी क्षेत्रों की लुमइ या शक्ति जैसे साधनों के आबंटन में अतिरिक्त समर्थन प्रदान किया जाएगा और निरन्तर रूप में तकनीकी सुधार के अवसर दिये जायेगे तथा संस्थागत वित्त के स्रोतों तक इस क्षेत्र की पहुँच को सरल बनाया जाएगा ।
4. नीति के अन्तर्गत छोटे पैमाने और टाइनी क्षेत्रों के उत्पादों की बिक्री प्रोत्साहन संघ के रूप मे सहकारी लघु उद्योग निगम (एन.एस.आई.सी.) राज्य लघु उद्योग विकास निगमों के साथ मिलकर साधारण उपभोग की वस्तुओं की बिक्री पर ध्यान केन्द्रित करेगा ।
5. लघु व टाइनी इकाइयों को स्वदेशी कच्चे माल के आबंटन में प्राथमिकता दी जाएगी । लघु क्षेत्र और विशेषकर टाइनी क्षेत्र को स्वदेशी व आयातित कच्चे माल का आबंटन सुनिश्चित किया जाएगा । नीति इस प्रकार बनाई जाएगी जिससे नई इकाइयों का प्रवेश कार्य हतोत्साहित न हो ।
6. ग्रामीण एवं पिछड़े क्षेत्रों में उद्योगों की स्थापना तथा उद्योगों एवं कृषि क्षेत्र में शक्तिशाली समन्वय स्थापित करने हेतु लघु उद्योगों की संरचना के विकास की एक नई योजना प्रस्तावित है, जिसमें राज्य सरकारों एवं वित्तीय संस्थाओं की सक्रिय भागीदारी रहेगी ।
7. हथकरघा एवं हस्तकला क्षेत्र के उत्पादों की किस्म सुधार और विपणन व्यवस्था पर बल दिया जाएगा और इसमें केवल रियायतों तथा अनुदानों के स्थान पर उपभोक्ता की पसंदगी एवं रूचियों का ध्यान रखा जाएगा । इस नीति में यह वादा किया गया है कि शोध एवं अनुसंधान द्वारा साख के प्रवाह मे वृद्धि की जायेगी ।
8. लघु उद्योग विकास संगठन को एक संस्था के रूप मे चुना गया है जो लघु उद्योग के उत्पादों के निर्यात प्रोत्साहन का कार्यभार संभालेगा और लघु उद्योग विकास संगठन के अन्तर्गत निर्यात विकास केन्द्र की स्थापना की जायेगी जो अपने क्षेत्रीय केन्द्रों की सहायता से लघु क्षेत्र के निर्यात कार्यक्रमों के विकास में सहायता पहुँचाते रहेंगे ।

15.7 मूल्यांकन

छोटे पैमाने के उत्पादन की मूलभूत कमजोरी उसके छोटे आकार के कारण उत्पन्न होती है जिसके कारण वे वृहद् पैमाने की इकाइयों का पूरा लाभ नहीं उठा पाती है । इस प्रकार वे बड़े पैमाने की इकाइयों की तुलना में कम लागत मितव्ययी होती है ।

नीति में समयबद्ध साख पर बल दिया गया है न सस्ते वित्त पर, इसी प्रकार छोटे उद्योगो के लिए प्रोत्साहन की सामान्य गातिविधियो के स्थान पर लक्ष्य प्रेरित योजनाओं पर बल दिया गया है । ये महत्वपूर्ण नीतिगत परिवर्तन है ।

टाइनी क्षेत्र को जो विशेष महत्व दिया गया है वह स्वागत योग्य है क्योंकि अब तक छोटे पैमाने और आधुनिक इकाइयों को ही सरकार द्वारा प्रदत्त सुविधाओं का लाभ मिलता रहा हैं।

इस नीति में अन्य औद्योगिक इकाइयों को छोटे पैमाने की इकाइयों के क्षेत्र में 24% अंश पूँजी से अधिक योगदान का अवसर नही दिया जाएगा । यह प्रावधान बड़े पैमाने तथा छोटे पैमाने दोनो प्रकार की इकाइयों के लिए लाभदायक होना चाहिए । और इससे लघु उद्योगों की कार्यशील पूँजी एवं किस्म विषयक समस्याओं को हल करने में सुविधा होगी । लघु इकाइयों को अंश पूँजी के सम्पूर्ण कोष के प्रबन्ध करने का भार उठाने की आवश्यकता भी नही होगी ।

सीमित साझेदारी का विचार भी स्वागत योग्य है । यह अंश-पूँजी को आकर्षित करेगा । इसमें विशेष रूप से मित्रों एवं उद्यमियों के सम्बन्धियों का सहयोग मिलेगा जो अपने स्वजाति और पारिवारिक लोगों की सहायता करना चाहते थे किन्तु असीमित दायित्व के भय से वे ऐसा नही करते थे । दूसरी ओर, छोटी इकाइयाँ जिनके पास कोषों की तो कमी है किन्तु जो निर्णय करने के अधिकार का विभाजन नही करना चाहते थे । वे ऐसे भागीदारों द्वारा जोखिम पूँजी सहयोग का स्वागत करेंगे ।

फिर भी इस नीति को आलोचना से मुक्त नीति नही कहा जा सकता है । इसकी निम्न आधारों पर आलोचना की जाती है

अंश-पूँजी सहयोग योजना छोटी इकाइयों के अप्रत्यक्ष स्वामित्व की प्रणाली को वैधता प्रदान करती है, एवं बड़े निगमों का उनका स्वामित्व अधिकार प्राप्त करवा देती है । बहुत-सी बड़ी कम्पनियाँ कुछ छोटे पैमाने की इकाइयों का स्वामित्व अपने हाथों मे लेने का प्रयत्न करती है कि नई नीति इस प्रवृति को प्रोत्साहन प्रदान कर रही है ।

नई नीति छोटी इकाइयों को समय पर साख पूर्ति पर बल देती है किन्तु यह स्पष्ट नहीं है कि यह उद्देश्य किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है । एक विशेष निर्देशन कक्ष की स्थापना करके उसे व्यापारिक बैंको को अतिरिक्त साख पूर्ति के अधिकार नहीं होने से यह नीति किस प्रकार उपयोगी सिद्ध होगी ।

यह नीति आर्थिक दृष्टि से अक्षम एवं तकनीकी दृष्टि से जर्जर लघु उद्योगों के बारे में मौन है । इसमें अभी भी कष्टदायी पंजीकरण प्रणाली की व्यवस्था की गई है, जबकि मध्यम और बड़े पैमाने की इकाइयों को पूर्णत: पंजीकरण विधि से मुक्त कर दिया गया है ।

15.8 लघु उद्योगों हेतु सुझाव

वर्तमान आर्थिक संकट से उभरने हेतु लघु उद्योग एक महत्वपूर्ण आधार है । आज भारतीय अर्थव्यवस्था अर्थिक संकट से गुजर रही है, बेरोजगारी की समस्या ने अपना रौद्र रूप धारण किया हुआ है आर्थिक विषमता की गहराई बढ़ती जा रही है, ऐसे बिगड़ते औद्योगिक माहौल मे लघु उद्योग ही एक ऐसा माध्यम है, जिसके द्वारा अर्थव्यवस्था को मंदी से उभारा जा सकता है, क्योंकि लघु उद्योग की स्थापना हेतु बड़े उद्योगों की अपेक्षाकृत कम पूँजी की आवश्यकता होती है एवं अधिकांशत: लघु उद्योग की स्थापना हेतु बड़े उद्योगों की अपेक्षाकृत कम पूँजी की आवश्यकता होती है एवं अधिकांशत: लघु उद्योग श्रम प्रधान तकनीक पर आधारित होते है जिससे कि बेरोजगारी की समस्या का समाधान

सम्भव है । लघु उद्योगो की सहायता से ही प्राकृतिक संसाधनों का पूर्ण विदोहन सम्मव है । यही नहीं लघु उद्योग ही वर्तमान में ऐसा उद्योग है जिससे देश की पारम्परिक कला एवं संस्कृति की रक्षा होती है, क्योंकि अंधिकांश लघु उद्योगो एवं कुटीर उद्योगों द्वारा परम्परागत वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है । यही नहीं लघु उद्योगों के द्वारा अधिक से अधिक निर्यात कर विदेशी मुद्रा प्राप्त करने में भी सहायक है । लघु उद्योगों का एक और लाभ यह है कि ये लघु उद्योग छोटे-छोटे गाँवों एक कस्बों में भी स्थापित किये जा सकते हैं जिससे स्थानीय जनता को रोजगार प्राप्त होता है, एवं वही की जनता को आय के साथ जीवन स्तर सुधारने का अवसर प्राप्त होता है ।

लघु उद्योग क्षेत्र की समस्याओं को खोजा गया जिससे कि समस्याओं का समाधान कर लघु उद्योगों को विकसित कर देश की अर्थव्यवस्था को आत्म निर्भर बनाया जा सके, इस हेतु कुछ महत्वपूर्ण सुझाव निम्नलिखित है -

1. रूग्ण इकाइयों के पुर्नजीबन हेतु

रूग्ण इकाइयों के पुर्नजीवन हेतु वित्तीय संस्था द्वारा कम ब्याज दर पर ऋण उपलब्ध करवाया जाना चाहिये । रूग्ण इकाइयों को बिक्री कर से मुक्त किया जाना चाहिए । जिससे उनका माल अन्य इकाइयों की अपेक्षा कम दर से बाजार में बिक सके । भूमि एवं भवन कर रूग्ण इकाइयों से नहीं लिया जाना चाहिए । विद्युत विभाग द्वारा रूग्ण इकाइयों से न्यूनतम तथ्य नहीं लिये जाने चाहिये ।

2. आंवटन राशि का सीधा भुगतान

वर्तमान में लघु उद्योगों की मुख्य समस्या इनकी आर्थिक स्थिति है, अत: सरकार द्वारा जो महत्वपूर्ण कदम वर्तमान में उठाये जाना चाहिये वह यह है कि सरकार द्वारा लघु उद्योगों की सहायता हेतु आवंटन राशि के आवंटन हेतु सीधे सम्पर्क द्वारा राशि का आंवटन लघु उद्योगों को होना चाहिये जिससे सरकार द्वारा किए गए प्रयासों को सही अंजाम मिल सके ।

3. सरकार द्वारा लघु उद्योगों हेतु पृथक नीति का आयोजन

सरकार द्वारा लघु उद्योगों के लिए पृथक नीति का अयोजन किया जाना चाहिये लघु उद्योगों के लिए केन्द्रीय विक्रय कर एवं राजस्थान विक्रय कर CST एवं RST न्यूनतम दरों का निर्धारण किया जाना चाहिए एवं कर विभाग द्वारा लघु औद्योगिक इकाइयों से अग्रिम करों की वसूली नहीं की जानी चाहिए ।

4. उचित तकनीक का कम मूल्य पर आवंटन

लघु उद्योगों को जो तकनीक प्रदान करवाई जाती है उसकी राशि इतनी होती है कि ये इकाइयों उसका प्रयोग करने में असमर्थ होती है, अत: लघु औद्योगिक इकाइयों के लिए आवश्यक है कि उन्हें उचित तकनीक कम मूल्य पर आंवटित की जाये एवं सरकार द्वारा कुछ ऐसे व्यक्तियों को नियुक्त किया जाये जो कि उसी तकनीक का बेहतर प्रयोग किस तरह से किया जाये इस हेतु प्रशिक्षण प्रदान कर सके ।

5. कार्मिक प्रबन्ध की उचित व्यवस्था

लघु औद्योगिक इकाइयाँ चूकि पूर्णतया श्रम प्रधान तकनीक पर आधारित होती है अत: उनमें कार्यरत श्रमिकों की संख्या बड़े उद्योगों की अपेक्षाकृत अधिक होती है, अत: इन उद्योगों हेतु कार्मिक प्रबन्ध की उचित व्यवस्था की जानी चाहिये ।

6. दैनिक मजदूरी की निश्चित दर

लघु उद्योगों में श्रमिकों के लिए एक दैनिक मजदूरी निश्चित की जानी चाहिए जिससे कुशल श्रमिकों को पलायन से बचाया जा सकें, एवं श्रमिक में भी दैनिक मजदूरी प्राप्त करने के आश्वासन से संस्था के प्रति विश्वास होगा जिससे वर्ग संघर्ष कम होगा ।

7. कच्चे माल की उपलब्धि करवाना

लघु उद्योगों की मुख्य समस्या बेहतर कच्चे माल का अभाव है । लघु उद्योगों द्वारा उत्पादन से पूर्व किसी प्रकार का सर्वे नहीं किया जाता ना ही बाजार सर्वेक्षण, उत्पाद सर्वेक्षण, उपभोक्ता अनुसंधान नही किया जाता, अत: उनको कच्चे माल की एक ऊँची कीमत चुकानी पड़ती है एवं ऊँची कीमत के साथ उसकी किस्म भी घटिया होती है जिससे उत्पादन लागत प्रभावित होती है अत: सरकार द्वारा ऐसे भण्डारों की व्यवस्था करनी चाहिए जो कि लघु औद्योगिक इकाइयों को कम मूल्य पर उचित कच्चा माल उपलब्ध करा सकें ।

8. अनुषंगी लाभ एवं सेवाओं की उपलब्धि

लघु उद्योगो द्वारा अपने कर्मचारियों एवं श्रमिकों को उचित अनुषंगी लाभ एवं सेवाएं प्रदान की जानी चाहिए जिससे कर्मचारी अभिप्रेरित हों एवं अधिक बेहतर ढंग से कार्य को सम्पन्न कर सके।

9. उचित बिक्री सुविधाऐं

उद्योगों की सबसे विपणन की है हेतु उद्योगों लघु महत्वपूर्ण समस्या समस्या । इस लघु के उत्पादनों की बिक्री के लिए एक केन्द्रीय विक्रय संस्थान की स्थापना की जानी चाहिए जो कि विभिन्न संस्थाओं से निश्चित प्रमाप के अनुसार माल तैयार कराए व उसको बेचने की व्यवस्था करें ।

10. उद्यमी विकास कार्यक्रम

वर्तमान में सरकार द्वारा उद्यमी के विकास हेतु ऐसे कार्यक्रम तैयार किए जाने चाहिये कि उद्यमी को स्वयं के विकास को प्रेरित करें, क्योंकि जब तक उद्यमी अपने विकास का इच्छुक नही होगा तब तक सम्पूर्ण नीतियाँ विफल ही होगी ।

11. कच्चे माल पर रॉयल्टी घटाएँ

वर्तमान में लघु उद्योगों की यह समस्या है कि खान विभाग से खान मालिकों को कोई सुविधा नही दी जाती, जिससे खान मालिक हमेशा ही परेशानी में रहता है । कच्चे माल पर रॉयल्टी की अधिकता एवं उस पर चुकाया गया बिक्री कर को दोहरी मार खान मालिक पर पड़ती है ।

12. विद्युत विभाग द्वारा पूर्व चेतावनी

लघु उद्योगो की आर्थिक स्थिति प्राय: थोड़ी सी संकटकालीन परिस्थितियों मे गड़बड़ा जाती है अत: विद्युत विभाग द्वारा पावर काटने से पहले पूर्व चेतावनी देनी चाहिए एवं यदि सम्भव हो तो इन क्षेत्रों में विद्युत आपूर्ति नियमित होनी चाहिए ।

अत: महत्वपूर्ण सुझावों पर अमल करके हम लघु उद्योगों की समस्याओं का अधिकाशत: समाधान कर सकते है, एवं देश की अर्थव्यवस्था को आत्म-निर्भर बनाने के साथ ही देश के आर्थिक ढाँचे के निर्माण मे सक्षम होगें।

15.9 निष्कर्ष

भारतीय अर्थव्यवस्था की दृष्टि से यदि हम यह कल्पना करें कि सम्पूर्ण विश्व या सम्पूर्ण भारत मे मात्र बड़े उद्योग हो तो यह सम्भव नही है क्योंकि बड़े उद्योगों की स्थापना हेतु पूंजी के एक

विशाल भण्डार की आवश्यकता होती है, इसके विपरीत लघु उद्योग जो कि कम पूंजी लगाकर प्रारम्भ किए जाते है, शहरों एवं गाँवों दोनों मे ही स्थापित किये जा सकते हैं । रोजगार की दृष्टि से भी लघु उद्योग एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, बड़े उद्योग जिनमें अधिकांश कार्य मशीनों द्वारा सम्पन्न किया जाता है जिस कारण ये अधिक रोजगार उपलब्ध नहीं करा सकते अत: यदि आज मात्र बडे उद्योग ही हों तो वर्तमान में सरकार के समक्ष सबसे महत्वपूर्ण समस्या रोजगार की होगी । इस दृष्टि से भी लघु उद्योग महत्वपूर्ण है । ये उद्योग अधिकाशत: श्रम प्रधान तकनीक पर आधारित होते है एवं शहरों की अपेक्षा गॉवो में अधिक होते है इसी कारण से परम्परागत प्रतिभा व कला की रक्षा हेतु भी आवश्यक है । अन्य महत्वपूर्ण दृष्टिकोण से लघु उद्योगों की आवश्यकता निर्यात संवर्धन व देश को आत्म निर्भरता की और ले जाने हेतु है । लघु उद्योग आयात प्रतिस्थापन मे सहायक है व निर्यात की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है ।

वर्तमान औद्योगिक परिपेक्ष्य में लघु उद्योग बडे उद्योगों की अपेक्षा अधिक निर्यात करते है एवं देश या राष्ट्र के आत्म निर्भरता के लिए भी लघु उद्योग आवश्यक है ।

15.10 अभ्यास प्रश्न

1. भारत में लघु उद्योगों के प्रमुख उद्देश्य बताइए ।
2. भारत में लघु उद्योगों की क्या समस्याएं हैं? इन्हें दूर करने के सुझाव दीजिए ।
3. भारत में लघु उद्योगों के विकास हेतु किए गए सरकारी प्रयासों पर संक्षिप्त लेख लिखिए ।
4. लघु उद्योगों की नई नीति 1991 की व्याख्या किजिए ।
5. भारत में लघु उद्योगों के विकास का मूल्यांकन कीजिए ।

15.11 संदर्भ ग्रंथ

व्यावसायिक पर्यावरण (त्रिवेदी, शर्मा)
आर्थिक पर्यावरण (गुप्ता, स्वामी)
भारतीय अर्थव्यवस्था (मिश्रा, पुरी)
भारतीय अर्थव्यवस्था (जी.सी. सिंघई)
भारतीय अर्थव्यवस्था (जगदीश नारायण मिश्र)

इकाई-16: आर्थिक सुधार (Economic Reforms)

इकाई की रूपरेखा :

16.1 प्रस्तावना

16.2 आर्थिक सुधार के चरण (1985-1990)

16.2.1 (1985-1990)

16.2.2 (1990-2001)

16.2.3 दूसरे चरण के सुधार

16.3 भारतीय अर्थव्यवस्था पर सुधारों का प्रभाव

16.4 आर्थिक सुधारों का मूल्यांकन

16.5 सारांश

16.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

16.7 संदर्भ ग्रन्थ

16.1 प्रस्तावना

स्वतन्त्रता के पश्चात भारत ने नियोजित विकास की रणनीति को अपनाया। नियोजित विकास में सार्वजनिक क्षेत्र को सबसे महत्वपूर्ण उपकरण के रूप में वरीयता देकर विकास के पथ पर अर्थव्यवस्था को गतिशील किया गया। राजकोषीय क्षेत्र को इस प्रकार गतिशील किया गया कि निजी क्षैत्र से संसाधनों को गतिशील करके सार्वजनिक कार्यक्रम को संचालित किया जाये एवं सार्वजनिक निवेश से आधारभूत संरचना को विकसित किया जा सके। इसी प्रकार मौद्रिक नीति को इस प्रकार क्रियान्वित करना ताकि स्फीति को नियंत्रित रखकर औद्योगिक विकास पर बल दिया जा सके ।

ये प्रवृतियॉ चार दशकों तक निरन्तर चलती रही एवं सार्वजनिक क्षैत्र से यह अपेक्षा की थी कि वह विकास के लिये इंजन का कार्य करेगा किन्तु 1970 दशक में सार्वजनिक क्षैत्र के प्रति मोह भंग होना प्रारम्भ हो गया जिसके मुख्य कारण निम्न थे : -

- सरकार की आय से अधिक व्यय एवं उपभोग जिसके परिणाम स्वरूप सरकार के उधार में वृद्धि हुई ।
- संसाधनों के उपयोग में बढ़ती अदक्षता ।
- उद्योगों को अति संरक्षण ।
- अर्थव्यवस्था एवं उद्योगों का कुप्रबन्धन ।
- सार्वजनिक उद्योगों का हिमालय जैसा घाटा ।
- तकनीकी पिछड़ापन, विदेशी विनियम की कमी, सरकारी उधार में वृद्धि एवं विदेशी धन का कुप्रबन्धन जैसी प्रवृतियाँ देखी गयी ।

1980 के दशक के आरम्भ में सार्वजनिक क्षैत्र की असफलता के परिणाम स्वरूप विरोध संगठित होने लगा जिसके परिणाम स्वरूप आरक्षित क्षेत्रों में से कुछ को निजी क्षेत्र के लिये खोलने की दिशा में कुछ निर्णय किये गये। 1985 में मध्यम पैमाने पर इन कमियों को अनुभव करते हुए

औद्यौगिक, वित्तीय, बाहरी, राजकोषीय क्षैत्रों में सुधार प्रारम्भ किये गये जो आर्थिक सुधार कहलाये, किन्तु सरकार इन कदमों को स्पष्ट से स्वीकार करने में हिचकिचाहट महसूस कर रही थी ।

16.2 आर्थिक सुधार के चरण (1985-90)

1985 में श्री राजीव गाँधी ने प्रधानमंत्री बनने के फौरन बाद सरकार की आर्थिक नीति में नयी प्रवृतियाँ की रूपरेखा खींची । राष्ट्र के नाम अपने पहले संदेश में पहली बार प्रधानमंत्री राजीव गाँधी द्वारा स्पष्ट रूप से स्वीकार करते हुए कहा गया कि सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार कुछ ऐसे क्षेत्रों में हो गया है जो कि नही होना चाहिए था । हम अपने सार्वजनिक क्षेत्र का विकास केवल उन क्षेत्रों में करें जिनमें निजी क्षेत्र अक्षम है । उनके अनुसार हम निजी क्षेत्र के लिये अधिक क्षेत्र खोल देंगे ताकि इनका पूर्णरूपेण विस्तार हो सके और अर्थव्यवस्था उन्मुक्त रूप से विकसित हो सके ।

प्रधानमंत्री ने इस संबध में यह सुझाव दिया की उधोगों के उत्पादकता में सुधार, आधुनिक तकनीक को आत्मसात करना और संसाधन क्षमता का पूर्णत: प्रयोग करना । नयी आर्थिक नीति का मुख्य बल निजी क्षेत्र के लिये अधिक कार्यभाग का प्रावधान करना रहा ।

निजी क्षेत्र के लिये अधिक विस्तृत क्षेत्र उपलब्ध कराने के लिये बहुत से नीति संबंधी परिवर्तन किए गए जिनका संबंध औद्योगिक लाइसेंस नीति, निर्यात आयात नीति, तकनीकी उन्नति, प्रतिबन्धों को हटाने और राजकोषीय एवं प्रशासनिक नियमन प्रणाली के सरलीकरण से था ।

ये सब परिवर्तन करने का उद्देश्य था, लाइसेंस प्राप्त करने में अनावश्यक अड़चनें दूर की जा सकें तथा उत्पादन का समायोजन प्रशासित कीमतों द्वारा न करना पड़े और औद्योगिक लाइसेंस पर प्रतिबंध हटाये जा सकें । जिसमें अर्थव्यवस्था के आधुनिकीकरण के लिये निजी क्षैत्र के विनियोग को एक जबरदस्त प्रोत्साहन प्राप्त हो सके जिसके फलस्वरूप तीव्र आर्थिक विकास हो सके ।

मूल्यांकन - 1985 में हमारे देश में हालाँकि आर्थिक सुधारों का दोर प्रारम्भ हो गया किन्तु ये सुधार आधे-अधूरे मन से प्रारम्भ किये गये जिनके परिणाम स्वरूप इच्छित परिणाम प्राप्त नहीं हुए व्यापार घाटा कम होने की बजाय बढ़ गया । व्यापार शेष का औसत घाटा 5933 करोड़ रूपये से छलांग लगाकर 1985 से 1990 के दौर में 10841 करोड़ रूपये हो गया तथा अदृश्य मदों की प्राप्ति गिरकर 15891 करोड़ रूपये हो गयी । जिसके परिणाम स्वरूप गंभीर भुगतान शेष की स्थिति का सामना करना पड़ा।

अत: भारत को अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से 7 अरब डीलर का भारी ऋण लेना पड़ा । ऐसी स्थिति में विश्व बैंक एवं अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ने अपनी शती पर भारत को ऋण प्रदान किया जिसके दूरगामी परिणाम अच्छे प्रतीत नहीं हो रहे थे ।

16.2.1 आर्थिक सुधार (1990-2001)

भारतीय अर्थव्यवस्था की दुर्दशा को सुधारने के लिये इन आर्थिक सुधारों को बल मिला । 1991 की कांग्रेस सरकार में जब श्री पी.वी. नरसिंह राव प्रधानमंत्री एवं वर्तमान प्रधानमंत्री श्री मनमोहन सिंह उस सरकार में वित्र मंत्री बनाये गये । सरकार बनते ही सरकार ने अर्थव्यस्था की स्थायीकरण संबंधी उपायों की घोषणा की जिससे देश में आन्तरिक एवं विदेशी विश्वास प्राप्त किया जा सके । व्याज दर को बढ़ाकर मौद्रिक नीति को और मजबूत बनाया गया । रूपये की विनियम दर का 22 प्रतिशत अवमूल्यन किया गया और व्यापार प्रणाली में भारी सरलीकरण और उदारीकरण की घोषणा की गयी।

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष द्वारा दिए गए ज्ञापन में तत्कालीन वित्त मंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने उल्लेख किया कि उनका मुख्य बल औद्योगिक उत्पादन की कुशलता एवं अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा को बढ़ाना, तकनीक का अधिक प्रयोग, सार्वजनिक क्षेत्र के निष्पादन को उन्नत करना तथा वित्तीय क्षेत्र का सुधार एवं आधुनिकरण था जिससे वह अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं को अधिक कुशलता से पूरा कर सके ।

इन आर्थिक सुधारों के लागू करने के पीछे मुख्य उद्देश्य निर्धारित किये गये जो निम्नानुसार है -

- संवृद्धि की ऊँची दर प्राप्त करना ।
- रोजगार क्षमता का विस्तार करना ।
- गरीबी रेखा के नीचे रहने वाली जनसंख्या में कभी ।
- समानता को प्रोत्साहन ।
- क्षेत्रीय असमानताओं को कम करना ।

दूसरी पीढ़ी के सुधार

वित मंत्री ने 2000-01 का बजट पेश करते हु ए राष्ट्रीय जनतात्रिक गठबन्धन की सरकार द्वारा दूसरी पीढ़ी के सुधारों की घोषणा की महत्वपूर्ण बात यह थी कि जहाँ एक ओर 1991 के सुधार संकट चालित थे व द्वितीय पीढ़ी के सुधार विकास आधारित थे । इस पीढ़ी के सुधारों के निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किये गये -

- हमारी ग्रामीण अर्थव्यवस्था विशेषकर कृषि एवं सम्बन्धित क्रियाओं के विकास की नींव को सुदृढ़ करना ।
- सूचना तकनीक (IT) द्वारा बायो टेकनोलोजी आधारित उद्योगों में क्रान्तिकारी क्षमता का विकास करना ।
- वस्त्र उद्योगों और कृषि प्रसंस्करण और लघु उद्योग क्षैत्र को सशक्त एवं आधुनिक बनाना ।
- आधार भूत संरचना के विकास में आने वाली बाधाओं को दूर करना ।

द्वितीय पीढी के सुधारों की रणनीति -

- सरल देशी उत्पाद की उच्च वृद्धि दर प्राप्त करना ।
- रोजगार क्षमता का विस्तार जिससे देश में पूर्ण रोजगार का लक्ष्य प्राप्त किया जा सके ।
- गरीबी रेखा से नीचे रहने वाली जनसंख्या में कमी करना ।
- समाज के गरीब वर्ग के विकास हेतु शिक्षा एवं स्वास्थ्य की बेहतर सुविधायें प्रदान करना ।
- क्षेत्रीय असमानताओं को कम करना ।
- 1991 में चालू किये गये सुधारों में विनिवेश की प्रक्रिया प्रारम्म की गयी ।
- यह स्वीकार किया गया कि अर्थव्यवस्था की सभी समस्याओं का हल उदारीकरण निजीकरण एवं वैश्वीकरण (LPG model) में स्थित है ।

उपरोक्त उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए निम्न क्षेत्रों में आर्थिक सुधार प्रारम्भ किये गये-

(I) औद्योगिक क्षेत्र

(II) वित्तीय क्षेत्र

(III) बाहरी क्षेत्र

(IV) राजकोषीय नीति

(I) औद्योगिक क्षेत्र

(i) औद्योगिक क्षेत्र में निम्न सुधार किये गये -

- औद्योगिक लाइसेंसिग के तहत ऐसे 18 उद्योगों को छोडकर, सभी विकल्पों को समाप्त कर दिया गया, जो रणनीतिगत तथा सुरक्षा संस्थानों, सामाजिक कारणों तथा प्रबुद्ध वर्ग के उपयोग की मदों से सम्बन्ध रखते थे । वर्तमान में केवल ऐसे 6 उद्योग है, जो स्वास्थ्य, रणनीतिगत तथा सुरक्षा दृष्टिकोणों से सम्बन्ध रखते हैं, उन्हें औद्योगिक लाइसेंसिंग के दायरे मे बनाये रखा गया है । ये हैं शराब, सिगरेट, खतरनाक रसायन, इलैक्ट्रोनिक एरोस्पेस तथा रक्षा उपकरण, औद्योगिक विस्फोट तथा दवाएँ एवं फार्मास्युटिकल्स (भारी दवा उद्योगों को छोडकर) ।
- केवल 8 उद्योग वर्गो के जहाँ संरक्षण तथा रणनीतिगत विचार ज्यादा महत्व रखते हैं पूरी तरह से सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित रखा गया । वर्तमान में ऐसे केवल 3 ही उद्योग हैं जो सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित है । ये हैं 1. परमाणु ऊर्जा 2. परमाणु ऊर्जा के विभाग में भारत सरकार द्वारा अधिसूची, अनुसूची में निर्दिष्ट पदार्थ, तथा 3. रेल परिवहन ।
- ऐसे विकल्पों में जहाँ आयातित पूँजीगत माल आवश्यक होता है निम्न मामलों में स्वचालित निकासी की आज्ञा दी जायेगी -
    1. जहाँ विदेशी समता के माध्यम से विदेशी विनिमय उपलखता सुनिश्चित की जाती है ।
    2. यदि अपेक्षित आयातित पूँजीगत माल का मूल्य संयंत्र तथा मशीनों के कुल मूल्य का 25% से कम है 2 करोड़ रूपये की अधिकतम सीमा तक ।
- दस लाख की जनसंख्या वाले शहरों के अतिरिक्त स्थानों पर केन्द्रीय सरकार से औद्योगिक स्वीकृतियॉ लेने की अब आवश्यकता नही पड़ेगी ऐसे उद्योगों को छोडकर जो अनिवार्य लाइसेंसिग के अन्तर्गत है ।
- अनिवार्य परिवर्तनीयता वाक्यांश सावधि ऋणों के लिए लागू नहीं होगा, न ही परियोजनओं के लिए वित्तीय संस्थाओं के ऋणों पर ।
- केस दर केस आधार पर अनुमोदित नयी परियोजनाओं पर लागू नही होगा ।
- विद्यमान यूनिटों को नई ब्राँड बैडिंग सुविधा प्रदान की जायेगी ताकि वे बिना किसी निवेश के किसी भी वस्तु का उत्पादन कर सकें ।
- लाइसेसिंग से विमुक्ति विद्यामान यूनिटों के सभी आगे के विस्तारों पर लाग होती रहेगी ।
- सभी विद्यामान योजनाऐ (लाइसेंस पंजीकरण, मुक्त पंजीकरण) समाप्त की जायेगी ।
- उद्यमियों को अब केवल नये प्रकल्पों पर तथा तदोपरान्त विस्तारों पर एक सूचना मेमोरन्दम दाखिल करना होगा ।

(ii) विदेशी निवेश -

- उच्च प्राथमिकता वाले उद्योगों में 51 प्रतिशत समता तक के प्रत्यक्ष विदेशी निवेश हेतु अनुमोदन किया जायेगा।

- अन्तर्राष्ट्रीय बाजारों तक पहुँच की व्यवस्था हेतु बहुसंख्यक विदेशी समता धारिता 51 प्रतिशत समता तक स्वीकार की जायेगी ऐसी व्यापारिक कम्पनियों के लिए, जो मूल रूप से निर्यात गतिविधियों में लगी है ।
- एक विशेष शक्तिशाली बोर्ड का गठन किया जायेगा ताकि बड़ी मात्रा में अन्तर्राष्ट्रीय फर्मो के साथ समझौते हो सकें ।

परिणास्वरूप उच्च प्राथमिकता वाले उद्योगों की एक सूबी (कुल 34 उद्योग) तैयार की गई जिसमें 51 प्रतिशत विदेशी समता तथा प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के लिए स्वत: अनुमति उपलब्ध होगी । 1999 में सरकार ने एक छोटी सी नकरात्मक सूची को छोडकर सभी मदों के लिए प्रत्यक्ष विदेशी /NRI/OBC निवेश के लिए स्वचालित मार्ग में रखने का निर्णय लिया । वर्ष 2000-03 के दौरान, दवाओं तथा फार्मास्यूटीकल, होटल, पर्यटन, कोरियर सेवाएँ, तेल परिशोधन, सामूहिक तीव्र परिवहन प्रणाली, हवाई अड्डों, व्यवसाय से व्यवसाय तक ई-कॉमर्स, विशेष आर्थिक क्षेत्र (SEZ) उद्योग तथा कुछ टेलीकॉम उद्योगों में 100 प्रतिशत FDI की आज्ञा दी । इसी तरह, इन्टरनेट सेवा प्रदाताओं को भी, गेटवेज की व्यवस्था की इलैक्ट्रॉनिक मेल तथा वॉयस मेल, विज्ञापन फिल्म क्षेत्र, चाय (कुछ शर्तो के साथ) तथा टाऊनशिप के विकास (लेकिन पूर्व अनुमति के साथ) बीमा तथा प्रिंट माध्यमों में 26% FDI को आज्ञा दी गई । बैंकिग में 49% हमे स्वीकार किया गया । इसके अतिरिक्त रक्षा उत्पादन, बीमा तथा प्रिंट माध्यमों में 26% FDI को स्वीकार किया है (लेकिन ऐसा कुछ शर्तो के साथ होगा) ।

(iii) एकाधिकार तथा प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार अधिनियम (MRPT ACT) -

सुधार पूर्व की अवधि ने, सम्पतियों में परिभाषित निवेश से अधिक निवेश वाली कम्पनियों से अपेक्षा की कि नये संस्थानों की स्थापना, विद्यमान संस्थानों के विस्तार, मिलान एकीकरण तथा अधिग्रहण एवं संचालकों की नियुक्ति (कुछ परिस्थितियों के अन्तर्गत) हेतु केन्द्रीय सरकार की पूर्व अनुमति प्राप्त करें । नई औद्योगिक नीति, 1991 के अन्तर्गत इस अनिवार्यता को समाप्त कर दिया गया । अत: इस गतिविधि से बड़े व्यवसाय गृहो के विकास तथा पुन: संरचना पर लगाई गई बाधाओं को समाप्त किया गया ।

(II) वित्तीय क्षेत्र -

वित्तीय क्षेत्र के सुधार मुख्यत: तीन श्रेणियों से सम्बन्ध रखते है (अ) बैकिंग क्षेत्र के सुधार, (ब) पूँजी सुधार (स) बीमा क्षेत्र के सुधार ।

महत्वपूर्ण सुधार इस प्रकार थे -

- CRR को सुधार पूर्व के वर्ष के दौरान 15 प्रतिशत की उच्च मात्रा से जून 2003 में 4.5 प्रतिशत तक नीचे लाया गया लेकिन बाद में 2004 में इसे 5 प्रतिशत तक बढ़ाया गया ।
- SLR को 1991-92 के दौरान उसके सर्वोच्च शिखर 38.5% से घटाकर हाल के वर्षो में 25 प्रतिशत तक लाया गया ।
- व्यापारिक साख के लिए बैंकों की मुख्य ऋण देने की दरें अब पूरी तरह से बैंकों के अधिकार क्षेत्र मे है, न कि उनको भारतीय रिजर्व बैंक तय करता हैं अप्रैल 2001 से PRL को न्यूनतम दर के रूप में न मानते हुए बैंको के लिए एक बैंच-मार्क दर के रूप में बदल डाला गया है।
- बैंक दर को भी अप्रैल 2003 से 8 प्रतिशत तक घटाया जा चुका है ।

- व्यापारिक बैंकों की बचत जमाओ पर ब्याज की दर 1980 के दशक में 4.5 प्रतिशत से हाल के वर्षो में 3.5 प्रतिशत तक घटाई जा चुकी है ।
- 1993 में भारतीय रिजर्व बैंक ने निजी क्षेत्र में नये बैंको के लाइसेसिंग के लिए गाईडलाईन्स जारी की ।
- जनवरी 2000 में नये बैंकों को प्रोत्साहित किया गया कि अपने संसाधन जुटाने के लिए जनता के पास जायें।
- देय ऋणों की वसूली के लिए बैंक तथा अन्य संस्थान अधिनियम, 1993 पास किया गया तथा विशेष वसूलयावी ट्रिब्यूनल्स की स्थापना की गई ताकि बकाया ऋणों की शीघ्रतर वसूली के लिए सुविधा हो सके ।
- गैर निष्पादकीय सम्पतियो (NPAs) को घटाने के लक्ष्य को पाने के लिए बैंकों को परामर्श दिया गया है कि अपने क्रैडिट जोखिम प्रबन्धन प्रणाली को दुरूस्त करें ।
- The Securities and Reconstruction of Financial Assets and Enforcement of Security Interest Act पास किया गया ताकि अपने ऋणों की वसूली में बैंको को मदद मिल सके ।
- एक क्रेडिट सूचना ब्यूरो की स्थापना की जायेगी जिससे निकृष्ट जोखिमों को चिन्हित किया जा सके ।
- व्युत्पन्न उत्पाद जैसे आगामी दरों के समझौते (FRAs) तथा ब्याज दर आदान-प्रदान (Swaps) प्रारम्भ किये जो चुके है ।
- भारतीय रिजर्व बैंक प्रणाली में व्यवस्थित जोखिम के भय को न्यूनतम करने के लिए पारदर्शिता, स्वामित्व के विविधीकरण तथा दृढ़ कारपोरेट नियंत्रण पर जोर दिया गया ।
- विश्व व्यापार संगठन (WTO) की तर्ज पर विदेशी बैंकों के प्रवेश हेतु एक रोडमैप भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा प्रकाशित किया जा चुका है ।
- लाभांश भुगतान के संचालन करने वाले सिद्धान्तों को 2005 में और उदार बनाया गया हैं। भारतीय रिजर्व बैंक ने 2005 में निजी क्षेत्र के बैंकों के सम्बन्ध में एकीकरण/सविलयन के लिए व्यापक गाईडलाईन्स भी जारी की है ।
- अन्य उपायों में शामिल है उपभोक्ता टिकाऊ पदार्थो के क्रय हेतु साख प्रतिबन्धों को हटाया / उदार बनाना, प्राथमिक क्षेत्र के दायरे को व्यापक बनाना ताकि सॉटवेयर, कृषि संसाधन उद्योग तथा उपक्रम पूँजी का समावेश हो सके ।

(III)बाहरी क्षैत्र -

भारत की विदेश व्यापार नीति द्वितीय योजना में औद्योगीकरण के कार्यक्रम के प्रारम्भ के पश्चात काफी प्रतिबन्धात्मक बनाई गई । केवल पूँजीगत उपकरणों, मशीनरी, हिस्से पुर्जो, स्पेयर पार्टो औद्योगिक कच्चे मालों के निर्यात की ही आज्ञा दी गई । सभी गैर-आवश्यक मदों के आयात को पूरी तरह नियंत्रित किया गया । खाद्यान्नों का आयात समय-समय पर स्वीकार किया गया जिससे घरेलू माँग को पूरा किया जा सके । यह सात के दशक तक जारी रहा । सतर के दशक के दौरान कुछ उदारताएँ बरती गई लेकिन अस्सी के दशक में आयातों को उदार बनाने के लिए बड़े पैमाने पर विशेष प्रबन्ध किये गये । ऐसा निर्यातों को बढ़ावा देने तथा निर्यातों की प्रतिस्पर्द्धात्मक प्रखरता को सुधारने के लिए

किया गया । अनेक राजकोषीय तथा मौद्रिक रियायतें निर्यातकों को प्रदान की गई । अनेक योजनाएँ जैसे ड्यूटी ड्रॉ बैक, रोकड़ क्षतिपूर्ति योजना, शत-प्रतिशत निर्यातोज़खी यूनिटें (EOUs) तथा निर्यात संसाधन क्षेत्र (EPZ) को निर्यात संवर्द्धन परिषद (EPC) आदि निर्यात संवर्द्धन हेतु हरकत में आये । लेकिन भारत 80 के दशक के अन्त में तथा 90 के दशक के प्रारम्भ में भुगतान संतुलन की बिगड़ती स्थिति का सामना करता रहा । परिस्थिति पर काबू पाने के लिए अवमूल्यन का सहारा लिया गया। इसके बाद नई विदेश व्यापार नीति तथा विदेश व्यापार सुधारों की घोषणा की गई ।

निम्न वे महत्वपूर्ण कदम है जो देश के बाहर क्षेत्र के सुधार हेतु उठाये जा चुके है-

1. **विनियम दर स्थायीकरण -** 1991 से पूर्व की अधिकांश अवधि में रूपया अधिमूल्यीत चलता रहा तथा इस तरह से हमारे निर्यात दुष्प्रभावित होते रहे । जुलाई 1991 में रूपये का दो बार अवमूल्यन किया गया जिससे कुल मिलाकर लगभग 19 प्रतिशत का अवमूल्यन हो गया ।

भारतीय रिजर्व बैंक, फेरा, 1973 के अनुसार (जिसको समय-समय पर संशोधित किया गया है) विदेशी विनिमय को नियंत्रण में लाती है । मार्च 1993 में विनियम दरों के समेकीकरण के कारण व्यापार खाते पर लेनदेनों को विदेशी विनियम नियंत्रणों से मुक्त किया गया । यह 1994 में हुआ था कि विभिन्न प्रकार के चालू खाते के लेनदनों को कुछ उल्लिखित सीमाओं के साथ विनिमय नियंत्रण नियामों से उदार बनाया गया । कुछ पूँजी खाते के लेनदेनों को भी विनिमय नियंत्रणों से मुक्त किया गया ।

2. **विदेशी निवेश** - विदेशी निवेश 1991 से पूर्व भारत की अर्थव्यवस्था में अत्यन्त सीमित भूमिका निभा पाया था । भारतीय उद्योगों में समता भागीदारी पर प्रतिबन्ध, प्रौद्योगिकी अनिवार्यताएँ तथा तत्कालीन विद्यमान औद्योगिक लाइसेंसिग प्रणाली भारत में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (Foriegn Direct Investment) के हतोत्साहन की ओर प्रवृत रही । नई औद्योगिक नीति तथा तदोपरान्त नीति घोषणाओं ने विद्यमान नीति को उदार बनाया । इसने FDI के तथा विदेशी प्रौद्योगिकी समझौतो के उदारीकरण को प्रशस्त किया ।

3. **आयात लाइसेंसिंग -** भारत की विदेश व्यापार नीति 1990 के दशक के प्रारम्भ तक काफी जटिल बनी रही । विभिन्न प्रकार के आयात प्रतिबन्ध विद्यमान थे तथा आयात करने के कई तरीके थे । उदारीकारण की प्रक्रिया को बल मिला जब व्स्थ्य नीति की 1992-2002,2002-07 तथा 2004-09 की EXIM नीतियों ने कुछ मदों को हटाकर प्रतिबन्धित उपभोक्त मालों की सूची में और काट-छॉट की है । आयात लाइसेंसों की संख्या को भी घटाया जा चुका है ।

4. **मात्रात्मक प्रतिबन्ध -** मात्रात्मक प्रतिबन्धों (Quantitative Restrictions) को EXIM नीति 2000-01 में 714 मदों से 2001-02 की EXIM की नीति में प्रतिबन्ध हटाये गये । इस प्रकार रक्षा सामग्री, वायुमण्डलीय खतरनाक माल तथा अन्य संवेदनशील माल, को छोडकर, घरेलू बाजार के दरवाजों को सभी प्रकार के आयातित उपभोक्ता माल के लिए खोल दिया गया । 1997-2002, 2002-07 तथा 2004-09 को EXIM नीतियों ने इस सूची को और छोटा कर दिया है तथा अब केवल कुछ ही संवेदनशील मदें मात्रात्मक प्रतिबन्धों के अन्तर्गत आती है ।

5. **टैरिफ -** 1991 से पहले भारतीय आयात टैरिफ ढाँचा दुनिया के सबसे अधिक टैरिफ वालों मे था । भारत में अपनी औसतन लागू होने वाली टैरिफ दर को 1990-91 में 125: से 1995-96 में तथा 2006-07 में 15: तक घटा दिया है ।

6. **निर्यात सहायताएँ तथा अनुदान -** भारत में निर्यातकों को प्रत्यक्ष अनुदान नहीं दिये जाते । इनको सामान्यत: ड्यूटी तथा कर रियायतों, निर्यातक वित्त बीमा तथा गारन्टी एवं निर्यात संवर्द्धन विपणन सहायता के माध्यम से अप्रत्यक्षत: किया जाता है । निर्यात अनुदानों को 1980-81 से 1990-91 की अवधि के दौरान निर्यात बढ़ाने के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाता था । लेकिन इनमें अत्यधिक संव्यवहार लागते विलम्बता तथा भ्रष्टाचार शामिल हो जाता था । 1991 से निर्यात प्रोत्साहन प्रणाली के जोर को विचारणीय तौर पर बदला तथा संशोधित किया जा चुका है । एक विशेष योजना जो निर्यात प्रोत्साहन पूंजीगत वस्तु योजना (Export Promotion कैपिटल Gods (EPCG) योजना के रूप में जानी जाती है । 1990 में मौलिक रूप से प्रारम्भ की गई जिसको अप्रैल 1992 में उदार बनाया गया ताकि पूँजीगत माल के आयातों को प्रोत्साहन मिले (अन्तत: निर्यात आय को आय-कर से मुक्त किया गया । EPCG योजना को EXIM नीति 2004-09 में निर्यातकी को अतिरिक्त लाभों की व्यवस्था करके आगे और सुधारा जा चुका है ।

7. **विदेशी विनियम भंडार -** भारत के विदेशी विनिमय भंडारों में शामिल है भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा धारित विदेशी मुद्रा सम्पतियॉ भारतीय रिजर्व बैंक की स्वर्ण धारिताऐ तथा विशेष आहरण अधिकार (SDRs) । विदेशी विनियम भंडार जुलाई 1991 में मात्र 1.1 बिलियन अमेरिकी डॉलर के न्यूनतम स्तर से 2004-05 में 141.5 बिलियन अमेरिकी डॉलर से अधिक से हो चुके है ।

8. **फेरा से फेमा तक -** देश में विदेशी विनियम की भारी कमी के कारण भारत सरकार ने 1973 में विदेशी विनिमय अधिनियम (FERA-1973) को लागू किया । फेरा भारतीय कॉरपोरेट जगत में 27 वर्ष तक मुसीबत बना रहा । इसने विदेशी व्यापार को सुचारू बनाने के स्थान पर उसको हतोत्साहित किया । फलस्वरूप विदेशी विनिमय प्रबन्धन अधिनियम (FEMA) बनाया गया । FEMA का मुख्य उद्देश्य है, "विदेशी व्यापार तथा भुगतानों को सुचारू बनाना तथा भारत में विदेशी विनिमय बाजार के व्यवस्थित विकास तथा अनुरक्षण को विकसित करना ।"

9. **अन्य उपाय -** विदेशी व्यापार नीति 2004-09 ने कुछ महत्वपूर्ण क्षेत्रों की पहचान की है जैसे कृषि, हथकरघा, हस्तशिल्प, रत्नपदार्थ, आभूषण, तथा फुटवीयर आदि । उनके विकास के लिए विशेष योजनाएँ शुरू की जा चुकी है । उदाहरण के लिए विशेष कृषि उपज योजना कृषि निर्यातों को बढ़ावा देने के लिए शुरू की जा चुकी है । इसी तरह से सेवाओं के निर्यात की गति को तेज करने के लिए, ताकि एक विचित्र Served from India ब्रांड बन सके, पूर्ववर्ती शुल्क मुक्त निर्यात क्रेडिट (DFEC) योजना की पुन: संरचना की गई है तथा इसको Served from India योजना में ढाला गया है ।

(IV) राजकोषीय नीति -

राजकोषीय नीति अर्थात ऐसी नीति जो सार्वजनिक आगम तथा सार्वजनिक व्ययों एवं उसको सहायक मामलों से सम्बन्ध रखती है । सरकारी व्ययों के न टिकने वाले स्तर, सरकारी निवेशों पर घटिया प्रत्यायों से जुड़े अपर्याप्त आगमों ने 1980 के दशक में राजकोषीय ज्यादतियो को जन्म दिया। अत: इस संकट से छुटकारा पाने के लिए राजकोषीय सुधार प्रारम्भ किये गये । वे व्ययों को घटाने, राजस्व को बढ़ाने तथा निवेशों पर धनात्मक आर्थिक प्रत्याय जमाने का उद्देश्य लेकर चलते थे । अर्थव्यवस्था में राजकोषीय अनुशासन लाने के लिए निम्न उपाय किये जा चुके है-

1. **कर सुधार** - अगस्त 1991 में भारत ने एक कर सुधार समिति (TRC) की स्थापना की ताकि प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष दोनों कर कानूनों में व्यापक सुधारों की सिफारिश की जा सके ।

(i) **आय-कर सुधार -** आय-कर की वसूली में वृद्धि लाने के लिए उपाय किये गये-

- ऐतिहासिक तौर पर भारत में आय-कर की दरें काफी ऊँची रही है, लगभग दण्डात्मक सी । उदाहरण के लिए, 1973-74 में व्यक्तिगत आय-कर की अधिकतम सीमान्त दर 97.7: ऊँची थी । यह उत्पादन-विरोधी ही सिद्ध हुई । TRC की सिफारिशों के फलस्वरूप आय-कर के स्बोंले को घटाया गया तथा उनके भीतर दरों को काफी नीचे लाया गया।
- कर-निर्धारण वर्ष 1993-94 से पूर्व साझेदारी फर्मो का करारोपण अत्यन्त जटिल था । उदाहरण के लिए, करारोपण की विधि इस बात के अनुसार अलग-अलग हो जाती थी कि क्या फर्म पंजीकृत है या आय-कर अधिनियम के अन्तर्गत पंजीकृत न हीं है । TRC, 1991 की सिफारिशों को मानते हुए साझेदारी फर्मो के करारोपण को वित्त अधिनियम, 1992 के माध्यम से व्यापक रूप से संशोधित किया गया ।
- घरेलू कम्पनियों के लिए कर की दर 40 प्रतिशत से 30 प्रतिशत तक घटाई जा चुकी । विदेशी कम्पनियों के लिए कर की दर भी 55% से 40% तक घटाई जा चुकी है ।
- व्यक्तियों तथा हिन्दू अविभाजित परिवारों (HUFs) के मूल विमुक्ति सीमाओं को भी बढ़ाया जा चुका है ।
- छः में से एक योजना के अन्तर्गत रिटर्न दाखिल करने की अनिवार्यता को समाप्त किया जा चुका है । ऐसे व्यक्ति जिनकी मूल विमुक्ति सीमा से नीची होती है, उनको दाखिल करने की आवश्यकता नहीं है ।
- TDS प्रमाण-पत्रों का गैर-भौतिकीकरण भी 1.4.2008 से लागू किया जायेगा ।
- Tax Returen Prepares के माध्यम से रिटर्नो को दाखिल करने की योजना लागू हो चुकी है ।
- पॉवर क्षेत्र SEZs तथा शिपिंग उद्योग के लिए विशेष कर लाभों की व्यवस्था की गई है ।
- उपरोक्त के अतिरिक्त अनेक प्रविधिगत सरलीकरणों तथा विवरणों को भी कर अनुशीलन सुधार लाने के लिए लागू किया गया है ।

(ii) **अप्रत्यक्ष कर सुधार** - अप्रत्यक्ष करों के सम्बन्ध में निम्न मुख्य उपाय है -

- सीमा-शुल्क की उच्च दर को घटाना ।
- विसंगतियो की ठीक करना जैसे Inverted शुल्क ढाँचा ।
- एक मध्यका CENVAT (Central vaue added tax) की ओर संवहन के साथ का उत्पाद शुल्कों का विवेकीकरण ।
- गैर-कुन्दकीय, आत्म-संचालित तथा एकीकृत वस्तु करारोपण तंत्र पाने के लिए राज्य स्तर पर VAT(Value added tax) का प्रारम्भ ।
- अवलोकन योग्य निष्पति संकेतों की व्यवस्था करके व्ययों की उत्पादकता बढ़ाना ।
- आविष्कारी वित प्रबन्धन तंत्रों का प्रारम्भ जैसे ढाँचागत परियोजनाओं के लिए विशेष उद्देश्य वाहन (SPU) का सृजन ।

- The Fiscal Responsibility and Budget Management Act. (FRBMA) 2003 लागू है तथा यह आगम चालित राजकोषीय समेकन, श्रेष्ठ व्यय परिणामों तथा कर ढाँचे के विवेकीकरण पर जोर देता है ताकि मतिभ्रम दूर हो सकें एवं घरेलू माल तथा सेवाओं की अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक वातावरण में प्रतिस्पर्द्धा को सुधारा जा सकें ।

16.3 भारतीय अर्थव्यवस्था पर सुधारों का प्रभाव

आर्थिक सुधारों की प्रक्रिया लगभग पन्द्रह वर्ष पूरे कर चुकी है तथा उपलब्ध साक्ष्य बताते है कि भारतीय उद्योग 40 वर्षो से अधिक की संरक्षित अर्थव्यवस्था में पड़ाव डालने के बाद एक नये प्रतिस्पर्द्धी वातावरण से निपटने में भली प्रकार सफल रहा है । एक औसत आधार पर औद्योगिक विकास दर 1980 के दशक में 8 प्रतिशत रही थी, कुछ वर्षो में इसके नीचा हो जाने के बावजूद, हम देख सकते है 10 प्रतिशत से ऊपर की नई टिकाऊ विकास दर की सम्भावना का शुभारम्भ हुआ है । ऐसे सभी क्षेत्र जो प्रतिस्पर्द्धा की नई हवाओं के अधीन थे निश्चय ही बहुत अच्छा कर गुजरे । लाइसेंसिग के निराकरण ने फर्मो की प्रतिक्रिया को गति दी है, प्रतिस्पर्द्धा बढ़ी है तथा प्रतिस्पर्द्धा के सामने विकास को ही एकमात्र संरक्षण बताया है । आयात लाइसेंसिंग का निराकरण तथा टैरिफों को नीचे लाने से, विदेशी निवेशों में विचारणीय वृद्धि हुई है तथा भारत में आर्थिक सुधारो के सूत्रपात के पश्चात पूरी की जाने वाली औपचारिकताएँ घटी है ।

इन धनात्मक विकासों ने देश को यह सोचने के लिए प्रोत्साहित किया है कि इन सुधारों को और मजबूत किया जाये तथा दूसरी पीढ़ी के सुधारों की ओर बढ़ा जाये । लेकिन कई बाधाएँ भी है जिनको पहले दूर किया जाना चाहिये ये है -

1. **लक्ष्य स्तर के प्रति राजकोषीय अनुशासन पाने में असफलता -** राजकोषीय घाटे अभी भी बहुत ऊँचे है तथा इनको घटाने की अत्यन्त आवश्यकता है । यह अपेक्षा करता है-

- और अधिक आगम जुटाने के लिए कर प्रशासन में सुधार
- अनुदानों में कटौती
- सरकार का आकार घटाना
- अधिक दृढ़ निजीकरण
- योजना कार्यक्रमों की प्राथमिकताएँ पुन: देखना

2. **औद्योगिक विनियम को पूरी तरह लागू करने में असफलता -** औद्योगिक लाइसेंसिंग की समाप्ति तथा उद्योगों को विदेशी निवेश के लिए खोलना प्रथम पीढ़ी के सुधारों का एक महत्वपूर्ण भाग है । इस दिशा में निश्चय ही हम काफी आगे बढ़े है । लेकिन विनियोजको को अभी भी प्रकल्पों के क्रियान्वयन में अनेक कठिनाइयाँ सहन करनी पड़ती है ।

3. **व्यापार के लिए अर्थव्यवस्था का पूरी तरह से न खोला जाना -** हमको महत्वपूर्ण टैरिफ विसंगतियों की स्पष्ट पहचान करनी चाहिये, तथा उनके निराकरण हेतु एक चरणबद्ध कार्यक्रम बनाना चाहिये । इसके अतिरिक्त हमारी डम्पिंग-विरोध तंत्र तथा प्रतिधियों भी सशक्त होनी चाहिये ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि भारतीय उद्योग अनुचित प्रतिस्पर्द्धा के शिकार न होने पायें ।

4. **तदर्थ तथा अनियोजित विनिवेश -** निजीकरण तथा विनिवेश का कार्यक्रम एक गैर नियोजित तरीके से आगे बढ़ाया गया । पारदर्शिता की कमी जो इन कार्यक्रमों के सम्बन्ध में देखी गई उसने आम

जनता के मस्तिष्क में संदेहों को जन्म दिया है । वे आर्थिक सुधारों तथा निजीकरण की आवश्यकता पर प्रश्न उत्पन्न करने लगे है । अत: यह आवश्यक है कि विनिवेश का तरीका तथा विशिष्ट चयन का विवेक पारदर्शी होना चाहिये ।

5. **धीमे वितीय क्षेत्र में सुधार -** वित्त क्षेत्र तथा बैंकिग सुधारों को आगे बढ़ाये जाने की जरूरत है ।

6. **ढाँचागत सुविधाओं की वित्त व्यवस्था -** अर्थव्यवस्था के तीव्र विकास की अभिप्राप्ति एक अत्यन्त अच्छी गुणवता की आधारभूत सुविधाओं की माँग करती है । दुर्भाग्य से, हमारी आधारभूत सुविधाऐ जिनमें शामिल है सड़के, पॉवर, बन्दरगाह, दूरसंचार आदि अपर्याप्त है । उनकी मात्रा में काफी कमियाँ है तथा साथ ही गुणवता में गम्भीर खामियाँ । इन सभी क्षेत्रों में सार्वजनिक निवेश की भूमिका महत्वपूर्ण बनी रहेगी लेकिन आवश्यकता का पैमाना कुछ ऐसा है कि निजी निवेश द्वारा इसको पूरा किया जाना चाहिए । लेकिन इसके लिए उधोगपतियों को पर्याप्त प्रोत्साहन मिलने चाहिये।

उपरोक्त के अतिरिक्त आज यह जरूरत है कि -

- राज्यों तक सुधारों का विस्तार किया जाये ।
- श्रम सन्नियमों का संशोधन किया जाये ताकि वे अन्य देशों के सामन हो सकें ।
- कालतीत कानूनों को समाप्त जाये, कानूनी प्रक्रियाओं को छोटा किया जाये ताकि न्याय मिल सके, केसों / नियमों की भाषा में स्पष्टता लाकर वैधानिक प्रणाली को मजबूत बनाया जाये ताकि वे किसी भी भ्रांति के शिकार न हो ।

16.4 आर्थिक सुधारों का मूल्यांकन

आर्थिक सुधार प्रारम्भ हुए लगभग 14 वर्ष हो चुके हैं जिनके प्रभाव भारतीय अर्थव्यवस्था पर परिलक्षित होने लगे हैं जिनका मूल्यांकन निम्न बिन्दुओं के आधार पर किया जा सकता है-

1. **सकल देशीय उत्पाद की वृद्धि दर -** निःसंदेह रूप से यह कहा जा सकता है कि आर्थिक सुधारों के परिणाम स्वरूप सकल देशीय उत्पाद (GDP) में औसत वृद्धि दर 7.0% रही जो उल्लेखनीय है कि किन्तु पूर्व दशक (1980-90) में वृद्धि दर 5.6% थी जिस से स्पष्ट होता है कि सुधार प्रक्रिया अपनी अत्याधिक श्रेष्ठता स्थापित नही कर सकी ।

2. **निर्धनता में कमी-** भारतीय अर्थव्यवस्था में गरीबी कम करने के प्रयासों के परिणामस्वरूप 1980 से 1990 के

दशक में लगभग 3.1% की दर से वार्षिक कमी हुई जो 1990 के दशक में घटकर 1% हो गयी । विश्व बैंक में प्रकाशित एक लेख में महत्वपूर्ण तथ्य उभरकर समाने आया कि 1990 के दशक मे वृद्धि दर और गरीबी में कमी का संबंध बना रहा किन्तु ग्रामीण क्षेत्र में गरीबी में कमी ग्राम विकास के अभाव में अवरूद्ध हो गयी ।

3. **रोजगार -** 1983-1990 के बीच रोजगार वृद्धि दर लगभग 2.39% प्रतिवर्ष रही जिससे यह आशा बनी कि यह वृद्धि दर अगले दशक में भी जारी रहेगी तथा पूर्वगत बेरोजगारी (Backlog of Employment) में यह न केवल घटकर 1% हो गयी बल्कि आर्थिक सुधार केवल संगठित क्षेत्र तक सीमित रहे ।

4. **आर्थिक सुधार और श्रम -** आर्थिक सुधार के परिणाम स्वरूप न केवल हड़ताल, तालाबंदी, अनिवार्य सेवानिवृति में वृद्धि हुई बल्कि श्रमिकों संगठित क्षेत्र से असंगठित क्षेत्र की तरफ भेजा गया जिससे सुरक्षित रोजगार असुरक्षित रोजगार में परिवर्तित हुआ ।

5. **उत्पादिता में वृद्धि और वास्तविक मजदूरी -** 1988-94 के अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ उत्पादिता में 3.32% की औसत वार्षिक वृद्धि हुई जबकि इस अवधि में वास्तविक मजदूरी की वृद्धि केवल 1% प्रति वर्ष रही जो यह स्पष्ट करती है कि आर्थिक सुधारों का लाभ श्रमिकों से नियोजकों को मिला ।

6. **कृषि की उपेक्षा -** यदि खाद्यान्न की तुलना की जाये तो खाद्यान्न उत्पादन 1980-81 में 1296 लाखटन से बढ़कर 1990-91 में 1764 लाख रू. हो गया । इस प्रकार खाद्यान्न में 3.1% वार्षिक वृद्धि हुई किन्तु आर्थिक सुधारों की दस वर्षीय अवधि के दौरान खाद्यान्न उत्पादन1764 लाख रू. से बढ़कर 2003-04 में 2120 लाख रू. हो गया अर्थात 1.4% की औसत वार्षिक वृद्धि दर रही जो जनसंख्या वृद्धि दर की तुलना में कम थी जिससे स्पष्ट होता है कि आर्थिक सुधारों में कृषि की उपेक्षा हुई जिसकी भारी कीमत चुकानी पड़ सकती है ।

7. **औद्योगिक विकास -** आर्थिक सुधारों का मुख्य उद्देश्य उन अड़चनों को दूर करना था जो औद्योगिक उत्पादन में रूकावट है इस उद्देश्य के लिये उठाये गये कदमों के परिणाम निम्न सारणी से स्पष्ट है ।

औद्यौगिक उत्पादन की वार्षिक वृद्धि दरें

क्षेत्र	1981-82 से 1990-91 (%)	1993-94 से 2001-02 (%)
विनिर्माण	7.6	7.0
बिजली	9.0	6.0
खनन एवं खदान	8.3	3.5
सामान्य सूचकांक	7.8	6.6

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि जहा तक औद्योगिक प्रक्रिया का सम्बन्ध है औद्योगिक उत्पादन के सूचकांक की औसत वार्षिक वृद्धि दर सुधार पूर्व काल (1981-82) के दौरान 7.8% थी परन्तु यह सुधार उपरान्त काल (1993-94) से 2001-02 मे मन्द होकर 6.6% हो गयी । अत: औद्योगिक उत्पादन को प्रोत्साहन देने की प्रत्याशा वास्तविक रूप धारण नही कर सकी ।

8. **आधार भूत संरचना -** 1980-81 से 2001-02 की अवधि के दौरान आधार भूत संरचना उद्योगो के सूचकांक के विश्लेषण से स्पष्ट हुआ कि इस्पात और सीमेन्ट मे सुधार उपरान्त काल में वृद्धि हुई जबकि अन्य आधारभूत संरचना के उद्योगों बिजली, कोयला, पेट्रोलियम आदि में अच्छी वृद्धि नहीं हुई ।

9. **विदेशी व्यापार एवं भुगतान शेष -** सुधार उपरान्त काल में विदेशी व्यापार की स्थिति संतोषजनक रही । आयात की तुलना में निर्यात में अपेक्षाकृत अधिक वृद्धि हुई व्यापार घाटे में वृद्धि हुई, परन्तु इसकी पूर्ति अदृश्य मदों के अतिरेक से की जा सकी तथा 2001-04 तक चालू खाते पर भुगतान शेष का सकारात्मक हो जाना सराहनीय उपलब्धि कहा जा सकता है इसे निरन्तर बनाये रखने की आवश्यकता है ।

10. **विदेशी निवेश -** सुधार प्रक्रिया का मुख्य उद्देश्य विदेशी निवेश के निर्बाध प्रवाह को प्रोत्साहित करना है। हालाँकि विदेशी निवेश की स्वीकृतियाँ जो 1992 में 1.78 अरब डीलर की वह बढ़कर 1995 में 11.24 अरब डॉलर और 1997 में से और अधिक बढ़कर 15.75 अरब डॉलर हो गयी । किन्तु ऑकड़े यह भी स्पष्ट करते है कि 1991-98 के दौरान जहाँ स्वीकृतियों 55.11 अरब डॉलर दी गयी वही वास्तविक प्रवाह केवल 11.96 अरब डॉलर जो स्वीकृतियों का केवल 21.7% था ।

11. **क्षेत्रीय असमानताएं -** किसी भी राष्ट्र के लिये विकास का मुख्य उद्देश्य क्षेत्रीय असमानताओं को कम करना है किन्तु आर्थिक सुधारों द्वारा योजना आयोग के डी. एम. कुरीयन में अपने अध्ययन में स्पष्ट किया कि सुधार उपरान्त काल में निवेश प्रस्तावों का से भी अधिक हिस्सा विकसित राज्यों में हुआ है ।

16.5 साराश

आठवें दशक के मध्य तक, भारतीय अर्थव्यवस्था इस दृष्टि से एक नियंत्रित अर्थव्यवस्था थी कि सार्वजनिक क्षेत्र को अहम भूमिका दी गई थी तथा निजी क्षेत्र अनेक अधिनियमों की सहायता से पूरी तरह नियंत्रित था जैसे औद्योगिक विकास एवं नियमन अधिनियम, विदेशी नियंत्रण अधिनियम, एकाधिकार तथा प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार अधिनियम तथा और अनेक कानून । इन सभी अधिनियमों तथा विधानों ने आगे बढ़ने के लिए निजी क्षेत्र का पहला कदम छोड़ दिया तथा अकार्यक्षमतग़ओं, भ्रष्टाचारों तथा कुप्रबन्धो को जन्म दिया । चुनौती का सामना करने के लिए औद्योगिक, वितीय, बाहरी तथा राजकोषीय क्षेत्रों में आर्थिक सुधारों का सूत्रपात किया गया। इन सुधारों के फलस्वरूप भारत में अनेक सकारात्मक परिवर्तन हुए जैसे विकास की परिष्कृत दर, अपेक्षाकृत कम मूल्य, अधिक कार्यक्षमता तथा प्रतिस्पर्द्धा। लेकिन राजकोषीय अनुशासन पाने में असफलता, तदर्थवाद, धीमें वितीय सुधार तथा अर्थव्यवस्था को पूरी तरह से न खोल पाना अभी भी आर्थिक सुधारों की प्रगति में अवरोधक बना हुआ है ।

निष्कर्ष -

यह बात स्वीकार की गयी है कि सुधार प्रक्रिया अपने विकास संबंधी लक्ष्यों को प्राप्त नही कर सकेगी क्योंकि निजी क्षेत्र केवल लाभ वाले क्षेत्रों में प्रवेश करता है । राष्ट्रपति के. आर. नारायणन ने अपने संदेश में कहा कि आर्थिक सुधारों का विकास बढ़ती हुई क्षेत्रीय असमानताओं की ओर संकेत करता है ।

16.6 अभ्यास प्रश्न

1. आर्थिक सुधार से आप क्या समझते है?
2. भारत में आर्थिक सुधारों के विभिन्न चरणों के बारे में बताइये ।
3. आर्थिक सुधार किन प्रमुख क्षेत्रों में प्रारम्भ किए गए?
4. भारतीय अर्थव्यवस्था पर आर्थिक सुधारों का क्या प्रभाव पडा है?
5. भारत में आर्थिक सुधारों का मूल्यांकन कीजिए ।

16.7 संदर्भ पुस्तकें

भारतीय अर्थव्यवस्था (जगदीश नारायण मिश्र)

भारतीय अर्थशास्त्र (जी.सी.सिंघई)

भारतीय अर्थव्यवस्था (मिश्रा, पुरी)

भारतीय अर्थव्यवस्था (रूद्दत एवं सुन्दरम)

इकाई-17: भुगतान संतुलन एवं आयात निर्यात नीति (Balance of Payment and Export Import Policy)

इकाई की रूपरेखा :

17.1 उद्देश्य

17.2 प्रस्तावना

17.3 भुगतान संतुलन-अर्थ एवं परिभाषा

17.4 भुगतान संतुलन एवं व्यापार संतुलन में अन्तर

17.5 भुगतान संतुलन का महत्व भारत में

17.6 भुगतान संतुलन की वर्तमान स्थिति

17.7 भारत के भुगतान संतुलन की प्रतिकूलता के कारण

17.8 भारत की आयात-निर्यात नीति

17.9 भारत की आयात-निर्यात नीति के मुख्य तत्व

17.10 सारांश

17.11 अभ्यास प्रश्न

17.12 संदर्भ

17.1 उद्देश्य

1. विद्यार्थियों को देश के भुगतान संतुलन की स्थिति से अवगत करवाना ।
2. भारतीय भुगतान संतुलन की प्रमुख मदों की जानकारी प्रदान करना ।
3. भारत के भुगतान संतुलन के प्रतिकूल रहने के कारणों का अध्ययन करना ।
4. भारत की निर्यात नीति की जानकारी प्रदान करना ।

17.2 प्रस्तावना

स्वाधीनता से पूर्व भारत का भुगतान संतुलन सामान्यत: अनुकूल रहा करता था । स्वधीनता के पश्चात् जब से योजनागत विकास का मॉडल अपनाया गया विकास जनित दबाव के कारण देश का भुगतान संतुलन प्रतिकूल रहने लगा तथा देश के समक्ष भुगतान संतुलन की समस्या उत्पन्न होने लगी। वैश्वीकृत अर्थव्यवस्था के पश्चात् यद्यपि भारत के निर्यातों में अवश्य वृद्धि हुई पर वैश्वीकृत अर्थव्यवस्था के दबाव के कारण भारत का भुगतान संतुलन प्रतिकूल ही रहा है । स्वाधीनता के समय सन् 1948-49 में भारत का भुगतान संतुलन 260 करोड़ रूपये से प्रतिकूल रहा । स्वाधीनता के पश्चात तात्कालीन समय एक और स्वदेशी वस्तुओं के प्रति दबाव एवं विभाजन के कारण अर्थव्यवस्था में हुए असंतुलन तथा देश में खाद्यान्नों एवं कच्चे माल की पूंजी ने देश के भुगतान संतुलन को लगातार प्रतिकूल बनाए रखा । देश में योजनाओं के माध्यम से विकास के प्रयास किये गये । प्रथम योजना काल में यद्यपि व्यापार संतुलन -541.9 करोड़ रू. से प्रतिकूल रहा तथापि यह अदृश्य मदों में +499.6 करोड़ रू. से अनुकूल रहा किन्तु फिर भी भुगतान संतुलन -42.3 करोड़ रू. से प्रतिकूल रहा । इसी प्रकार द्वितीय योजना काल में औद्योगिक विकास को प्राथमिकता प्रदान की गयी, किन्तु फिर भी देश का व्यापार संतुलन -2339.0 करोड़ रु. सें प्रतिकूल रहा । अदृश्य मदों से प्राप्त शुद्ध आय +614.7 करोड़ रु. रही

फिर भी इस काल में भुगतान संतुलन -1724.6 करोड़ रु. से प्रतिकूल रहा है । द्वितीय योजना में देश में आधारभूत उद्योगों में विकास के लिए भारी मात्रा में मशीनरी का आयात करना पड़ा । यद्यपि प्रथम पंचवर्षीय योजना में कृषि विकास पर बल दिया गया था तथापि द्वितीय योजना काल में इस क्षेत्र में प्रगति धीमी ही रही । अत: कृषि उत्पादों का वांछित निर्यात संवर्धन सम्भव नहीं हो सका । द्वितीय पंचवर्षीय योजना में विकासात्मक कार्यो हेतु बल दिया गया । फिर भी देश के निर्यात में वांछित वृद्धि दिखाई नहीं देती है । साथ ही देश में विकासात्मक कार्यो को गति प्रदान करने हेतु न्यूनतम आयात आवश्यक हो जाते है ।

तृतीय योजना काल में भारत के भुगतान संतुलन में प्रतिकूलता बढ़ती जा रही थी । देश के पड़ोसी देशों से सामरिक सुरक्षा के कारण भुगतान प्रतिकूल रहता आया है । इस योजना काल में देश के निर्यातों में पर्याप्त वृद्धि हुई है, किन्तु आयातों में कमी किया जाना संभव नहीं हो सका और भुगतान संतुलन प्रतिकूल ही रहा । तृतीय पंचवर्षीय योजनाओं के पश्चात् वार्षिक योजनाओं की अवधि में भी भुगतान संतुलन प्रतिकूल ही रहा । देश के अकाल एवं युद्ध जनित आर्थिक संकट के कारण भुगतान संतुलन ओर भी प्रतिकूल हो गया । चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में भी भारत का भुगतान संतुलन अनुकूल नही रहा यद्यपि इसे योजना काल में निर्यात वृद्धि हेतु समेकित प्रयास किये गये । पांचवी योजना में गरीबी उन्नमूलन हेतु देश में गरीबी हटाओ का नारा दिया गया तथा देश के विकास हेतु एकीकृत प्रयास किया गया, तथापि इस योजना में भी भुगतान संतुलन प्रतिकूल ही रहा । इसी प्रकार छठी योजना से लेकर दसवीं योजना तक प्रत्येक योजना में विकास हेतु प्रयास किये गये । फलस्वरूप देश के निर्यातों में आशातीत वृद्धि हुई । नवीं पंचवर्षीय योजना सेज निर्यात आधारित उद्योग स्थापित किये गये । विदेशी विनियोग को प्रोत्साहन दिया गया । किन्तु फिर भी देश का भुगतान संतुलन अनेक कारणों से प्रतिकूल ही रहता आया है । देश के भुगतान संतुलन की लम्बी अवधि से प्रतिकूलता देश की अर्थव्यवस्था के समक्ष चुनौती के रूप में हमारे सामने है ।

भारत के भुगतान संतुलन की वर्तमान स्थिति के अध्ययन से पूर्व संक्षेप में व्यापार संतुलन एवं भुगतान संतुलन का अर्थ एवं उनका देश की अर्थव्यवस्था के लिए महत्त्व का अध्ययन किया जाना उचित होगा ।

17.3 भुगतान संतुलन - अर्थ एवं परिभाषा

भुगतान संतुलन से तात्पर्य देश के सम्पूर्ण आयातों, निर्यातों एवं अन्य सेवाओं के बाजार मूल्य के विवरण से लगाया जाता है । इसमें देश की विदेशी मुद्रा की लेनदारियों एवं देनदारियों का विवरण रहता है ।

लेनदारियो एवं देनदारियों के अन्तर को भुगतान संतुलन कहा जाता है । इस प्रकार भुगतान संतुलन किसी देश के अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय व्यवहारों का विवरण होता है ।

भुगतान संतुलन की कुछ प्रमुख परिभाषाएं इस प्रकार है :-

प्रो. वाल्टर क्रासे (Walter Krause) के अनुसार "भुगतान संतुलन किसी देश के नागरिकों एवं शेष विश्व के नागरिकों के बीच एक विशेष समय में साधारणत: एक वर्ष में किये गये समस्त आर्थिक लेनदेनों का एक व्यवस्थित अभिलेख है । "

प्रो. पीटी एल्सवर्थ (P.T. Ellsworth) के अनुसार "भुगतान संतुलन एक देश के निवासियों का शेष विश्व के निवासियों के मध्य किये गये समस्त लेनदेनों का लिखित विवरण है । यह किसी निश्चित समय-सामान्यत: एक वर्ष के लिये होता है । "

प्रो. बेन्हम (Benham) के अनुसार "किसी देश का भुगतान संतुलन उस देश का शेष विश्व के साथ किसी निश्चित समय अवधि में किये जाने वाले मौद्रिक लेन-देन का विवरण है । **प्रो. हबरलर** कहते है कि भुगतान संतुलन शब्द का प्रयोग कई अर्थो में किया जा सकता है । आपके अनुसार भुगतान संतुलन का प्रयोग पांच अर्थो में किया जाता है । जैसे - निश्चित अवधि में क्रय एवं विक्रय की गयी विदेशी मुद्रा की मात्राएं, एक निश्चित अवधि में देश को प्राप्त भुगतान एवं देश के नागरिकों द्वारा किये गये भुगतान, आय खातों पर भुगतान संतुलन, अन्तर्राष्ट्रीय ऋणग्रस्थता के संतुलन से भी लगाया जाता है, भुगतान संतुलन शब्द का प्रयोग विदेशी मुद्रा की मांग एवं पूर्ति संबंधी परिस्थिति के अर्थ में किया जाता है ।

इस प्रकार उपर्युक्त परिभाषाओं में से **क्रासे** द्वारा दी गयी परिभाषा को उचित परिभाषा कहा जा सकता है । वास्तव में यदि देखा जाय तो भुगतान संतुलन के अध्ययन से हमें यह पता चलता है कि हम विदेशों से क्या प्राप्त कर रहे हैं तथा कितना हमें भुगतान करना है । देश की बदलती हुई आर्थिक स्थिति का अनुमान भुगतान संतुलन से लगाया जा सकता है । भुगतान संतुलन किसी देश के लिए एक आर्थिक स्थिति मापक (Barometer) है । जिसमें उस देश की आर्थिक स्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है ।

व्यापार संतुलन - अर्थ एवं परिभाषा

व्यापार संतुलन किसी देश के आयातों एवं निर्यातों के अन्तर को प्रकट करता है । व्यापार संतुलन अनुकूल या प्रतिकूल रहता है । जब आयात अधिक होते हैं तथा निर्यात कम होते है तो प्रतिकूल व्यापार संतुलन कहलाता है । जब निर्यात आयातों के तुलना में अधिक होते हैं तो व्यापार संतुलन अनुकूल कहलाता है । इस प्रकार व्यापार संतुलन में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के दृश्य मदों की गणना की जाती है । दृश्य मदों से तात्पर्य वस्तुओं के आयात एवं निर्यात से लगाया जाता है जिन्हें बन्दरगाहों पर लेखांकित किया जाता है । प्रो. बेन्हम ने व्यापार संतुलन की परिभाषा करने का प्रयास किया है उनके अनुसार "एक देश का व्यापार संतुलन किसी निश्चित अवधि के मध्य उसके आयातों एवं निर्यातों के मूल्यों के बीच संबंधों को दर्शाता है । "

17.4 भुगतान संतुलन एवं व्यापार संतुलन में अन्तर

वस्तुत: व्यापार संतुलन भुगतान संतुलन का एक अंग है । व्यापार संतुलन में मांग वस्तुओं के आयात एवं निर्यात को सम्मिलित किया जाता है । जबकि भुगतान संतुलन के अन्तर्गत वस्तुओं के आयात निर्यात के अतिरिक्त अन्य सेवाओं इत्यादि को भी सम्मिलित किया जाता है । इस प्रकार व्यापार संतुलन में केवल दृश्य मदों का समावेश किया जाता है जबकि भुगतान संतुलन में दृश्य एवं अदृश्य दोनों मदों का समावेश किया जाता है । भुगतान संतुलन एवं व्यापार' संतुलन में निम्नानुसार अन्तर प्रकट किया जा सकता है :-

1. भुगतान संतुलन एक व्यापक शब्द है इसमें व्यापार संतुलन भी सम्मिलित होता है ।

2. भुगतान संतुलन सदैव सन्तुलित रहता है जबकि व्यापार संतुलन अनुकूल या प्रतिकूल हो सकता है ।
3. भुगतान संतुलन में विदेशी व्यापार के दृश्य एवं अदृश्य दोनों मदों को सम्मिलित किया जाता है जबकि व्यापार संतुलन में केवल दृश्य मदों को ही सम्मिलित किया जाता है ।
4. वस्तुओं एवं सेवाओं के आयात निर्यात का अंतर भुगतान संतुलन कहलाता है जबकि केवल वस्तुओं के आयात एवं निर्यात का अन्तर व्यापार संतुलन कहलाता है ।
5. भुगतान संतुलन के अध्ययन में किसी देश की आर्थिक स्थिति का विश्लेषण किया जा सकता है जबकि व्यापार संतुलन के अध्ययन में केवल आर्थिक विकास की स्थिति का पता चलता है ।

17.5 भुगतान संतुलन का महत्त्व

किसी देश के लिए भुगतान संतुलन का अध्ययन अत्याधिक महत्त्वपूर्ण होता है । क्योंकि यदि किसी देश के भुगतान संतुलन का अध्ययन यदि गंभीरता से किया जाय तो उस देश की आर्थिक स्थिति का पता लगाया जा सकता है । किसी देश के लिए भुगतान संतुलन का अध्ययन निम्नांकित दृष्टि से महत्त्वपूर्ण होता है :-

1. भुगतान संतुलन इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि इसमें हमें यह ज्ञात होता है कि हम विदेशों से क्या प्राप्त करते है तथा कितना भुगतान करते है ।
2. भुगतान संतुलन देश की आर्थिक स्थिति का मापन करता है । इसके सतत अध्ययन से देश की आर्थिक स्थिति का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है ।
3. भुगतान संतुलन की अनुकूलता एवं प्रतिकूलता के माध्यम से देश की चिन्ताजनक आर्थिक स्थिति अथवा संतोषजनक आर्थिक स्थिति का पता लगाया जा सकता है ।
4. विकासशील देश भुगतान संतुलन के माध्यम से विदेशी पूंजी की निर्भरता का अनुमान लगाते है जबकि विकासित देश विदेशी विनियोग एवं आय प्राप्ति का अनुमान लगाते है ।
5. व्यापार संतुलन की तुलना में भुगतान संतुलन का सापेक्षिक महत्त्व है ।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि किसी देश के लिए भुगतान संतुलन का अध्ययन महत्त्वपूर्ण है । इसकी अनुकूलता सुदृढ़ आर्थिक स्थिति को दर्शाती है जबकि प्रतिकूलता देश के लिए खतरे की घंटी होती है ।

17.6 भारत में भुगतान संतुलन की वर्तमान स्थिति

भारत के भुगतान संतुलन की वर्तमान स्थिति का विश्लेषण किया जाय तो सन् 1990 से लगातार भुगतान संतुलन एवं व्यापार संतुलन में प्रतिकूलता की स्थिति दिखायी देती है । चालू खाता शेष में घाटे में कुछ अधिक वृद्धि की प्रवृत्ति दिखाई नहीं देती है । अर्थव्यवस्था में खुलेपन को स्वीकार करने के कारण यह अवधि संक्रमण काल की अवधि रही । इस अवधि में देश की अर्थव्यवस्था एवं भुगतान संतुलन में सुदृढ़ता अवश्य दिखाई देती है । सारणी क्रमांक 17.1 में भारत के भुगतान संतुलन का सारांश दर्शाया गया है :-

सारणी 17.1

भारत का भुगतान संतुलन (सारांश)

(मिलियन अमरीकी डालर में)

	1990-91	1997-98	1998-99	1999-00	2000-01	2001-02	2002-03	2003-04	2003-04	2004-03
										(April-sp)
1. निर्यात	18477	35680	34298	37542	45452	44703	53774	64723	27960	34451
2. आयात	27915	51187	47544	55383	57912	56277	64464	80177	37319	51892
3. व्यापार शेष	-9438	-1550 7	-13246	-17841	-12460	-11574	-10690	-15454	-9359	-17441
4. अदृश्य (निवल)	-242	10007	9208	13143	9794	14974	17035	26015	11550	14182
कारक-भिन्न सेवाएं	980	1319	2165	4064	1692	3324	3643	6591	1726	4724
आय	-3752	-3521	-3544	-3559	-5004	-4206	-3446	-3972	-1600	-1917
निजी अंतरण	2069	11830	10280	12256	12854	15398	16387	22833	11270	11114
सरकरी अंतरण	461	379	307	382	252	458	451	563	154	258
5. चालू खाता शेष	-9680	-5500	-4038	-4698	-2666	3400	6345	10561	2191	-3259
6. विदेशी सहायता (निवल)/	2204	885	799	891	410	1117	-3128	-2742	-216	363
7. वाणिज्यिक उधार (निवल)/	2254	4010	4367	333	4303	-1585	-1692	-1526	167	2120
8. अ.भु. को (निवल)	1214	-618	-393	-260	-26	0	0	0	0	0
9. अनिवासी जमा (निवल)	1537	1125	960	1540	2316	2754	2978	3642	2190	-1250
10 रुपया ऋण शोधन (निवल)	-1193	-767	-802	-711	-611	-519	-474	-376	-303	-279
11 विदेशी निवेश (निवल) जिसमें	103	5353	2312	5117	5862	6686	4161	14477 6	5122	2554
1.वि.प्र.नि. (निवल)	97	3525	2380	2093	3272	4734	3217	3420	1610	2042
2. वि.सं.नि.	0	979	-390	2135	1847	1505	377	10918	3287	339
3.यूरो इक्विटी और अन्य	6	849	322	889	743	447	567	438	225	173
12 अन्य प्रवाह (निवल)	2283	-595	624	3930	-3739	-96	8795	7086	4905	6641
13 पूंजी खाता जोड़ (निवल)	8402	9393	7867	10840	8509	8357	10640	20860	11865	10149
14 प्रारक्षित उपयोग (वृद्धि)	1278	-3893	-3829	-6142	-5868	-11757	-16985	-31421	-14056	-6890

@आकड़ों में वर्ष 1998-99 में रिसर्जेंट इंडिया बांड और 200-2001 में इंडिया मिलेनियम जमाओं की प्राप्ति और परवर्ती वर्षा में संबंधित वापसी-अदायगियां यदि कोई हो, शामिल है ।
$इसमें अन्यों के साथ-साथ विलम्बित निर्यात प्राप्तियां और भूल-चूक शामिल है ।
स्त्रोत्र : भारतीय रिजर्व बैंक।

सारणी 17.1 में वर्णित भुगतान संतुलन की स्थिति का यदि विश्लेषण किया जाय तो एक ओर जहां निर्यातों में अपेक्षाकृत वृद्धि दिखाई दे रही है । वहीं भारत के विपरीत आयातों में भी वृद्धि का क्रम है । सन् 1990 में जहां 18477 मिलियन अमेरिकी डालर थे तथा इसी वर्ष आयात 21915 अमरीकी डालर थे किन्तु सन् 2003-04 में जहां निर्यात 64723 अमेरिकी डालर की तुलना में आयात 80177 अमरीकी डालर रहे । तथा व्यापार संतुलन -15454 अमरीकी डालर से रहा । सारणी 17.1 से यह स्पष्ट होता है चालू खाते के शेष में जरूर मजबूती दिखाई देती है ।

जहां सन् 1990 में चालू खाता शेष -9680 अमरीकी डीलर था वही सन् 2003-04 तक यह बढ़कर 10661 अमरीकी डालर की मजबूती की स्थिति पर रहा । सरकार चालू खाते में बढ़ता अधिशेष चालू दशक में भारत के भुगतान संतुलन की प्रमुख विशेषता रही है । चालू शेष की मजबूती का प्रमुख कारण एशियाई अर्थव्यवस्थाओं यथा चीन, हांगकांग, जापान, कोरिया, मलेशिया, फिलपिन्स सिंगापुर, ताईवान तथा थाईलेण्ड एवं दक्षिणी पूर्वी एशियाई अर्थव्यवस्थाओं अर्थात कोरिया, मलेशिया, फिलिपिन्स सिंगापुर इत्यादि अर्थव्यवस्था में विशेष व्यापरिक संबंध स्थापित होना है । इसके बावजूद भारत के पण्य व्यापार में घाटे के कारण भुगतान संतुलन प्रतिकूल ही रहा है ।

किन्तु फिर भी अन्य बातों के साथ-साथ भारत की साफ्टवेयर सेवाओं के निर्यात मे तीव्र वृद्धि हुई जहां 1995-96 में केवल 10.2 प्रतिशत भाग कुल निर्यात में साफ्टवेयर सेवाओं का था वहीं यह वर्तमान मे बढ़कर 48.9 प्रतिशत हो गया है । इसके अतिरिक्त सूचना प्रोद्योगिकी एवं आउटसोर्सिंग सेवाएं भी अत्यधिक संतोषजनक रही है । इन सेवाओं में विगत पांच वर्षो में छः गुना से भी अधिक वृद्धि हुई है । पर्यटन क्षेत्र में भी तेजी से संतोषजनक वृद्धि दिखाई देती है । इस प्रकार यद्यपि भारत का भुगतान संतुलन प्रतिकूल अवश्य है तथापि इसमें मजबूती के चिन्ह दिखाई दे रहे है । पण्य व्यापार (मर्केन्टाइल ट्रेड) की तुलना में सेवा व्यापार (सर्विस ट्रेड) वैश्विक व्यापार मेट्रिक्स में निरन्तर बहुत महत्वपूर्ण होता जा रहा है । इस प्रकार सेवा व्यापार में भारत जैसे देशों में जहां बहुत सी सेवाओं की अच्छी संभावना है । विशेष महत्व है ।

17.7 भारत के भुगतान संतुलन की प्रतिकूलता के कारण

भारत के समक्ष एक ओर बढ़ती जनसंख्या की आवश्यकता पूर्ति करने की चुनौती है तो दूसरी ओर वैश्विक अर्थव्यवस्था मे अपना स्थान प्राप्त करना तथा उसे बनाये रखना है । इस प्रकार आवश्यकता जनित दबावों के कारण देश के आयात-निर्यातों की तुलना में सदैव अधिक रहते आए है । और भुगतान संतुलन सदैव प्रतिकूल रहा है । यदि भारत के भुगतान संतुलन के कारणों का विश्लेषण किया जाय तो स्पष्ट होता है कि देश में विविध कारणों से निर्यातों की तुलना में आयात अधिक हो रहे है । देश में विकासात्मक कार्यक्रमों के कारण विनियोग वृद्धि हो रही है । यद्यपि निर्यात वृद्धि हेतु भरसक प्रयास किये जा रहे है तथापि निर्यात संवर्धन आयातों की तुलना में कम ही हो पाता है । देश में बढ़ती जनसंख्या तथा श्रेष्ठ जीवन जीने की चाह हमें आयात वृद्धि हेतु प्रोत्साहित कर रहे हैं । स्वदेशी उत्पादन का एक बड़ा भाग घरेलू मांग की पूर्ति में ही खप जाता है ।

वैश्विक प्रतिस्पर्धा की इस दौड़ में भारतीय उद्योग अभी खरे नही उतर रहे हैं। भारतीय वस्तुओं की मांग एवं मूल्यों में अस्थिरता की प्रवृत्ति दिखाई देती है। फलस्वरूप भारत का भुगतान संतुलन अनुकूल नही हो पा रहा है। यद्यपि विगत कुछ वर्षो में इसमें मजबूती की प्रवृत्ति अवश्य दिखाई दे रही है। भारत के भुगतान संतुलन की प्रतिकूलता के कारणों को निम्नांकित बिन्दुओं में व्यक्त किया जा सकता है :-

(1) विकासजनित दबाव के कारण आयातों की अधिकता

भारतीय अर्थव्यवस्था विकासशील अर्थव्यवस्था है। तथा विकास जनित आवश्यकता पूर्ति हेतु देश के आयातों में कमी किया जाना संभव नहीं हो पा रहा है। मशीनरी, पेट्रोलियम पदार्थ एवं नयी तकनीक की आवश्यकता एवं उसके उपयोग के फलस्वरूप भुगतान संतुलन प्रतिकूल रह रहा है।

(2) बढ़ती जनसंख्या की आवश्यकता पूर्ति एवं प्रदर्शन प्रभाव

भारतीय अर्थव्यवस्था की स्थिति उस दो राहे पर खड़ी है जहां एक ओर उसे अपने देश की समग्र मांग की पूर्ति करनी है वहीं दूसरी ओर सूचना क्रांति एवं यातायात एवं संदेशवाहन के साधनों के विस्तार के कारण नागरिकों का संपर्क अन्य एशियाई, यूरोपीय एवं अमरीकी नागरिकों से हो रहा है। फलस्वरूप इन देशों मे उपयोग मे ली जाने वाली विलासिता की वस्तुओं की मांग हमारे देश में तेजी से बढ़ रही है। पाश्चात्य सभ्यता के त्यौहार भी हमारे देश में मनाये जाने लगे है। फलस्वरूप देश में प्रदर्शन प्रभाव पूर्णत: कार्य कर रहा है तथा न चाहते हुए भी इन देशों से वस्तुएं आयात की जा रही है। तुलनात्मक रूप से विदेशों में देशी वस्तुओं की मांग नहीं बढ़ रही है तथा भुगतान संतुलन प्रतिकूल बना हुआ है।

(3) वैश्विक अर्थव्यवस्था में श्रेष्ठ ख्याती का अभाव

विश्व के व्यापार मानचित्र पर भारतीय अर्थव्यवस्था उभरती हुई अर्थव्यवस्था है, किन्तु ढांचागत विकास की कमी, उर्जा संकट एवं अन्य आवश्यक सेवाओं के अभाव के कारण वैश्विक प्रतिस्पर्धा भारतीय उत्पाद की श्रेष्ठ ख्याती नहीं बन पायी है। फलस्वरूप वांछित मात्रा में निर्यात लक्ष्य पूरे नहीं हो पा रहे है तथा भुगतान संतुलन प्रतिकूल बना हुआ है।

(4) व्यापारिक चातुर्य का अभाव एवं कमजोर सौदेबाजी क्षमता

भारत को व्यापारिक व्यवस्था एवं कार्य संस्कृति अन्तर्राष्ट्रीय मानदंडों पर पूरी तरह खरी नहीं उतर रही है। देश के व्यवसायियों में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर या व्यापार करने हेतु व्यावसायिक चातुर्य एवं नियमित सम्पर्क तथा समय की पाबन्दी इत्यादि गुणों का अभाव है। फलस्वरूप प्रतिस्पर्धा में प्रतियोगी देश बाजी मार लेता है। साथ ही देश की राजनैतिक परिस्थितियां, आतंकवाद तथा पडौसी देशों के साथ श्रेष्ठ व्यापार व्यवहार विकसित नहीं होने के कारण देश की अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कमजोर सौदेबाजी क्षमता है तथा सामुहिक सौदेबाजी संभव नहीं हो पाती है तथा प्रतिस्पर्धा में पिछड़ जाते है।

(5) वैश्विकरण जनित दबाव

भारत द्वारा गैर समझौते या हस्ताक्षर के पश्चात हर क्षेत्र में आर्थिक सुधार के प्रयास किये गये फलस्वरूप वैश्विकरण जनित दबाव उत्पन्न हो गया इसका प्रभाव आयातों एवं निर्यातों पर पड़ा और भुगतान संतुलन प्रतिकूल बना रहा है।

इस प्रकार भारत के समक्ष स्वाधीनता के पश्चात् से ही प्रतिकूल भुगतान संतुलन की समस्या है । जिसे धीरे-धीरे अर्थव्यवस्था में हो रहे नवीन परिवर्तनों एवं अर्थव्यवस्था को मजबूती प्रदान कर हम इस समस्या का निदान कर सकते है । निम्नांकित उपाय उपयोगी हो सकते है:

भुगतान संतुलन की प्रतिकूलता दूर करने हेतु उपाय

1. निर्यात प्रोत्साहन : समय की मांग

भारत के भुगतान संतुलन की प्रतिकूलता दूर करने हेतु निर्यातों में वृद्धि किया जाना समय की मांग है । भारत सरकार द्वारा निर्यात प्रोत्साहन हेतु विशेष योजनाएं बनायी जा रही है । सेज (स्पेशल इकानॉमी जोन) इत्यादि प्रयास निश्चित रूप से निर्यात संवर्द्धन में सहायक सिद्ध होगें ।

2. विदेशी विनियोग: देश के लिए महत्वपूर्ण

विदेशी विनियोग की आवश्यकता देश में सदैव रही है । तथा दूसरी और इनके प्रभावों पर भी समालोचनात्मक चर्चाएं होती रही है, किन्तु यदि भुगतान की प्रतिकूलता दूर करनी है तो ये देश के लिए महत्वपूर्ण सिद्ध होगें ।

3. आयातित वस्तुओं का प्रतिस्थापन

देश के आयातों को कम करने के लिए आयात की जाने वाली वस्तुओं का प्रतिस्थापन किया जाना आवश्यक है । इस हेतु सरकार द्वारा विशेष प्रयास किये जाने चाहिये ताकि प्रदर्शित प्रभाव सीमित हो सके । स्वदेशी की भावना का विकास कर जनचेतना जगाने हेतु प्रयास किये जाय ।

4. वैश्विक अर्थव्यवस्था का स्वरूप में सुधार हेतु प्रयास

भारतीय अर्थव्यवस्था वैश्विक अर्थव्यवस्था में अपना विशेष स्थान बना रही है । भारत द्वारा वैश्विक अर्थव्यवस्था के संबंध में कानकुन सम्मेलन, हांग कांग एवं दोहा कान्फ्रेंस में अच्छे प्रयास किये है तथा यदि अन्य विकासशील देशों को साथ लेकर वैश्विक अर्थव्यवस्था का स्वरूप विकासशील देशों के अनुरूप किया जाना उचित होगा ।

5. उद्योग एवं सेवा क्षेत्र में विशेष सुधार

भारत को अपनी प्रतिकूल भुगतान संतुलन को दूर करने हेतु उद्योग एवं सेवा क्षेत्र को मजबूत करना होगा । इन क्षेत्रों मे वित्तीय अनुशासन लाना होगा । सेवा क्षेत्र के विकास की देश में भरपूर संभावना को देखते हुए इस क्षेत्र को मजबूत किया जाना होगा ।

इस प्रकार देश के प्रतिकूल भुगतान संतुलन को दूर करने हेतु समेकित प्रयास किया जाना आवश्यक है । इस दृष्टि से देश की आयात निर्यात नीति का विशेष महत्व है । आगे यह जानने का प्रयास करते है कि देश की वर्तमान आयात-निर्यात में मुख्य तत्व क्या है?

17.8 भारत की आयात-निर्यात नीति (EXPORT & IMPORT POLICY OF INDIA)

देश के संतुलित आर्थिक विकास एवं संतुलित भुगतान संतुलन की स्थिति लाने हेतु उचित आयात-निर्यात नीति का होना आवश्यक है । स्वाधीनता के पश्चात देश की आयात-निर्यात नीति का प्रमुख उद्देश्य विकासात्मक ही रहा है । भारत के आयात-निर्यात नीति की विशेषत यह रही है कि इसे सदैव निर्यातोन्मुखी ही बताया है तथा यह नीति सदैव आयातों को हतोत्साहित करने वाली ही रही है।

सन् 1991 के बाद गैट समझौते के कारण विश्व अर्थव्यवस्था के स्वरूप में परिवर्तन दृष्टिगत होते है । उसी के अनुरूप देश मे भी उदारीकरण तथा वैश्वीकरण के कारण देश की आयात-निर्यात नीति में आयातों को भी महत्व दिया गया तथा आयातों पर लगे प्रतिबन्धों को भी कम किया गया साथ आयात-निर्यात नीति के माध्यम से वैश्वीकरण के कारण हुए दुष्प्रभावों को दूर करने हेतु प्रयास किया गया।

आयात-निर्यात नीति में किये गये नवीन प्रावधानों के कारण देश का भुगतान संतुलन पक्ष मजबूत हुआ तथा निर्यात संवर्धन का मार्ग प्रशस्त हुआ है । अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में व्याप्त प्रतिस्पर्धा में भारत अपना विशेष स्थान बना रहा है । भारत की आयात-निर्यात नीति विदेशी उपभोक्ताओं को आकर्षित करने तथा उन्हें गुणवत्ता पूर्ण व्यापार का आश्वासन देती है ।

भारत की आयात-निर्यात नीति के मुख्य तत्व इस प्रकार है :-

17.9 भारत की आयात-निर्यात नीति - मुख्य तत्व

भारत सरकार द्वारा घोषित आयात-निर्यात नीति के मुख्य तत्व अथवा विशेषताएं इस प्रकार है :-

1. देश का सुस्थिर (टिकाऊ) आर्थिक विकास

भारत की आयात-निर्यात नीति की मुख्य विशेषता अर्थव्यवस्था को टिकाऊ विकास की ओर प्रवृत करना है, ताकि देश वैश्वीकरण की चुनौतियों का सामना कर सकें ।

2. निर्यात प्रोत्साहन एवं आयात प्रतिस्थापन

भारत की आयात-निर्यात नीति का ध्येय को निर्यातों को प्रोत्साहन देना है तथा आयात की मात्रा को कम करने हेतु आयातों के श्रेष्ठ विकल्प देश में ही तैयार करना है ।

3. भारतीय अर्थव्यवस्था को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सक्षम बनाना

भारत की आयात-निर्यात नीति का यह भी उद्देश्य रहा है कि भारतीय अर्थव्यवस्था को अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा का सामना करने हेतु योग्य बनाना है ताकि देश की अर्थव्यवस्था अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सक्षम हो कर चुनौतियों का सामना कर सकें ।

4. अन्तर्राष्ट्रीय उपभोक्ताओं के संतुष्टि स्तर को बढ़ाना

देश की आयात-निर्यात नीति का ध्येय यह, भी है कि अन्तर्राष्ट्रीय उपभोक्ता वस्तु को गुणवत्ता संतुष्ट हो तथा विदेशों में देशी वस्तुओं की मांग सृजित हो सकें ।

5. आयात-निर्यात प्रक्रिया को सुगम बनाना

भारत की आयात-निर्यात नीति का एक उद्देश्य यह भी है कि विश्व व्यापार संगठन के उद्देश्यों के अनुरूप देश की आयात-निर्यात प्रक्रिया को सुगम बनाया जाय तथा मात्रात्मक प्रतिबन्ध एवं व्यापार गतिरोध (ट्रेड बेरियर) दूर किये जाय ।

इस प्रकार भारत सरकार द्वारा समय-समय पर घोषित आयात-निर्यात नीति के पांच मुख्य तत्व रहे है, जिनकी चर्चा यहां की गयी है । आर्थिक उदारिकरण की प्रक्रिया के द्वितीय चरण में भारत सरकार ने और भी अधिक उदारिकृत आयात-निर्यात नीति अपनाए रखने का निर्णय किया गया । आयातों का और भी अधिक सरलीकरण करना निर्यात संवर्धन हेतु विशेष प्रयास किये जाना इस नवीन आयात-निर्यात नीति के मुख्य तत्व रहे हैं ।

नवीन आयात-निर्यात नीति (2004-09) के मुख्य तत्व

विश्व व्यापार संगठन के प्रावधानों के अनुसार देश के आर्थिक क्षेत्रों में विशेष सुधार किये गये। उद्योग एवं व्यापार क्षेत्र में भी सुधारों के क्रम में तात्कालीन वाणिज्य एवं उद्योग मंत्री द्वारा नवीन आयात-निर्यात नीति 2004-09 की घोषणा की गयी । इसके मुख्य तत्व इस प्रकार हैं ।

1. आधारभूत संरचना का सुदृढ़ीकरण तथा इस हेतु आयातों पर प्रतिबन्ध हटाने के संकेत।
2. भारत के निर्यातों में तीव्र वृद्धि हेतु विशेष प्रयास किए जाए इस हेतु 10 प्रतिशत वार्षिक निर्यात वृद्धि का लक्ष्य रखा गया ।
3. निर्यात हेतु सभी प्रकार के मात्रात्मक प्रतिबन्ध हटाए गये । कुछ विशिष्ट वस्तुओं को छोड़ कर सभी वस्तुओं के निर्यात हेतु पूरी छूट दी गयी ।
4. निर्यात संवर्धन हेतु विशेष योजनाएं एवं सुविधाएं प्रदान करने की घोषणा की गयी जैसे सेज की स्थापना, डी. ई. पी. बी. (DEPB) ड्यूटी एन्टाइरलमेन्ट पास बुक तथा ई. पी. सी. जी (EPCG) एक्सपोट प्रमोशन केपिटल गुड्स योजना इत्यादि ।
5. विदेशी व्यापार सुविधा को सरल बनाना ताकि उसमें विविधता को बढ़ावा देना, ताकि अर्थव्यवस्था को और भी अधिक खुलापन दिया जा सके ।

इस प्रकार 31 अगस्त, 2004 को केन्द्र सरकार द्वारा घोषित नवीन आयात-निर्यात नीति का मुख्य ध्येय सुस्थिर आर्थिक विकास, नवीन रोजगार के अवसर सृर्जित करना तथा देश को विश्व व्यापार के क्षेत्र में स्थान प्रदान करना था । इस नीति के अनुसार सन् 2009 तक भरत का विश्व व्यापार में योगदान 150 अरब डालर वार्षिक हो जाएगा । नीति में कृषि उत्पाद के निर्यात संवर्धन हेतु विशेष पेकेज दिया गया । मुक्त व्यापार एवं निर्यात प्रक्रिया के सरलीकरण पर बल दिया गया । इस नीति की आर्थिक व्यापार जगत में मिश्रित प्रतिक्रिया हुई तथा सन् 2007-08 में भारत सरकार ने नवीन पूरक आर्थिक नीति घोषित की । आईये इस नवीन आर्थिक नीति की समालोचनात्मक समीक्षा की चर्चा की जाय ।

नवीन आयात-निर्यात नीति की समालोचनात्मक समीक्षा

भारत सरकार की नवीन आयात-निर्यात नीति की व्यापार जगत में मिश्रित प्रतिक्रिया रही । जहां व्यापार जगत में "सर्वड फोम इण्डिया ", सेवा निर्यात संवर्धन परिषद, व्यापार मंडल के पुर्नगठन, आयात निर्यात प्रावधानों का सरलीकरण इत्यादि घोषणाओं का स्वागत हुआ वहीं दूसरी ओर निर्यात व्यापार के ऊंचे लक्ष्यों पर आशंका जाहिर की गयी । जहां फिक्की अध्यक्ष द्वारा नीति का स्वागत किया गया, सी सी आई के अध्यक्ष ने इस नीति को दूर दृष्टिपूर्ण उठाया गया कदम बताया । एसोचेम के अध्यक्ष ने भी इस नीति की सरहाना करते हुए फि ट्रेड वेयर हाउसिंग जोन की स्थापना को उचित बताया । विपक्ष द्वारा इस नीति की आलोचना करते हुए निर्धारित लक्ष्यों को कोरी कल्पना तथा यर्थाथ से परे बताया ।

वास्तव में देखा जाय तो नवीन आयात निर्यात नीति महत्वाकांक्षी लक्ष्य वाली नीति है । जिसकी सफलता समयबद्ध कार्यक्रम एवं आधारभूत संरचना की मजबूती पर निर्भर करती है ।

नवीन पूरक आयात-निर्यात नीति 2007-08

31 अगस्त, 2004 को घोषित नवीन आयात निर्यात नीति के क्रियान्वयन में आ. रही बाधाओं को दूर करने तथा देश में निर्यात के लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु केन्द्र सरकार द्वारा 23 अप्रैल, 2007 को पूरक आयात-निर्यात नीति की घोषणा की गयी । इस नीति का मुख्य उद्देश्य निर्यात व्यापार को प्रोत्साहन देना है । इसी नीति की मुख्य विशेषताएं इस प्रकार है:-

1. पूरक आयात-निर्यात नीति का मुख्य लक्ष्य "निर्यात करो एवं रोजगार पाओ" लक्ष्य रखा गया। आयात निर्यात व्यापार का सरलीकरण एवं निर्यात प्रक्रिया के माध्यम से व्यापार वृद्धि प्रमुख लक्ष्य रखा गया।
2. विशेष आर्थिक जोन (सेज) की स्थापना तथा निर्यात सेवाओं को सेवा कर (Service Tax) से मुक्त करना ।
3. निर्यात प्रोत्साहन हेतु फोकस प्रोडक्ट योजना (Focus Product Scheme) के अतंर्गत 16 उत्पादों को निर्यात की विशेष सुविधाएं प्रदान की गयी ।
4. ग्रामीण आचलिक क्षेत्रों के उत्पादों के निर्यात हेतु विशेष प्रयास के तहत क्रेडिट उद्योगों की निर्यात दायित्व अवधि 8 वर्ष से बढ़ा कर 12 वर्ष की गयी ।
5. फोकस मार्केट योजना का सफल क्रियान्वयन तथा सेवाओं के निर्यात हेतु विशेष प्रयास ।

इस प्रकार पूरक आयात-निर्यात नीति के अंतर्गत निर्यात वृद्धि हेतु विशेष घोषणा की गयी । इसके अंतर्गत देश का निर्यात 2008-009 तक 200 अरब डालर करने का लक्ष्य रखा गया है । इस नीति के अंतर्गत निर्धारित प्रत्यक्ष विदेशी निवेश का लक्ष्य 16 अरब डालर रखा गया जो निश्चित ही उचित कहा जा सकता है । यद्यपि विशेष आर्थिक क्षेत्र (सेज) की स्थापना का निर्णय विवाद के विषय होते हुए भी निर्यात व्यापार की दृष्टि से उसका विशेष महत्व है । यदि समेकित रूप में देखा जाय तो देश की आयात निर्यात नीति का मूल ध्येय निर्यात संवर्धन के माध्यम से रोजगार संभावनाएं बढ़ाना रहा है । साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में भारत के योगदान वृद्धि करना रहा है ।

17.10 सारांश

- **प्रस्तावना**

स्वाधीनता से पूर्व देश का भुगतान संतुलन अनुकूल रहा करता था । योजनागत विकास मॉडल के अपनाए जाने के कारण विकास जनित दबाव के कारण देश का भुगतान संतुलन प्रतिकूल रहने लगा। भुगतान संतुलन को संतुलित करने हेतु केन्द्र सरकार द्वारा आयात निर्यात नीति की घोषणा की गयी। वैश्विक अर्थव्यवस्था को दृष्टिगत रखते हुए सन् 2004 में नवीन आयात निर्यात नीति घोषित की गयी सन् 2007 मे नवीन पूरक आयात निर्यात नीति की घोषणा की गयी । देश के आयात निर्यात नीति का मूल ध्येय निर्यात वृद्धि के साथ रोजगार सृजन भी रहा है ।

- **भुगतान संतुलन का अर्थ**

देश की एक वर्ष की अवधि मे सम्पूर्ण देनदारियों एवं लेनदारियों के अन्तर को भुगतान संतुलन कहा जाता है । यह किसी देश के अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय व्यवहारों का विवरण होता है ।

- **भारत का भुगतान संतुलन**

भारत का भुगतान संतुलन स्वाधीनता के पश्चात् से ही सदैव प्रतिकूल रहा है । चालू खातों के घाटे मे कुछ अधिक वृद्धि की प्रवृति दिखाई नहीं देती है । विगत पांच वर्षो में यद्यपि देश का भुगतान संतुलन अनुकूल तो नही हुआ, किन्तु उसमें थोड़ी सुदृढ़ता दिखाई देती है ।

- **भारतीय भुगतान संतुलन की प्रतिकूलता के कारण**
  - विकासजनित दबाव के कारण आयातों की अधिकता
  - बढ़ती जनसंख्या की आवश्यकता पूर्ति एवं प्रदर्शन प्रभाव
  - वैश्विक अर्थव्यवस्था मे श्रेष्ठ ख्याति का अभाव

- व्यापारिक चातुर्थ का अभाव एवं कमजोर सौदेबाजी
- वैश्विकरण जनित दबाव

- **भुगतान संतुलन की प्रतिकूलता दूर करने हेतु उपाय**
  - निर्यात प्रोत्साहन - समय की मांग
  - विदेशी विनियोग - देश के लिए महत्वपूर्ण
  - आयातित वस्तुओं की प्रतिस्थापना
  - उद्योग एवं सेवा क्षेत्र में विशेष सुधार
  - वैश्विक अर्थव्यवस्था के स्वरूप में सुधार के प्रयास
- **भारत की आयात निर्यात नीति**

देश के संतुलित आर्थिक विकास एवं भुगतान संतुलन को संतुलित करने के उद्देश्य से केन्द्र सरकार समय -समय पर आयात निर्यात नीति की घोषणा करती है । देश की आयात निर्यात नीति का उद्देश्य विकासात्मक रहा है । इस इस नीति की यह विशेषता है कि यह सदैव निर्यातोन्मुखी रही है ।

- **आयात निर्यात नीति के मुख्य तत्व**
  - देश का आर्थिक विकास
  - निर्यात प्रोत्साहन एवं आयात प्रतिस्थापन
  - भारतीय अर्थव्यवस्था को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सक्षम बनाना
  - आयात निर्यात प्रक्रिया को सुगम बनाना
- **नवीन आयात निर्यात नीति 2004-09 के मुख्य तत्व**
  - आधारभूत योजना का सुदृढ़ीकरण
  - निर्यात वृद्धि हेतु तीव्र प्रयास
  - निर्यात हेतु मात्रात्मक प्रतिबन्ध हटाना
  - निर्यात संवर्धन हेतु विशेष योजनाएं
  - विदेशी व्यापार प्रक्रिया को सरल बनाना छ
- **नवीन पूरक आयात निर्यात नीति 2007-08 के मुख्य तत्व**
  - "निर्यात करो रोजगार पाओ"
  - विशेष आर्थिक जोन (सेज) की स्थापना
  - निर्यात प्रोत्साहन हेतु फोकस प्रोडक्ट योजना
  - ग्रामीण आचलिक क्षेत्रों के उत्पादों का निर्यात
  - फोकस मार्केट योजना का किर्यान्वयन

17.11 स्वपरख प्रश्न

1. भुगतान संतुलन से आप क्या समझते हैं? भारत के भुगतान संतुलन की स्थिति का वर्णन कीजिये।
2. भारत के भुगतान संतुलन के प्रतिकूल रहने के क्या कारण रहे है? सविस्तार वर्णन कीजिये ।
3. भारत के भुगतान संतुलन की प्रतिकूलता को दूर करने हेतु जो कदम उठाए गये उनकी विवेचना कीजिए।
4. भारत की आयात निर्यात नीति के मुख्य प्रावधानों का वर्णन कीजिये ।

5. भारत की नवीन आयात निर्यात नीति 2004-09 की समालोचनात्मक व्याख्या कीजिये ।
6. भारत की पूरक नवीन आयात निर्यात नीति की मुख्य विशेषताएं बताइये ।

17.12 संदर्भ ग्रन्थ

1. आर्थिक समीक्षा - भारत सरकार प्रकाशन 2007-08
2. मौद्रिक अर्थशास्त्र - एम. एल. सेठ
3. मुद्रा बैकिंग अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार - टी. सी सेठी

इकाई-18: वैश्वीकरण एवं विश्व व्यापार संगठन (Globalisation and WTO)

इकाई की रूपरेखा :

18.1 वैश्वीकरण का अर्थ

18.2 वैश्वीकरण की विशेषताएँ

18.3 वैश्वीकरण की ओर प्रयास

18.4 वैश्वीकरण के पक्ष / विपक्ष में तर्क

18.5 भारतीय अर्थव्यवस्था के वैश्वीकरण की समस्याएँ / प्रभाव

18.6 वैश्वीकरण की प्रकिया को सुचारू बनाने के लिए मुख्य संगठन

18.7 विश्व व्यापार संगठन के उद्देश्य

18.8 विश्व व्यापार संगठनात्मक ढांचा

18.9 विश्व व्यापार संगठन से लाभ

18.10 विश्व व्यापार संगठन से हानियॉ

18.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

18.12 संदर्भ ग्रन्थ

18.1 वैश्वीकरण का अर्थ

वैश्वीकरण का अर्थ है देश की अर्थव्यवस्था को विश्व की अर्थव्यवस्था के साथ एकीकृत करना। वस्तुत: राष्ट्रों की राजनीतिक सीमाओं के आर-पार आर्थिक लेन-देन की प्रक्रियाओं और उनके प्रबंधन का प्रवाह है । जब हम भारतीय अर्थव्यवस्था के वैश्वीकरण की बात करते हैं तो हमारा तात्पर्य भारतीय अर्थव्यवस्था को विश्व दृष्टिकोण से अधिक उदार बनाने से है ताकि हमारे व्यापार का विस्तार विश्व के अधिकांश देशों में हो सकें ।

18.2 वैश्वीकरण की विशेषताएँ

(1) विदेशी कम्पनियों को भारत की विभिन्न आर्थिक गतिविधियों में निवेश करने की अनुमति देकर अर्थव्यवस्था को विदेशी विनियोग के लिए खोलना ।

(2) विदेशी विनिमय नियंत्रण को धीरे-धीरे समाप्त करके बहु राष्ट्रीय निगमों को देश में आने की व विनियोग करने की सुविधाएँ प्रदान करना ।

(3) मात्रात्मक प्रतिबंधों के स्थान पर धीरे-धीरे प्रशुल्कों को प्रतिस्थापित करना और उन्हें भी कम करते जाना ताकि आयात उदारीकरण कार्यक्रमों को व्यापक आधार पर लागू किया जा सके ।

(4) भारतीय कम्पनियों को विदेशी कम्पनियों के साथ सहयोग करने की अनुमति देना और दूसरे देशों में संयुक्त परियोजनाएँ चालू करने के लिए प्रोत्साहित करना ।

अत: वैश्वीकरण वह प्रक्रिया है, जिसमें विश्व बाजारों के मध्य पारस्परिक निर्भरता उत्पन्न होती है और व्यापार देश की सीमाओं में प्रतिबन्धित न रहकर विश्व व्यापार में निहित तुलनात्मक लागत लाभ दशाओं का विदोहन करने की दिशा में अग्रसर होता है ।

18.3 वैश्वीकरण की ओर प्रयास (Effects towards Globalisation)

भारत सरकार ने 1991 के बाद वैश्वीकरण की ओर विभिन्न कदम उठाए हैं, जिसमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं

(1) व्यापार नीति में उदारीकरण

(2) उदारीकृत विनिमय नीति में उदारीकरण

(3) विदेशी विनिमय नीति में उदारीकरण

18.4 वैश्वीकरण के पक्ष में तर्क

(1) बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने यथा सम्भव उच्च तकनीक का प्रयोग कर हमारे औद्योगिक उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि की है । आजकल ये कम्पनियाँ न सिर्फ उपभोक्ता वस्तु बल्कि अन्य आधारभूत परियोजनाओं में भी अपनी पूँजी लगा रही है । इनके आगमन से देश के औद्योगिक वातावरण में भी सुधार आया है ।

(2) अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष एवं विश्व बैंक द्वारा प्रदत्त पूँजी से विभिन्न विकास कार्यक्रमों को चलाने में मदद मिली है, वहीं प्रौद्योगिकीय सहयोग एवं उन्नत तकनीक ने भी हमारी अर्थव्यवस्था को काफी मदद पहुँचाई है ।

(3) आयात उदारीकरण की प्रक्रिया के दौरान बहुत से लोगों ने यह डर व्यक्त किया था कि इससे आयात व्यय में तेज वृद्धि होगी, जिससे अर्थव्यवस्था कमजोर होगी, किन्तु उदारीकरण से वास्तव में हमारी आत्म-निर्भरता में वृद्धि हुई । जहाँ 1980 के दशक के उत्तरार्द्ध में निर्यात आय, आयात व्यय के 60 प्रतिशत की पूर्ति करती थी, वहाँ अब निर्यात आय, आयात व्यय के 90 प्रतिशत की पूर्ति करती है ।

(4) भारत में अपनाए गए उदारीकरण के दौर में विदेशी विनियोग में तेजी से प्रगति हुई । भारत में कुल विदेशी विनियोग प्रवाह (प्रत्यक्ष एवं पोर्टफोलियो) वर्ष 1996-97 में वैश्वीकरण के बाद तेजी से बढ़कर 6.01 बिलियन डॉलर हो गया ।

(5) रूपए की विनिमय दर मजबूत व स्थिर बन रही है, जिसके कारण भारतीय अर्थव्यवस्था पर विदेशी निवेशकों का विश्वास बढ़ा है । इससे उन देशों की उन्नत तकनीक भी देश में आएगी ।

(6) वैश्वीकरण से बैंकिंग तथा वित्तीय क्षेत्रों की कार्यक्षमता सुधरेगी, क्योंकि विदेशी बैंकों तथा विदेशी पूँजी से प्रतिस्पर्द्धा करनी होगी ।

विपक्ष में तर्क

(1) वैश्वीकरण ने समान प्रतियोगिता को जन्म दिया है । यह प्रतियोगिता शक्तिशाली बहुराष्ट्रीय निगमों और कमजोर भारतीय उद्यमों के बीच होने के कारण भारतीय उद्यम समाप्त होते जा रहे हैं ।

(2) बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ सुपर-प्राफिट को अपने मूल देश को निर्यात करती है, लेकिन एक बात जिसकी अक्सर अवहेलना कर दी जाती है वह यह है कि बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ अपने मूल देशों से पूँजी लाकर हमारे यहां उद्योग लगाती हैं, लेकिन भारत में हम इस संदर्भ में पाते है कि इन कम्पनियों ने अपने मूल देश से पैसे न उगाकर यहीं के बाजारों से अपने पैसे वसूल किए हैं ।

(3) ये बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ अपने कर्मचारियों को अधिक वेतन तथा सुविधाएँ देकर न केवल आर्थिक असमानता को बढ़ा रही हैं बल्कि यहां की संस्कृति पर भी कुठाराघात कर रही है ।

18.5 भारतीय अर्थव्यवस्था के वैश्वीकरण की समस्याएँ (Problems of Globalisation of Indian Economy)

- **अनुकुल वातावरण की आवश्यकता -** देश की अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक सुधार पूर्ण रूप से नहीं हो सके हैं, क्योंकि जिन देशों ने वैश्वीकरण को अपनाया हैं, उन्होंने अपने यहां पूर्व में ही उसके लिए वातावरण तैयार किया है, साथ ही हमारे देश की स्वतन्त्र बाजार की दिशा में गति भी धीमी रही है ।
- **श्रमिकों में व्याप्त भय -** भारतीय श्रमिकों का मानना है कि देश में आधुनिक मशीनों की स्थापना से कम श्रमिकों की आवश्यकता होगी, साथ ही छँटनी होगी तथा वे प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होंगे एवं बेरोजगारी में वृद्धि होगी।
- **पूँजी का अभाव -** संसाधनों के सीमित होने के कारण देश में पूँजी का अभाव हैं, ऐसी स्थिति में पूँजी जुटा पाना आसान काम नहीं है ।
- **विदेशी मुद्रा का अभाव -** आधुनिकीकरण के लिए आवश्यक मशीनों के आयात हेतु विदेशी मुद्रा की आवश्यकता होती है ।

नई आर्थिक नीति में निजी क्षेत्र में व्यापक विकास व विस्तार तथा बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के प्रवेश के अधिकाधिक सुअवसर प्रदान किए गए हैं । ऐसी परिस्थिति में यह सम्भव है कि इस नीति के तहत देश के कुछ विशेष उत्पादों को अनावश्यक रूप से लाभ तथा बहुसंख्यक जनसंख्या के हितों की उपेक्षा होती हुई पाई जाए । साथ ही भुगतान सन्तुलन की विपक्षता को दूर करने व अर्थव्यवस्था की समृद्धि की भृगमरीचिका में यह भी सम्भव है कि भारतीय अर्थव्यवस्था निकट भविष्य में पूरी तरह बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की पकड़ में आ जाए । अत बहुराष्ट्रीय निगमों पर कई प्रकार के नियंत्रण लगाए जा सकते हैं ।

भारतीय अर्थव्यवस्था पर वैश्वीकरण के प्रभाव (Effect of Globalisation on Indian Economy)

1991 में प्रारम्भ हुई वैश्वीकरण की प्रक्रिया तथा औद्योगिक एवं अन्य नीतियों में दूर तक जाने वाले परिवर्तन व्यापक बदलावों की ओर देश को ले जा चुके हैं । भारतीय अर्थव्यवस्था पर वैश्वीकरण का प्रभाव निम्न तथ्यों पर देखा जा सकता है:-

- विश्व व्यापार में भारत का भाग जो 1950 में 1.78 प्रतिशत था 1991 में 0.53 प्रतिशत तक गिर चुका था, किन्तु 2006 में 10 प्रतिशत तक सुधर चुका है ।
- हमारे विदेशी विनिमय भंडार जो जून 1991 में मात्र एक बिलियन डॉलर्स तक नीचे आ गये थे वे मार्च 2005 में लगभग 141 बिलयन डॉलर्स तक बढ़ गए हैं ।
- विनिमय दर तथा व्यापारिक नीतियों में दूरगामी सुधारों के प्रति निर्यातक सचेत हैं । यह बात इस तथ्य से अधिक स्पष्ट होगी कि 1991-92 में 1.5 प्रतिशत से निर्यातों के डॉलर्स मूल्य में गिरावट के विरूद्ध 1993-96 के दौरान 18-21 प्रतिशत प्रतिवर्ष के दायरे में निर्यात बढ़े । लेकिन 1996-97 से निर्यात वृद्धि धीमी रही है । इस अवधि के दौरान वार्षिक औसतन विकास दर 8

प्रतिशत के आसपास थी । लेकिन 2002-03 से निर्यात पुन: उभरने लगे हैं । निर्यात की वार्षिक वृद्धि 1992-2004 के दौरान 10 प्रतिशत वार्षिक के आसपास रही है।

- निर्यात अस्सी के दशक के अन्तिम भाग में मात्र 60 प्रतिशत की तुलना में अब आयातों के 80 प्रतिशत से अधिक की वित्त व्यवस्था करते हैं ।
- चालू खाते का घाटा 1990-91 में GDP के 3 प्रतिशत के ऊपर था । यह 2000-01 में लगभग 1 प्रतिशत तक गिर चुका था । 2001-03 के दौरान हमारा GDP 0.7-1. 08 प्रतिशत के बीच घूम रहा है ।
- संकट के समय पर हमारे बाहरी ऋण 8 बिलियन प्रति वर्ष की दर से बढ़ रहे थे । तत्पश्चात् उसकी वृद्धि रूक सी गई है । 1996 से 2003 तक में 1 बिलियन डॉलर से 3 बिलियन के लगभग ही बढ़े ।
- इसके विपरीत जिसका बहुतों को डर है, रूपये के लिए विनिमय दर रूपये की पूर्ण परिवर्तनीयता के लागू होने के बावजूद भी लगभग सतत रही है ।
- विदेशी प्रत्यक्ष निवेश तथा पोर्टफॉल्यों निवेश में लगातार वृद्धि हुई FDIs 1991 में मात्र 155 मिलियन डॉलर थे । वे 2004-05 में 3200 मिलियन डॉलर के आसपास तक बढ़े ।
- वैश्वीकरण के अनेक लाभ उपभोक्ता माल की अपेक्षाकृत बड़ी किस्मों के रूप में माल की परिष्कृत गुणवत्ता के तौर पर तथा कुछ मामलों में टिकाऊ उपभोक्ता माल के घटे मूल्यों के रूप में भारतीय उपभोक्ताओं को मिले हैं ।
- बाजार विदेशी गतिविधियों का प्रत्युतर देना शुरू कर चुके हैं । अमेरिकन बाजार या इंग्लैण्ड के बाजार में उतार चढ़ाव भारतीय बाजार को प्रभावित करना प्रारम्भ कर चुके हैं ।

लेकिन आलोचकों ने इंगित किया है कि देश के व्यवसाय गृहो को निस्संदेह भारतीय बाजारों में प्रवेश के अवसर मिले हैं । लेकिन बहुराष्ट्रीय निगमों की श्रेष्ठ आर्थिक तथा वित्तीय पकड़ इतनी महान है कि उनकी प्रतिष्ठा के रहते इन अवसरों का लाभ शायद ही उठाया जा सके प्रतिस्पर्द्धा बराबर के स्तर पर नहीं रही है वरन् वित्तीय तौर पर सुदृढ़ निगमों तथा आर्थिक तौर पर कमजोर भारतीय कम्पनियों के बीच रही है । अत: जहाँ एक ओर वित्तीय बाजारों में निवेश हेतु प्रयुक्त विदेशी विनिमय संसाधनों के साथ अपने विशालकाय रूप में यूरोप तथा अमेरिका की बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ भारत में दाखिल हुई हैं वहीं थोड़ी सी भारतीय कम्पनियाँ मुट्ठी भर विदेशी देशों में घुस पाई हैं तथा अपेक्षाकृत नीची लागत पर बाहर पूँजी जुटा पाई हैं ।

18.6 वैश्वीकरण की प्रकिया को सुचारू बनाने के लिए मुख्य संगठन (Main Organisation for facilitating the process of Globalisation)

अनेक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन ऐसे हैं जिन्होंने वैश्वीकरण की प्रक्रिया को सुचारू बनाया है । हम यहाँ तीन मुख्य संगठनों का अध्ययन करेंगे । ये हैं अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक संगठन (IMFl), विश्व बैंक (W.B.) तथा विश्व व्यापार संगठन (W.T.O) ।

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष को 1946 में गठित किया गया तथा इसने अपना कार्य मार्च, 1947 में प्रारम्भ किया।

IMF के निम्न महत्वपूर्ण कार्य हैं

(1) यह एक अल्पकालीन साख संस्थान के रूप में काम करता है ।

(2) यह विनिमय दरों के व्यवस्थित समायोजन हेतु एक मशीनरी की व्यवस्था करता है ।

(3) यह सभी सदस्य राष्ट्रों की मुद्राओं का एक कोष है जो अन्य देशों की मुद्राओं का ऋण ले सकते है ।

(4) यह विदेशी विनिमय में उधार देने वाली संस्था है ।

(5) यह अन्तर्राष्ट्रीय परामर्शो एवं सलाहों के लिए तंत्र व्यवस्था का भी प्रावधान करता है ।

विश्व बैंक (The World Bank)

पुनर्निर्माण तथा विकास का अन्तर्राष्ट्रीय बैंक जिसे अधिक प्रचलित तरीके से विश्व बैंक के रूप में जाना जाता है । 1945 में Bretton Woods में विचार विमर्श के पश्चात् IMF एवं विश्व बैंक दो जुडवाँ संस्थाओं का निर्माण किया गया । विश्व बैंक को सदस्य देशों को ऋण देने के लिए वे पुर्नस्थापित करने के लिए बनाया गया था । पहले तो युद्ध की त्रासदी विश्व अर्थव्यवस्थाओं के पुननिर्माण के लिए तथा बाद में अपेक्षाकृत गरीब सदस्य देशों की अर्थव्यवस्थाओं के विकास के लिए । विश्व बैंक अपने सदस्य देशों को (कुल मिलाकर 184 देश) उचित शर्तों पर दीर्घकालीन निवेश ऋण प्रदान करता है । अभी तक विश्व बैंक ऋणों का बड़ा भाग विशिष्ट परियोजनाओं के वित्त प्रबन्धन हेतु रहा है । हाल के वर्षा में यह भारी तौर पर कर्जे में डूबे देशों को संरचनात्मक समायोजन ऋण देने में भी लगा हुआ है ।

विश्व बैंक के कार्य (Functions of the World Bank)

विश्व बैंक के मुख्य कार्य हैं.

(1) उत्पादकीय उद्देश्यों के लिए पूंजी के निवेश को सुचारू बनाकर अपनेअपने क्षेत्रों के पुननिर्माण तथा विकस में अपने सदस्य देशों की मदद करना ।

(2) निजी निवेशकों के पुनर्भुगतान की गारन्टी देकर निजी विदेशी विनियोजन तथा साख को प्रोत्साहन देना।

(3) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की दीर्घकालीन संतुलित प्रगति तथा अपने सदस्य राष्ट्रों के भुगतान में साम्य के अनुरक्षण को विकसित करना ।

(4) विश्व व्यापार संगठन (WTO)

विश्व व्यापार की नीतियों, वैधानिक व्यवस्थाओं और उनके क्रियान्दयन को अधिक प्रभावी व कारगर बनाने की दृष्टि से ही संगठन गेट की स्थापना से अप्रैल 1994 तक गेट वार्ताओं के आठ दौर की समाप्ति पर अन्तत: 15 अप्रैल 1994 को उरुग्वे दौर के डंकल प्रस्तावों को स्वीकार कर लिया गया और गैट के स्थान पर विश्व व्यापार संगठन (WTO) स्थापित हुआ । यह संगठन गैट के मुकाबले अत्यन्त प्रभावशाली अधिकारों से युक्त शक्तिशाली एवं प्रभावी संगठन है।

18.7 विश्व व्यापार संगठन के उद्देश्य

डंकल समझौते के अन्तर्गत गैट के स्थान पर 1 जनवरी 1995 को विश्व व्यापार संगठन अस्तित्व में आया । इसके प्रमुख उद्देश्य निम्न है -

(1) **मानव के जीवन स्तर में वृद्धि करना -** विश्व स्तर पर स्थापित हान वाले सभी संगठनों का प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप में उद्देश्य मानव जीवन के स्तर में वृद्धि करना रहा है । विश्व व्यापार संगठन का प्रमुख उद्देश्य भी अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में शैक्षिक व स्वास्थ्य सुविधाओं का परम्पराओं का विकास कर मानव जीवन के स्तर में वृद्धि करना है ।

(2) **पूर्ण रोजगार एवं प्रभावपूर्ण मांग में वृद्धि -** प्रभावपूर्ण मांग में वृद्धि से उत्पादन के आकार में वृद्धि हो सके जिससे रोजगार के अवसर में वृद्धि हो सके और पूर्ण रोजगार के लक्ष्य की प्राप्ति हो सके।

(3) **वस्तुओं के उत्पादन एवं व्यापार में वृद्धि -** WTO इस बात का पक्षधर है कि विश्व के विभिन्न राष्ट्रों में स्थापित औद्योगिक प्रतिष्ठानों में उत्पादित वस्तुओं के लिये सम्पूर्ण विश्व एक बाजार हो । ऐसा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के आकार में वृद्धि द्वारा ही संभव है जिसके प्रति यह संगठन कटिबद्ध है ।

(4) **सेवाओं का विस्तार -** विश्व व्यापार संगठन इस दिशा में प्रयासरत है कि सेवाओं का विस्तार किया जाए । किसी राष्ट्र द्वारा उत्पन्न सेवायें उस राष्ट्र की भौगोलिक सीमाओं में बन्ध कर ही न रह जाये वरन् उनका प्रयोग सम्पूर्ण विश्व द्वारा किया जाये ।

(5) **विश्व के संसाधनों का अनुकूलतम प्रयोग -** विश्व के विभिन्न राष्ट्रों को प्रकृति द्वारा अनेक संसाधनों की प्राप्ति हुई है, किन्तु वातावरण के अभाव में इन संसाधनों का भली प्रकार से विदोहन संभव नहीं हो सका है । विश्व व्यापार संगठन इस दिशा में प्रयासरत है कि इन संसाधनों का अनुकूलतम प्रयोग संभव हो सके ।

(6) **स्थिर विकास** - विकास की प्रक्रिया में अस्थिरता अत्यन्त घातक सिद्ध होती है । अत: विश्व व्यापार संगठन द्वारा अपने उद्देश्य में सुस्थिर विकास की अवधारणा को स्वीकार किया गया है ।

(7) **पर्यावरण की सुरक्षा -** मानवीय क्रियाओं एवं पर्यावरण के मध्य उत्पन्न हुये असन्तुलन के कारण मानव जीवन की अनेक खतरों की सम्भावना उत्पन्न हो गयी है । विश्व व्यापार संगठन द्वारा पर्यावरण की सुरक्षा एवं संरक्षण के द्वारा आर्थिक विकास में वृद्धि के प्रयास किये जाएगें ।

(8) **विकास के साथ साधनों में वृद्धि -** विश्व व्यापार संगठन इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु प्रयासरत है कि विकास के वैयक्तिक स्तरों की आवश्यकता के साथ निरन्तर चलते रहने के साधनों में वृद्धि संभव हो सके ।

18.8 विश्व व्यापार संगठनात्मक ढांचा

अ. मंत्रिस्तरीय सम्मेलन :-

यह विश्व व्यापार संगठन का सर्वोच्च निर्णय किया जाने वाला निकाय है । इसमें सदस्य राष्ट्रों के सभी मंत्रियों को प्रतिनिधित्व प्रदान किया जाता है । इस सम्मेलन की एक वर्ष में कम से कम दो बैठकें होना आवश्यक है । इस सम्मेलन द्वारा कार्यो का सम्पादन निर्बाध पूर्वक हो, इसके पृथक-पृथक समितियों का गठन किया गया है । इन समितियों में प्रमुख

(1) व्यापार एवं विकास समिति,

(2) व्यापार एवं पर्यावरण समिति,

(3) भुगतान सन्तुलन प्रतिबन्ध समिति, तथा

(4) वित्त एवं प्रशासन समिति आदि । इन सभी समितियों की सदस्यता सभी सदस्य राष्ट्रों के लिए खुली रहती है ।

(ब) सामान्य परिषद् -

विश्व व्यापार संगठन के संगठनात्मक ढाँचे में द्वितीय स्तर पर सामान्य परिषद् का गठन किया गया है । इसमें प्रत्येक सदस्य राष्ट्र का एक स्थायी प्रतिनिधि होता है । इस परिषद् के प्रमुख कार्य है -

(1) मन्त्रिस्तरीय सम्मेलन के निर्णयों को लागू करना,

(2) आवश्यकता पड़ने पर अपने स्तर पर कुछ निर्णय लेना,

(3) विवादों के निपटारे से सम्बन्धित घटक एवं व्यापार नीति समीक्षा प्रक्रिया से सम्बन्धित बैठके आयोजित करना ।

(4) अन्तर-सरकारी संगठन तथा गैर सरकारी संगठन जो किसी रूप में इस संगठन से सम्बन्धित हो, उनसे परामर्श करना एवं प्रभावपूर्ण संयोग बनाये रखना है ।

(स) विभिन्न बहुपक्षीय समझोता परिषदें -

विश्व व्यापार संगठन के तृतीय स्तर पर विभिन्न बहुपक्षीय समझौता परिषदों का गठन किया गया है इन परिषदों में प्रमुख हैं :

(1) वस्तु व्यापार एवं सेवाओं में व्यापार पर सामान्य समझौता परिषद

(2) व्यापार सम्बन्धी बौद्धिक अधिकार परिषद्

(3) व्यापार सम्बन्धी निवेश उपाय परिषद् तथा

(4) टेक्सटाइल एवं वस्त्रों पर समझौता ।

इन समझोतों के संचालन की देखभाल हेतु प्रत्येक की एक-एक पृथक परिषद का गठन भी किया गया है ।

(द) सचिवालय -

विश्व व्यापार संगठन का अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर एक महत्वपूर्ण एवं पृथक वैधानिक अस्तित्व है । इस दृष्टि से इस संगठन के दिन प्रतिदिन के प्रशासनिक कार्यो को सम्पन्न बनाने के लिए इसका एक सचिवालय भी है । इस सचिवालय का सर्वोच्च अधिकारी महानिदेशक (Director General) होता है । महानिदेशक की नियुक्ति चार वर्ष की अवधि के लिए सामान्य परिषद द्वारा की जाती है ।

मुख्यालय

विश्व व्यापार संगठन का मुख्यालय जेनेवा में है ।

सम्बन्ध समितियाँ

विश्व व्यापार संगठन के कार्यो को निर्बाध पूर्वक संचालित किये जाने के उद्देश्य से निम्न सम्बद्ध समितियों का गठन भी किया गया है :

1. विवाद निवारण समिति
2. व्यापार नीति समीक्षा समिति

विश्व व्यापार संगठन के प्रमुख कार्य (Functions of World Trade Organisation)

(1) **सामूहिक संस्थागत मंच -** विश्व व्यापार संगठन एक सामूहिक संस्थागत मंच के रूप में कार्य करता है । इसके अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय समझौते से सम्बन्धित विचार विमर्श किये जाते हैं । इन विचार विमर्श के दौरान हुये समझौतों को लागू किये जाने की दिशा में भी इस संस्थागत मंच द्वारा प्रयास किये जाते हैं ।

(2) **विश्व व्यापार समझौते हेतु प्रबन्ध -** विश्व व्यापार संगठन विचार विमर्श के माध्यम से जिन समझौतों को अन्तिम रूप प्रदान करता है उनके कार्यान्यवय प्रशासन एवं परिचालन हेतु आवश्यक सुविधाएँ प्रदान की जाती है ।

(3) **व्यापार एवं प्रशुल्क सम्बन्धि विचार विमर्श -** विश्व व्यापार संगठन व्यापार एवं प्रशुल्क सम्बन्धि एक मंच प्रदान करता है । कोई भी राष्ट्र प्रशुल्क सम्बन्धी किसी भी मसले पर इस मंच के माध्यम से विचार विमर्श कर सकता है ।

(4) **व्यापार नीति समीक्षा का क्रियानायन -** विश्व व्यापार संगठन व्यापार नीति की समीक्षा एवं प्रक्रिया के प्रावधानों को लागू किये जाने के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण कार्य करता है । इस मंच द्वारा व्यापार नीति समीक्षा प्रक्रिया से सम्बन्धित नियमों एवं प्रावधानों को लागू किया जाता है ।

(5) **विवादों को सुलझाना -** विश्व व्यापार संगठन सदस्य राष्ट्रों के मध्य किसी मसले पर उत्पन्न हुए विवादों के निपटारे हेतु इनसे सम्बन्धित नियमों एवं प्रक्रियाओं का निर्देशन करता है ।

(6) **अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं से सहयोग -** विश्व व्यापार संगठन महत्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक संस्थाओं जैसे विश्व बैंक तथा अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष आदि संस्थाओं को इनके कार्य संचालन में सहयोग प्रदान करता है । इसका प्रमुख उद्देश्य वैश्विक आर्थिक नीति निर्माण में अधिक सामंजस्य स्थापित करना है ।

(7) **विश्व संसाधनों का अनुकूलतम प्रयोग -** विश्व व्यापार संगठन सदस्य राष्ट्रों को एक ऐसा मंच प्रदान करता है जिससे वे आपसी विचार विमर्श द्वारा विश्व संसाधनों के अनुकूलतम प्रयोग हेतु योजना तैयार करते है ।

अत: यह स्पष्ट होता है कि इस संगठन के कार्यो में उन सभी बातों का समावेश है जिनका अनुसरण करके इस मंच के सदस्य देशों को समझौतों से सम्बन्धित मामलों पर विचार विमर्श करने का एक सामूहिक संस्थागत मंच प्राप्त होता है । इसके साथ ही सदस्य राष्ट्रों को एकीकृत स्थायी एवं सुदृढ़ बहुपक्षीय प्रणाली द्वारा व्यापार सम्बन्धों के विस्तार, वैधानिक ढंग से विवादों के निपटारे तथा व्यापार नीति समीक्षा की प्रक्रिया के प्रावधानों को लागू करने में सहायता प्राप्त होती है ।

18.9 विश्व व्यापार संगठन के लाभ

(1) **उन्नत तकनीक का प्रयोग -** विदेशी पूंजी निवेश के साथ उन्नत तकनीक का प्रयोग बढेगा जिससे अन्र्तराष्ट्रीय व्यापार में वृद्धि हो सकेगी ।

(2) **संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग -** विश्व व्यापार संगठन सदस्य राष्ट्रों को विश्व संसाधनों के अनुकूलतम उपयोग का एक सामान्य मंच प्रस्तुत करेगा । इस मंच का उपयोग कर अन्तर्राष्ट्रीय समृद्धि एवं विकास का मार्ग प्रशस्त होगा ।

(3) **बहु पक्षीय व्यापार में वृद्धि -** इस व्यापार संगठन रूपी मंच के प्रयोग से एक ऐसी बहु पक्षीय व्यापार की प्रणाली विकसित होगी जिसमें सभी देशों को निर्यात संवर्द्धन के समान अवसर प्राप्त होने के कारण निर्यातों में वृद्धि होगी ।

(4) **बाजार में वृद्धि -** विश्व व्यापार संगठन के संचालन से ऐसी अपेक्षा है कि औद्योगिक उत्पादों पर उच्च स्तरीय तटकर बन्धनों द्वारा विकसित देशों के लिए व्यापार पहुँच सुरक्षा 78 प्रतिशत से 99 प्रतिशत तथा विकासशील राष्ट्रों के लिए यह सुरक्षा 22 प्रतिशत से 72 प्रतिशत होने की संभावना है ।

(5) **कृषि उत्पादों की सुरक्षा -** विश्व व्यापार संगठन के द्वारा गैट-तटकर बाधाओं के तटकरीयकरण के कार्यक्रम के तहत कृषि उत्पादों को शत प्रतिशत सुरक्षा प्राप्त होने की आशा है ।

(6) **औद्योगिक उत्पादों की तटकर दर में कमी -** विश्व व्यापार संगठन के विकसित सदस्य राष्ट्र अपने औद्योगिक उत्पादों के तटकरों में लगभग 38 प्रतिशत की कमी करेंगें । इसके फलस्वरूप औद्योगिक उत्पादों की तटकर दर 6.3 प्रतिशत से घटकर 3.9 प्रतिशत रह जायेगी ।

(7) **विकसित देशों के आयातित औद्योगिक उत्पादों में 20 प्रतिशत से 43 प्रतिशत तक का उछाल -** विकसित देशों में सीमा शुल्कों में कटौती के फलस्वरूप उनके आयातित औद्योगिक उत्पादों की राशि में 20 प्रतिशत से 43 प्रतिशत तक वृद्धि की सम्भावना है । इसी प्रकार शीर्ष तटकरों के कारण आयात अनुपात 7 प्रतिशत से घटकर 5 प्रतिशत रह जायेगा ।

(8) **विकासशील देशों से आयात में प्रशुल्क दरों में कटौती से विकासशील देशों का लाभ-** विकासशील देशों से विकसित राष्ट्रों द्वार आयात किये जाने वाले बहुत से पदार्थो पर प्रशुल्क दरों में कटौती से विकासशील राष्ट्रों के निर्यातों में वृद्धि का मार्ग प्रशस्त होगा ।

(9) **विकासशील देशो के निर्यात में सकारात्मक वृद्धि -** विकासशील देशों को अपने प्राथमिक उत्पादों को विकसित देशों में बाजार उपलब्ध होने से उन्हें अपने निर्यातों में सकारात्मक वृद्धि का अवसर मिलेगा ।

(10) **व्यापार एवं अन्य क्षेत्रों में लाभ -** व्यापार एवं वित्तीय सेवाऐं, पर्यटन एवं यात्रा व्यवसाय क्षेत्रों में व्यापार वृद्धि से सभी राष्ट्रों को लाभ होगा ।

(11) **प्रतिस्पर्द्धात्मक नीची कीमतों का लाभ -** उपभोक्ताओं को प्रतिस्पर्द्धात्मक नीची कीमतों पर उपभोग का अवसर प्राप्त होगा और उन्हें उन वस्तुओं के उपभोग का भी अवसर मिलेगा जो अन्यथा सम्भव नहीं थी ।

(12) **उत्पादन लागतों में कमी -** बढ़ती प्रतिस्पर्द्धा और कुशलतम उत्पादन व्यवस्थाओं के कारण सभी देशों में उत्पादन लागतों में कमी के प्रयास से सभी के लिये लाभ का सौदा होगा ।

18.10 विश्व व्यापार संगठन से कहानियॉ

1. **भौतिक सम्पदा अधिकारों पर दुष्प्रभाव :** इसके अन्तर्गत विकासशील देशों को कॉपीराइट, ट्रेड मार्क, पेटेन्ट अधिकार आदि के लिये भारी मात्रा में रॉयल्टी भुगतान का भार वहन करना पड़ेगा ।
2. **बहुराष्ट्रीय कम्पनियों से प्रतिस्पर्द्वा** विश्व व्यापार संगठन में हुए समझौते का पालन किये जाने के कारण विकासशील देशों को बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के प्रवेश का मार्ग खोलना होगा एवं तीव्र प्रतिस्पर्द्वा का सामना करना पडेगा ।

3. **सेवा क्षेत्रों में विदेशी कम्पनियों के आधिपत्य का भय :** विश्व व्यापार संगठन के कारण भारत में बैकिंग, बीमा, पर्यटन, संचार, विज्ञापन, परामर्श सेवाएँ आदि क्षेत्रों में स्वतन्त्र प्रवेश विकासशील देशों में अस्थिर कमजोर, कम्पनियों के अस्तित्व को खतरे में डाल सकती है ।
4. **खाद्यान्नों के अनिवार्य आयात :** यदि खाधान्नों के अनिवार्य आयात की शर्त विकासशील देशों में खाधान्नों में मूल्यों के गिरावट का करण बनती है तो उनकी खाधान्नों में आत्म निर्भरता का प्रयास विफल हो जाएगा ।
5. **कृषि एवं अन्य क्षेत्रों में सरकारी अनुदान में कमी :** यदि कृषि एवं अन्य क्षेत्रों में सरकारी अनुदान में कमी का प्रयास किया जाता है तो इससे उत्पादन लागतों में वृद्धि होगी जो भारत की प्रतिस्पर्द्धात्मक शक्ति में कमी कर सकती है ।
6. **पर्यावरण के मुद्दे का शोषण :** विकसित देशों द्वारा पर्यावरण के मुद्दे के आधार पर विकासशील राष्ट्रों में उद्योगों की स्थापना में प्रदूषण नियन्त्रण के लिये आधुनिकतम महँगी प्रविधियों के अपनाने की बाध्यता उत्पन्न की जा रही है ।

आन्तरिक आर्थिक नीतियों के निर्धारण में हस्तक्षेप :

विश्व व्यापार संगठन के अन्तर्गत समझौतों के परिणाम स्वरूप भारत को अपनी आर्थिक नीतियों को वैश्विक आर्थिक नीति के अनुरूप एकीकृत करना होगा । अत: आन्तरिक नीतियों के निर्धारण में भारत की स्वतंत्रता का हनन होगा ।

18.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. वैश्वीकरण से आप क्या समझते है? इसके पक्ष व विपक्ष में तर्क दीजिए ।
2. भारतीय अर्थव्यवस्था पर वैश्वीकरण के प्रभावों की व्याख्या कीजिए ।
3. वैश्वीकरण की व्याख्या किन किन क्षेत्रों में की जा सकती है?
4. विश्व व्यापार संगठन के प्रमुख उद्धेश्य तथा कार्यो की विवेचना कीजिए ।
5. विश्व व्यापार संगठन की स्थापना के उद्धेश्यों तथा उसके सम्भावित लाभों एवं खतरों की विवेचना कीजिए ।
6. विश्व व्यापार संगठन से भारत को प्राप्त होने वाले लाभों की विवेचना कीजिए । भारतीय अर्थव्यवस्था पर इसके क्या विपरीत प्रभाव सम्भावित है ।

18.12 संदर्भ ग्रन्थ

भारतीय अर्थव्यवस्था	:	शर्मा एवं सिंघई
भारतीय अर्थव्यवस्था	:	मिश्रा एवं धुरी
भारतीय अर्थव्यवस्था	:	ए. एन. अग्रवाल
भारत का आर्थिक विकास	:	मामोरिया, जैन

इकाई-19: विदेशी विनियोग एवं एकजुटता

इकाई की रूपरेखा :

19.1 पृष्ठभूमि
19.2 विदेशी पूँजी का अर्थ
19.3 विदेशी पूँजी एवं सहायता की आवश्यकता
19.4 विदेशी पूँजी विनियोग के प्रकार
19.5 विदेशी पूँजी की मुख्य विशेषताएँ
19.6 भारत में विदेशी पूँजी निवेश के प्रमुख स्त्रोत
19.7 विदेशी सहायता का अर्थ एवं विशेषताएँ
19.8 भारत सरकार की विदेशी पूँजी निवेश एवं विदेशी सहायता के सम्बन्ध में नीति
19.9 विदेशी पूँजी निवेश एवं विदेशी सहायता की भूमिका अथवा लाभ
19.10 विदेशी पूँजी निवेश एवं विदेशी सहायता के सम्भावित खतरे या हानियाँ
19.11 विदेशी एकजुटता
19.12 अभ्यासार्थ प्रश्न
19.13 संदर्भ

19.1 पृष्ठभूमि

भारत एक विकासशील देश है । स्वतंत्रता प्राप्ति के समय यह आर्थिक दृष्टि से एवं कृषि, सिंचाई, उद्योग, शक्ति, परिवहन, तकनीकी ज्ञान इत्यादि सभी क्षेत्र में पिछड़ी अवस्था में था । नियोजित आर्थिक विकास चुनकर विदेशी पूंजी का उपयोग करना आवश्यक समझा गया ।

प्रारंभ में विदेशी पूंजी विनियोग की आवश्यकता आर्थिक पिछड़ेपन को दूर करने के लिये थी, लेकिन अब विकास की गति को बनाये रखने के लिए, पुराने ऋणों का भुगतान करने के लिये तथा विदेशी व्यापार के अत्यधिक घाटे से उत्पन्न स्थिति का मुकाबला करने के लिये रियायती शर्तों पर विदेशी पूंजी का मिलना आवश्यक हो गया है ।

किसी भी देश के औद्योगिक एवं आर्थिक विकास हेतु पूँजी निर्माण की आवश्यकता होती है। विकसित देशों में उत्पादन एवं आय की दरें ऊँची होने के कारण पूँजी निर्माण की दर भी ऊँची रहती है । लेकिन विकासशील देशों में निर्धनता एवं बेरोजगारी के दुष्चक्र के कारण पूँजी-निर्माण की दर नीची रहती है । फलस्वरुप आर्थिक विकास की दर भी धीमी रहती है । विकासशील देश पूँजी की बढ़ती हुई आवश्यकता की पूर्ति घरेलु बचत तथा निर्यातों से करने में असमर्थ है । अत: ऐसी स्थिति में इनके समक्ष एक ही विकल्प बचता है - विदेशी पूँजी व विदेशी सहायता । आज की आर्थिक उदारीकरण एवं वैश्वीकरण की नीति ने विदेशी पूँजी के निवेश को महत्ता प्रदान की गई है ।

19.2 विदेशी पूँजी का अर्थ (Meaning of Foreign Capital):

पूँजी उत्पादन का एक साधन है जिसे ऐसे धन के रुप में परिभाषित किया जाता है जिसे और अधिक धन उत्पन्न करने हेतु प्रयुक्त किया जाये । एक देश में गैर-निवासी नागरिकों (Non-residents)

विदेशियों, विदेशी फर्मों या संस्थाओं द्वारा किये गए प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष विनियोग को विदेशी पूँजी की संज्ञा दी जाती है ।

19.3 विदेशी पूँजी एवं सहायता की आवश्यकता (Need of Foreign Capital):

विकासशील देशों के पास पूँजी का अभाव होता है । निर्धनता के कुचक्र के कारण वहाँ पूँजी निर्माण करना कठिन होता है । आर्थिक विकास के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए उन्हें विदेशी पूँजी पर ही निर्भर रहना पड़ता है । इसकी आवश्यकता के मुख्य कारण निम्नलिखित

(1) **निम्न आय स्तर** - विकासशील देशों में आय स्तर नीचा होने के कारण बचत एवं पूँजी निर्माण सम्भव नहीं है ।

(2) **प्राविधिक ज्ञान का अभाव -** विकासशील देशों में तकनीकी ज्ञान का अभाव है । अत: विकासशील देशों में अपना तकनीकी ज्ञान बढ़ाने के लिए विदेशी तकनीकी विशेषज्ञों की सेवायें लेनी पड़ती है। साथ ही विदेशी मशीनें एवं संसाधन भी लेने पड़ते हैं ।

(3) **आर्थिक असमानता -** विकासशील एवं विकसित देशों में व्यापक आर्थिक असमानता है । विकासशील देशों में जहाँ अधिकांश जनसंख्या गरीबी की रेखा से नीचे जीवनयापन करती है वहीं विकसित देशों में अत्यधिक उपभोग की अवस्था विद्यमान है । इस गरीबी को दूर करके ही असमानता की खाई को कम किया जा सकता है जो विदेशी पूँजी द्वारा सम्भव है ।

(4) **भुगतान असाम्यता -** विकासशील देश में भुगतान असाम्यता की समस्या से ग्रसित है एवं इसका समाधान विदेशी पूँजी एव सहायता द्वारा ही सम्भव है ।

(5) **राजनीतिक सहयोग -** यद्यपि विश्व से शीतयुद्ध समाप्त हो गया है फिर भी विश्व गुटों में बँटा हुआ है । विदेशी सहायता विकसित देशों के लिए सद्भावना व सहयोग का प्रतीक होने के साथ–साथ अपना प्रभाव बढ़ाने का अवसर भी है ।

(6) **तीव्र विकास का दायित्व -** एक ओर जहाँ विकासशील देशों में तीव्र आर्थिक विकास की ललक है वहीं विकसित देशों का भी यह नैतिक दायित्व है कि वे विकासशील देशों को आर्थिक सहायता देकर विकास का मार्ग प्रशस्त करें ।

(7) **विदेशी विनिमय संकट -** विदेशी विनिमय संकट को हल करने हेतु जहाँ आयात तेजी से बढ़ते हैं और निर्यातों को बढ़ाने में काफी कठिनाई का सामना पड़ता है, वहाँ विदेशी सहायता से ही संकट को टाला जा सकता है ।

(8) **आयात बिल का अत्यधिक होना** - कुछ वर्षो से पैट्रोल निर्यातक देश द्वारा पैट्रोल के भावों में अत्यधिक वृद्धि कर देने से हमारा आयात-बिल बहुत ऊँचा हो गया । अत यह अत्यन्त आवश्यक है कि भारत रियायती शर्तों पर विदेशी पूंजीगत सहायता प्राप्त करें ।

(9) **खनन, परिवहन व भारी उद्योगों की विकास** - औद्योगिक देशों की उत्पादन विधियों तथा उनके अनुभवों से हम भी सिंचाई परियोजनाओं, खनिज, व्यवसाय, रेल, बन्दरगाह, बाँध एवं आधारभूत पूँजीगत उद्योगों का विकास कर सकते हैं । अत: यह आवश्यक है कि भारत अपने आर्थिक विकास में विदेशी पूंजीगत सहायता प्राप्त करें।

(10) **स्वदेशी पूँजी का सर्वोत्तम उपयोग -** स्वदेशी पूँजी का सर्वोत्तम उपयोग भी विदेशी पूंजी सहायता से संभव है, जहाँ कोई भी उद्योगपति विदेशों से मशीनें, कच्चा माल व अन्य सामग्री आयात कर ही उद्योग स्थापित कर सकता है ।

(11) **विदेशी सहायता पर निर्भरता** - हमारी विदेशी सहायता पर निर्भरता समय-समय पर ऋणों के भुगतान एवं पुराने ऋणों को चुकाने में भी आवश्यक हो जाती है ।

19.4 विदेशी पूंजी विनियोग के प्रकार

विदेशी पूंजीगत साधनों के स्त्रोत तीन प्रकार के होते हैं -

(1) **अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं से प्राप्त ऋण -** अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं जैसे विश्व बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) एवं प्रादेशिक वित्तीय संस्थाओं जैसे - एशियन विकास बैंक से भी ऋण प्राप्त किये जाते हैं । इन ऋणों की मात्रा अलग-अलग परिस्थितियों में अलग-अलग होती है ।

(2) **विदेशी सरकारों से प्राप्त ऋण -** भारत कभी-कभी आवश्यकता पड़ने पर अमेरिका, फ्राँस, ब्रिटेन, जापान, रुस, कनाडा आदि देशों से ऋण लेता है ।

(3) **बहुराष्ट्रीय निगमों अथवा विदेशी बैकों से -** विदेशी निजी कम्पनियों अथवा बहुराष्ट्रीय निगमों से व्यापारिक ऋण की राशियाँ प्राप्त की जाती है ।

विदेशी पूंजी का वर्गीकरण (Classfication of Foreign Capital)

1. **द्विपक्षीय एवं बहुपक्षीय सहायता-** विश्व बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय विकास संघ इत्यादि से प्राप्त सहायता बहुपक्षीय सहायता कही जाती है । द्विपक्षीय सहायता में विदेशों से प्राप्त होने वाला निजी विनियोग तथा सरकारी ऋण एवं अनुदान सम्मिलित होते हैं । बहुपक्षीय सहायता में दीर्घकालीन संस्थागत सहायता सम्मिलित की जाती है।
2. **बँधी गैर-परियोजना तथा बिना बँधी-गैर परियोजना सहायता -** इसके अंतर्गत भारत सहायता क्लब के देश जो गैर-परियोजना सहायता देते हैं उसका अधिकांश भाग बंधी सहायता के रुप में होता है ।
3. **उदार व अनुदार ऋण -** विदेशी सहायता के अंतर्गत विदेशों से प्राप्त होने वाले ऋण व अनुदान सम्मिलित होते हैं । वर्तमान में, अनुदानों एवं 'उदार' ऋणों को ज्यादा महत्व दिया जाने लगा है। उदार ऋणों का तात्पर्य विकासशील देशों हेतु अपेक्षाकृत अधिक लम्बी अवधि हेतु कम ब्याज दर पर ऋण सुविधा उपलब्ध कराना है । ऋणी देशों से उसी देश की मुद्रा में वापसी भुगतान लेना भी 'उदार' ऋणों के अंतर्गत आता है । 'अनुदार' या कठोर ऋणों में ब्याज की दर अधिक ऊँची तथा अवधि कम होती है ।
4. **परियोजना एवं गैर-परियोजना सहायता -** विश्व बैंक व अन्य देशों द्वारा परियोजना सहायता में विशेष परियोजना को पूरा करने के लिए ही सहायता उपलब्ध करायी जाती है । अन्तर्राष्ट्रीय विकास संघ अथवा विश्व बैंक द्वारा प्राप्त गैर-परियोजना सहायता मिलती है, वह बिना बँधी या स्वतंत्र किस्म की होती है । गैर-परियोजना सहायता का भारत जैसे विकासशील देशों के लिये काफी महत्व हैं ।

19.5 विदेशी पूँजी की मुख्य विशेषताएँ (Main Characteristics of Foreign Capital)

(1) विदेशी पूँजी निवेश एक देश के नागरिकों द्वारा लाभ कमाने के लिए दूसरे देश में किया गया पूँजी हस्तान्तरण है ।

(2) विदेशी पूँजी निवेश विदेशी मशीन व औजार, विदेशी तकनीकी एवं तकनीकी ज्ञान एवं विदेशी मुद्रा में ऋण के रुप में किया जाता है ।

(3) विदेशी पूँजी निवेश दोनों देशों के कानूनों, निवेशकों के आपसी समझौतों एवं शर्तों के आधार पर किया जाता है ।

(4) विदेशी पूँजी निवेश राजनैतिक एवं आर्थिक दोनों उद्देश्यों के लिए किया जाता है। विदेशी पूँजी निवेश की शर्तें उदार अथवा कठोर हो सकती है ।

(5) विदेशी पूँजी निवेश विदेशी हिस्सा पूँजी, विदेशी सहयोग तथा विदेशी मुद्रा में ऋण एवं सहायता के रुप में किया जा सकता है ।

19.6 भारत में विदेशी पूँजी निवेश के प्रमुख स्त्रोत (Main Source of Foreign Capital Investment in India)

तालिका 1 : भारत में निवेश करने वाले 10 प्रमुख देश (In Rs. Crore)

देश	2005-06	2006-07	2007-08
मॉरिशस	11441	28759	44483
यू.एस.ए.	2210	3861	4377
यू.के.	1164	8389	4377
सिंगापुर	1218	2662	12319
नीदरलैण्ड340	2905	2780	
जापान	925	382	3336
जर्मनी	1345	540	2075
फ्रांस	82	528	583
साइप्रस	310	266	3385
यु.ऐ.ई.	219	1174	1039
कुल निवेश	24613	70630	98664

तालिका 1 में भारत में निवेश करने वाले दस प्रमुख देशों को दर्शाया गया है ।

भारत में विदेशी पूँजी निवेश के प्रमुख स्त्रोत निम्नलिखित हैं -

(1) निजी क्षेत्र विदेशी पूँजी निवेश (Private Sector Foreign Capital Investment)

(2) गैर-निवासी निवेश एवं निक्षेप (Non-Resident Investment & Deposti)

(3) विदेशी वाणिज्यिक ऋण (External Commercial Borrowings)

(4) विदेशी सहायता (Foreign Assitance)

I. **निजी क्षेत्र विदेशी पूँजी निवेश**:

निजी क्षेत्र विदेशी पूँजी निवेश का आशय एक देश को निजी स्त्रोत की कम्पनियों या संख्याओं या निगमों द्वारा एक दूसरे देश की निजी या सार्वजनिक संस्थाओं में निवेश करने से है । निजी क्षेत्र का विदेशी पूँजी निवेश निम्नलिखित दो प्रकार का होता है :

1. **प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (Direct Foreign Investment) :** विदेशी प्रत्यक्ष निवेश में बहु राष्ट्रीय निगमों, अन्य विदेशी कम्पनियों एवं प्रवासी भारतीयों के निवेश आते हैं । भारत की नवीन औद्योगिक नीति, 1991 के अंतर्गत कुछ चुने हु एउद्योगों में केवल 51% तक विदेशी पूँजी लगाने की छूट थी । किन्तु इस सीमा को बाद में 74% तथा अन्ततः 100% तक बढ़ा दिया गया है । इसी प्रकार उद्योगों में 100% विदेशी इक्विटी पूँजी निवेश किया जा सकता है ।

तालिका 2 : भारत में निजी विदेशी पूँजी निवेश

प्रमुख क्षेत्र	निवेशित राशि		निवेश का प्रतिशत
	Rs. (in Million)	US$ (in Million)	
सेवा क्षेत्र	606519.00	14255.78	21.85
कम्यूटर सॉफ्टवेयर एवं हार्डवेयर	329839.73	7476.50	11.88
दूर संचार क्षेत्र	176865.61	4073.78	6.37
निर्माण कार्य	182312.56	4324.50	6.57
ऑटोमोबाइल	112407.81	2582.47	4.05
रियल एस्टेट	154385.46	3745.32	5.56
उर्जा विकास	114006.91	2642.89	4.11
रसायन	66843.28	1516.57	2.41
बंदरगाह	59849.61	1474.45	2.16
पेट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस	83519.69	2006.80	3.01

तालिका 2 में क्षेत्र के अनुसार विदेशी निवेश बताया गया है । 10 प्रमुख क्षेत्र में अप्रैल, 2000 से मई, 2008 तक कितना विदेशी निवेश हु आ है एवं कुल निवेश का प्रतिशत का विस्तृत विवरण दिया गया हैं ।

कुछ विशिष्ट क्षेत्रों में विदेशी पूँजी निवेश की छूट प्रदान की है, जैसे - निजी क्षेत्र के बैंकों में इक्विटी पूँजी 74%, लघु परिवहन क्षेत्र (घरेलू में 49%, टेलीकॉम क्षैत्र की कुछ सेवाओं में 74%, किन्तु वैयक्तिक एवं तकनीकी पत्रिकाओं के मुद्रण में, पेट्रोलियम-उत्पादों के विपणन पर लघु एवं मध्यम श्रैणी के तेल क्षेत्रों में, पेट्रोलियम उत्पादों की पाइपलाइन में, प्राकृतिक गैस । तरल प्राकृतिक गैस में, चाय क्षेत्र में, एकीकृत नगर निर्माण में, औषधि एवं दवा क्षेत्र में, ई-कामर्स के क्षेत्र में, विशेष आर्थिक क्षेत्र में 100% तक विदेशी पूँजी का निवेश किया जा सकता है ।

2. विदेशी पोर्टफोलियो निवेश: इसमें विदेशी संस्थागत निवेशकों द्वारा भारत के स्कन्ध बाजार में किया जाने वाला निवेश आता है ।

ऐसी विदेशी पूँजी का दूसरे देशी कम्पनियों / निगमों पर न तो स्वामित्व होता है और न ही उनके प्रबन्ध पर नियंत्रण करती हैं । ऐसी कम्पनियों का प्रबन्ध एवं स्वामित्व उस देश के लोगों का ही होता है, जहाँ ये कम्पनियाँ स्थापित होती है ।

II. **गैर-निवासी निवेश एवं निक्षेप :** भारत में विदेशी पूँजी निवेश के द्वितीय स्त्रोत गैर-निवासी एवं निक्षेप हैं । गैर-निवासी निवेश एवं निक्षेप का आशय विदेशी पूँजी प्रवाह से है जो भारतीय नागरिक अथवा भारतीय मूल के लोग जो विदेशों में जाकर वहाँ के निवासी बन गये हैं, वे भारत के बैंक खातों में अपने द्वारा भेजे गये कोषों उनके द्वारा भारत में अर्जित वैधानिक और विदेशों से लाये गये विदेशी विनियम को रिजर्व बैंक के अधिकृत बैंकों में जमा करा सकते हैं । नई गैर-निवासी जमा राशियाँ दो खातों में ही निवेश की सुविधा चालू है ।

1. विदेशी मुद्रा गैर-निवासी (बैंक) एफ.सी.एन.आर. (बी) और
2. गैर-निवासी (विदेशी) रुपयों, लेखा एन.आर.ई.आर.ए.

III. **विदेशी वाणिज्यिक ऋण:** भारत में विदेशी पूँजी निवेश का यह एक ऐसा स्त्रोत है जो विदेशों में स्थित विभिन्न वित्तीय संस्थाओं से उधार लिया जाता है, जैसे - अमेरिका के निर्यात-आयात बैंक, जापान के निर्यात आयात-बैंक एवं ब्रिटेन के ईसीजीसी आदि । यह एक प्रकार से निजी क्षेत्र के पूँजी निवेश का ही एक हिस्सा है ।

IV. **विदेशी सहायता (Foreign Aid) :** भारत में विदेशी पूँजी निवेश के स्त्रोतों में विदेशी सहायता भी एक प्रमुख स्त्रोत है इसके प्रमुख स्त्रोत विश्व बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय विकास संघ, ब्रिटेन, पश्चिमी जर्मनी, जापान, रुस तथा तेल उत्पादक राष्ट्र रहे हैं । 31 मार्च, 2006 तक प्राप्त विदेशी सहायता में विश्व बैंक तथा विकास संघ का सर्वोच्च स्थान रहा है ।

19.7 विदेशी सहायता का अर्थ एवं विशेषताएँ (Meaning and Characteristics of Foreign Aid):

सामान्यत: विदेशी सहायता का अर्थ ऐसी धन राशियों से है जो एक देश द्वारा किसी दूसरे देश को ऋण अथवा अनुदान (Loan or Grant) के रुप में दी जाती है । अन्य शब्दों में एक देश से दूसरे देश को आर्थिक साधनों का वह हस्तान्तरण विदेशी सहायता कहलाता है जो ऋणों, तकनीकी, ज्ञान पूँजीगत साधनों और अनुदानों के रुप में प्राप्त होता है ।

विदेशी सहायता की मुख्य परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं :

आई.जी. पटेल के अनुसार - "विदेशी सहायता केवल उसी सहायता को कहा जाता है जिसका निहित उद्देश्य विकास कार्यो को सुगम बनाना और बढ़ावा देना होता है । "

प्रो. जी. एन. आर्य के शब्दों में - "विदेशी सहायता पूँजी प्रवाह का वह भाग है जो सामान्य बाजार को परिस्थितियों के अनुरुप न होकर रियायती शर्तों पर दिया जाता हो ।

संयुक्त राष्ट्र संघ के अनुसार - "विदेशी सहायता गैर-सैनिक उद्देश्यों के लिए विभिन्न संस्थाओं एवं अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं द्वारा प्रदत अनुदान एवं विशुद्ध दीर्घकाल होते हैं इसमें उन पूँजी आगमनों का भी समावेश होता है जो बाजार के सामान्य प्रोत्साहन से सम्भव नहीं होते हैं ।"

विदेशी सहायता की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :

1. यह एक देश द्वारा किसी दूसरे देश को ऋणों, अनुदानों, तकनीकी ज्ञान एवं पूँजीगत साधनों के रुप में दी जाती है ।
2. यह विदेशी सरकारों अथवा अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं द्वारा दी जाने वाली आर्थिक सहायता है ।
3. ऐसी सहायता का उद्देश्य दूसरे देश के विकास कार्यो को सुगम बनाना एवं बढ़ावा देना होता है ।
4. यह पूँजी प्रवाह का वह भाग है जो सामान्य बाजार को परिस्थितियों के अनुरुप न होकर रियायती शर्तों पर प्रदान की जाती है ।
5. इसमें गैर-सैनिक उद्देश्यों को किये गये आर्थिक, वित्तीय एवं तकनीकी ज्ञान का हस्तान्तरण का समावेश होता है ।

भारत के विदेशी सहायता के स्त्रोत (Sources of Foreign aid to India) :

भारत को विदेशी सहायता के स्त्रोत निम्नलिखित हैं :

1. विदेशी निजी विनियोग, ऋण एवं आर्थिक सहायता,
2. विदेशी सरकारों से प्राप्त ऋण एवं अनुदान
3. अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं द्वारा ऋण एवं अनुदान
4. विदेशी व्यापारिक ऋण ।

प्रत्येक स्त्रोत का संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है -

I. **विदेशी निजी विनियोग. ऋण एवं आर्थिक सहायता:** भारत में इस विदेशी सहायता स्त्रोत के अन्तर्गत निम्नलिखित को सम्मिलित किया जाता है:

1. **विदेशी पोर्टफोलियो विनियोग** - विदेशी सहायता की यह एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें विदेशी निजी पूँजीपति या संस्था ऋण लेने वाले देश की किसी फर्म-कम्पनी के ब्राण्डस एवं प्रतिभूतियों को खरीद लेते हैं यही नहीं, इसमें ग्लोबल डिपोटरी रिसीट्स, (विदेशों में अंश बेचने से प्राप्त राशियाँ) विदेशी करेन्सी में परिवर्तनीय ब्राण्ड्स तथा अन्य समुद्रपार बाण्ड़स आदि भी सम्मिलित होते हैं ।
2. **विदेशी प्रत्यक्ष विनियोग -** इसके अन्तर्गत विदेशी पूँजीपति एवं निजी संस्थाओं द्वारा ऋण देश में स्थापित कम्पनियों के अंश क्रय किये जाते हैं जिसके बदले उन्हें कम्पनी के स्वामित्व एवं प्रबन्ध में हस्तक्षेप करने का अधिकार मिल जाता है ।
3. **व्यापारिक बैंक -** इन बैंकों द्वारा हस्तान्तरण में विनियोग प्रत्यक्ष न होकर अप्रत्यक्ष एवं अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं के माध्यम से होता है, जिन्हें विदेशी व्यापारिक ऋण कहते हैं ।

II. **विदेशी सरकारों से प्राप्त ऋण एवं अनुदान** : विदेशी सरकारों (अमेरिका, ब्रिटेन, रुस, जापान, फ्रांस एवं जर्मनी आदि) द्वारा भारत को ऋण अनुदान, तकनीकी सहायता एवं खाद्यान्नों के निर्यात आदि के रुप में आर्थिक सहायता दी जाती है ।

III. **अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं द्वारा ऋण एवं अनुदान :** विश्व के सभी विकासशील राष्ट्रों को विश्व बैंक, अंतर्राष्ट्रीय विकास बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम, एशियन विकास बैंक, भारत सहायता क्लब और अंतर्राष्ट्रीय सहयोग प्रशासन आदि संस्थाओं द्वारा ऋण एवं अनुदान के रुप में सहायता प्रदान की जाती है ।

IV. **विदेशी व्यापारिक उधार** : भारत को पूँजी बाजार के विभिन्न विदेशी घटकों जैसे- अमेरिका के निर्यात-आयात बैंक, जापान के निर्यात-आयात बैंक, यूके. के निर्यात साख गारण्टी निगम आदि से व्यापारिक उधार के रुप में विदेशी सहायता प्राप्त होती है ।

19.8 भारत सरकार की विदेशी पूँजी निवेश एवं विदेशी सहायता के सम्बन्ध में नीति (Policy Relating Foreign Capital Investment and Foreign Aid of Government of India):

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् औद्योगिक नीति, 1948 में विदेशी पूँजी एवं सहायता के सम्बन्ध में स्पष्टीकरण दिया कि जहाँ तक विदेशी पूँजी का सम्बन्ध है, निगम के रुप में स्वामित्व और वास्तविक नियंत्रण में विशेष तौर पर भारतीयों का प्रभुत्व होगा, किन्तु कुछ विशेष मामलों में अलग व्यवस्था दी जा सकती है, परन्तु प्रत्येक दशा में भारतीयों को उचित प्रशिक्षण के लिए विवश अवश्य किया जायेगा ताकि आगे चलकर विदेशी विशेषज्ञ का स्थान भारतीय ग्रहण कर सकें,चूंकि इस नीति में राष्ट्रीयकरण का भय एवं विदेशी पूँजी पर नियंत्रण की बात तो कही गयी थी किन्तु विदेशी पूँजी निवेश में एक अज्ञात भय व्याप्त था ।

6 अप्रैल, 1949 को तत्कालीन प्रधानमंत्री स्वर्गीय पं. नेहरु ने संसद में महत्वपूर्ण घोषणा की ;

1. भारतीय पूँजी एवं विदेशी पूँजी में कोई भेद नहीं किया जायेगा ।
2. विदेशी हितों पर विशेष प्रतिबन्ध एवं नियंत्रण यथा सम्भव नहीं किया जायेगा ।
3. विदेशी विनियोजकों को लाभ एवं पूँजी देश से बाहर भेजने की अनुमति मुद्रा स्थिति को ध्यान में रखते हुए दी जायेगी ।
4. राष्ट्रीयकरण की स्थिति में उचित मुआवजा दिया जायेगा ।
5. सामान्यत: विदेशी कारखानों का नियंत्रण भारतीयों के हाथ में होना चाहिए । अत: प्रशिक्षण की व्यवस्था होगी।

भारत सरकार ने 1991 से नयी आर्थिक नीति में विदेशी सहायता को सख्त आवश्यकता के कारण और भारी भुगतान सन्तुलन से निपटने के लिए विदेशी पूँजी निवेश एवं विदेशी सहायता के प्रति बहुत ही उदार होकर निम्नलिखित व्यवस्था की:

1. सरकार ने कुछ चुने हुये उद्योगों में 51% से बढ़ाकर 74% तथा अन्तत: 100% विदेशी पूँजी निवेश करने की अनुमति दे दी । इसी प्रकार उद्योगों की सूची का भी विस्तार किया गया । फलत: अब नकारात्मक सूची वाले उद्योगों को छोडकर सभी उद्योगों में 100% विदेशी समता पूँजी निवेश किया जा सकता है ।

2. 2.सन् 1991 से लेकर जून, 2006 तक अनेक विशिष्ट क्षेत्रों में विदेशी पूँजी निवेश की छूट प्रदान की है:

(i) निजी क्षेत्र के ईख की समता पूँजी में 74% तक विदेशी निवेश की स्वयं अनुमति दे दी गई है ।

(ii) लघु परिवहन सेवा क्षेत्र (घरेलू) में 49% तक विदेशी पूँजी की स्वयमेव निवेश की छूट है । गैर-निवासी भारतीय 100% तक इसमें निवेश कर सकते हैं ।

(iii) टेलीकॉम क्षेत्र की कुछ सेवाओं (जैसे - बेसिक मोबाईल, ग्लोबल मोबाईल) में 74% तक विदेशी पूँजी लगाने की स्वयं में अनुमति है ।

(iv) पैट्रोलियम उत्पादों के विपणन पर (क्षेत्रीय नीति एवं नियमन प्रावधानों के अधीन) 100% विदेशी पूँजी निवेश की स्वयमेव अनुमति दे दी गई है ।

(v) लघु एवं मध्यम श्रेणी के तेल क्षेत्रों में राजकीय नीति के प्रावधानों के अधीन 100% विदेशी पूँजी निवेश का स्वयमेव अनुमति दे दी गयी है ।

(vi) प्राकृतिक गैस / तरल प्राकृतिक गैस क्षेत्र में सरकार से पूर्वानुमति लेकर 100% विदेशी पूँजी का निवेश किया जा सकता है ।

(vii) चाय क्षेत्र (चाय बागानों सहित) में सरकार की पूर्वानुमति से कुछ शर्तों के अधीन 100% विदेशी पूँजी निवेश किया जा सकता है ।

(viii) एकीकृत नगर निर्माण में सरकार की पूर्वानुमान से 100% विदेशी पूँजी निवेश किया जा सकता है । निर्माण में नगर निर्माण के असीमित आवास, रिसोर्ट, होटल, वाणिज्यिक, परिसर, शहरी आधारभूत सुविधाएँ, कोरियर सेवाएँ एवं हवाई अड्डे सम्मिलित है ।

(ix) औषधि एवं दवा क्षेत्र में 100% तक विदेशी पूँजी निवेश की स्वयं में अनुमति प्रदान कर दी गई है ।

(x) रक्षा क्षेत्र के उद्योगों में विदेशी पूँजी निवेश अधिकतम 26% किया जा सकता है लेकिन इसके लिए सरकार से लाइसेन्स लेना अनिवार्य है ।

(xi) ई-कामर्स के क्षेत्र में एक शर्त के अन्तर्गत 100% तक विदेशी पूँजी निवेश किया जा सकता है । वह शर्त यह है कि ऐसी कम्पनी को 5 वर्षो में अपनी समता पूँजी का 26४० भाग भारतीय जनता को देना होगा ।

(xii) विशेष आर्थिक क्षेत्र (SEZ) में निर्माण उद्योगों में (केवल कुछ उद्योगों को छोडकर) 100% विदेशी पूँजी निवेश की स्वयमेव अनुमति प्रदान की गयी है ।

(xiii) अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं (ADB, IFC, CDC) को भी घरेलू कम्पनियों में (RBI) एवं SEBI के प्रावधानों के अधीन निवेश की छूटें दी गयी हैं ।

(xiv) विदेशी साहस पूँजी कोष कम्पनियों को भी घरेलू साहस पूँजी कोष साहस कम्पनियों की पूँजी में (RBI एवं SEBI) के निर्णयों के अधीन निवेश करने की स्वयमेव अनुमति दे दी गई है ।

3. जिन कम्पनियों ने विदेशी तकनीक सहयोग किया है, उन्हें अपने निर्यात पर 8% एवं घरेलू विक्रय पर 5% तक रॉयल्टी भुगतान की स्वयमेव अनुमति प्रदान की गई है । रॉयल्टी भुगतान की अवधि समाप्त कर दी गयी है।

4. विदेशी पूँजी आगमन को आसान बनाने के लिए "FERA" के स्थान पर “FEMA” बनाया गया है ।

19.9 विदेशी पूँजी निवेश एवं विदेशी सहायता की भूमिका अथवा लाभ (Role & Advantages of Foreign Capital Investment and Foreign Aid) :

अन्य विकासशील राष्ट्रों की भाँति भारत में भी विदेशी पूँजी निवेश एवं विदेशी सहायता की भूमिका या लाभ प्राप्ति रही है ।

1. भावी योजनाओं में उचित मार्ग दर्शन एवं योजनाओं का सफलतापूर्वक क्रियान्वयन
2. प्राकृतिक साधनों का विदोहन व बढ़ते मूल्यों की समस्या का समाधान
3. पूँजी निवेश में वृद्धि तथा आंतरिक मंदी पर रोक
4. पारस्परिक सहयोग एवं सद्भावना
5. विदेशी विनिमय संकट का निराकरण
6. प्रबन्ध एवं तकनीकी कौशल का विकास एवं आर्थिक विकास के लिए अनुपूरक

19.10 विदेशी पूँजी निवेश एवं विदेशी सहायता के सम्भावित खतरे या हानियाँ (Disadvantages or Possible Dangers of Foreign Capital Investment and Foreign Aid)

देश के आर्थिक विकास के लिए विदेशी पूँजी निवेश एवं सहायता की भूमिका महत्वपूर्ण है, लेकिन यदि यही भूमिका राजनीतिक उद्देश्य से प्रेरित हो अथवा आर्थिक शोषण का उद्देश्य हो तो इसके निम्नलिखित संभावित खतरे या हानियाँ हो सकती हैं -

1. महँगा स्त्रोत एवं आर्थिक शोषण को बढ़ावा
2. विदेशी प्रतिस्पर्द्धा का खतरा व असन्तुलित विकास
3. राष्ट्रीय स्वाभिमान को ठेस और देश की राजनीतिक सार्वभौमिकता पर आँच
4. ब्याज एवं लाभांश के पुनर्भुगतान की समस्या

19.11 विदेशी एकजुटता (Foreign Collaborations)

एकजुटता का अर्थ विभिन्न प्रकार से संगठित होना है । जब दो अलग अलग राष्ट्र की कम्पनियाँ एकजुट होकर काम करती हैं तो उसे विदेशी एकजुटता कहते हैं । संविलयन अधिग्रहण, संयुक्त उपक्रम आदि एकजुटता के विभिन्न प्रकार हैं ।

संविलयन (Merger)

उदारीकरण एवं भूमण्डलीकरण के इस प्रतियोगी युग में अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए व्यावसायिक संस्थाएं परस्पर संगठित हो रही हैं । संविलयन इसी दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है । इसके अन्तर्गत दो या दो से अधिक कम्पनियों का परस्पर व्यूहरचनापूर्ण विलय (Strategic alliance) हो जाता है । परिणाम स्वरुप वे मिलकर प्रतियोगिता का सामना करने में सक्षम हो जाती है ।

संविलयन की परिभाषा

"दो या दो से अधिक कम्पनियों के विलय को संविलयन (Merger) कहा जाता है । संविलयन के अन्तर्गत दोनों कम्पनियों के अंशधारियों का अस्तित्व बना रहता है तथा नई कम्पनी के प्रबन्ध वं संचालन में दोनों कम्पनियों के अंशधारियों की संयुक्त भागीदारी होती है ।"

संविलयन के स्वरुप - संविलयन के मुख्य स्वरुप निम्नानुसार हो सकते हैं -

(i) संलयन

(ii) अवशोषण

(i) **संलयन (Amalgamation) -** जब दो या दो से अधिक कम्पनियाँ मिलकर एक कम्पनी का निर्माण करती है और पुरानी कम्पनियों का नई स्थापित कम्पनी में विलय हो जाता है, तो इस प्रक्रिया को संलयन कहा जाता है ।

(ii) **अवशोषण (Absorption) -** जब एक अथवा एक से अधिक कम्पनियों का किसी अन्य विद्‌यमान कम्पनी में विलय हो जाने से उसका / उनका स्वतन्त्र अस्तित्व समाप्त हो जाता है तो इस प्रकार के संविलयन को अवशोषण कहा जाता है । इसके अंतर्गत अवशोषित कम्पनी / कम्पनियों का तो समापन हो जाता है किन्तु उसको / उनके अंशधारियों का अस्तित्व बना रहता है । उन्हें एक निश्चित अनुपात में अवशोषण करने वाली कम्पनी के अंशों का आबन्टन कर दिया जाता है ।

अधिग्रहण (Acquisition)

अधिग्रहण की परिभाषा - जब एक कम्पनी, दूसरी कम्पनी की अंशपूँजी के एक बड़े भाग पर काबिज होकर उसके प्रबन्ध एवं संचालन पर अधिकार स्थापित कर लेती है इस स्थिति को अधिग्रहण (Acquisition) कहा जाता है ।

वैसे तो अधिगृहीत की जाने वाली कम्पनी के प्रबन्ध एवं संचालन पर अधिकार प्राप्त करने के लिए उसकी मात्र 50% अंश पूंजी पर नियंत्रण होना आवश्यक है । किन्तु कम्पनी पर पूरी तरह अधिकार स्थापित करने के लिए 51% अंशपूंजी का अधिगृहीत किया जाना अनिवार्य हैं।

अधिग्रहण की पद्धतियाँ (Methods of Acquisition) - अधिग्रहण की निम्नांकित दो पद्धतियाँ हो सकती हैं-

(i) **सहमति से अधिग्रहण (Consent Acquisition) -** ऐसे अधिग्रहण के अंतर्गत, अधिग्रहण करने वाली कम्पनी, अधिगहीता कम्पनी से समझौते के आधार पर उसकी सम्पतियों को क्रय करती है ।

(ii) **शत्रुतापूर्ण अधिग्रहण (Hostile Acquisition) -** जब एक कम्पनी, किसी दूसरी कम्पनी के बाजार में बिखरे हु ए छोटे छोटे अंशधारियों से अंशों का क्रय करके, उसके प्रबन्ध एवं संचालन पर नियंत्रण कर लेती है तो ऐसा अधिग्रहण शत्रुता या विद्‌वेषतापूर्ण अधिग्रहण कहलाता है ।

संविलयन तथा अधिग्रहण के प्रकार (Type of Merger and Acquisition) :

संविलयन तथा अधिग्रहण को निम्नांकित श्रेणियों में वृगीकृत किया जाता है-

1. **क्षैतिज संविलयन / अधिग्रहण (Horizontal merger or acquisition) -** एक ही व्यवसाय में संलग्न इकाइयों के परस्पर विलय एवं अधिग्रहण को इस श्रेणी में सम्मिलित किया जाता है ।

क्षैतिज संविलयन / अधिग्रहण के उद्देश्य एवं लाभ -

क्षैतिज संविलयन / अधिग्रहण के निम्नांकित उद्देश्य एवं लाभ हो सकते है -

- प्रतियोगिता को कम करना एवं बाजार पर एकाधिपत्य स्थापित करना
- बड़े पैमाने की बचतें प्राप्त करना
- प्रबन्ध एवं नियंत्रण में मितव्ययता लाना
- एक दूसरे के ज्ञान व अनुभव का लाभ उठाना व आर्थिक एवं वित्तीय सुदृढ़ता प्राप्त करना
- अनुसंधान को बढ़ावा देना तथा प्लान्ट एवं मशीनरी का आधुनिकीकरण करना

दोष : क्षैतिज संविलयन / अधिग्रहण के प्रमुख दोष इस प्रकार है -

- एकाधिकारी प्रवृति के फलस्वरुप उपभोक्ताओं एवं मजदूरों का शोषण
- प्रतियोगिता में कमी से औद्योगिक विकास पर प्रतिकूल प्रभाव
- नये उद्यमियों का प्रवेश कठिन
- आर्थिक विषमताओं में वृद्धि
- नियंत्रण एवं निरीक्षण में शिथिलता
- जोखिम के स्तर में वृद्धि

2. **लम्बवत् (शीर्ष) संविलयन / अधिग्रहण (Vertical merger / acquisition):** पूरक वस्तुओं का उत्पादन करने वाली व्यावसायिक इकाईयों के किये जाने वाले संयोजन को लम्बवत् संविलयन / अधिग्रहण की श्रेणी में सम्मिलित किया जाता है अर्थात् कच्चेमाल को सरलतापूर्वक प्राप्त करने अथवा निर्मित माल को सरलतापूर्वक बेचने के लिए किया जाने वाला संयोजन, लम्बवत् संयोजन कहलाता है ।

(i) **अग्रगामी संविलयन (Forward merger) :** उत्पादित सामग्री के विक्रय के लिए किया जाने वाला संयोजन अग्रगामी संविलयन कहलाता है ।

(ii) **प्रतिगामी संविलयन (Backward merger)** : उत्पादित सामग्री के लिए किया आवश्यक कच्चे माल एवं अन्य सामग्री की पूर्ति सुनिश्चित करने व सरल बनाने के लिए किया जाने वाला संयोजन प्रतिगामी संविलयन कहलाता है ।

लम्बवत् संयोजन / अधिग्रहण के उद्देश्य एवं लाभ

- उचित मूल्य पर पर्याप्त कच्चेमाल की पूर्ति को सुनिश्चित करना एवं निर्मित माल का सरलतापूर्वक विक्रय करना
- विज्ञापन, परिवहन एवं विक्रय व्ययों में कमी लाना
- कच्चेमाल की किस्म को अपनी आवश्यकताओं के अनुरुप नियन्त्रित करना
- कच्चेमाल की पूर्ति, उत्पादन एवं विक्रय के मध्य समन्वय स्थापित करना तथा मध्यस्थ को समाप्त कर लाभों में अभिवृद्धि करना

दोष -

- एकाधिकारी प्रवृति को बढ़ावा एवं उपभोक्ताओं का शोषण
- प्रतियोगिता को कुचलने का प्रयास व पारस्परिक निर्भरता से हानि

मिश्रित संविलयन / अधिग्रहण (Conglomerate merger/ acuisition) -

भिन्न भिन्न व्यवसाय करने वाली इकाइयों का संयोजन, मिश्रित संविलयन कहलाता हैं।

विकर्णीय संविलयन / अधिग्रहण (Diagonal Merger / acquisition)

मुख्य उद्योग का सहायक अथवा सेवा प्रदान करने वाली कम्पनी के साथ संयोजन, विकर्णीय संविलयन कहलाता है। उदाहरणार्थ कार बनानेवाली कम्पनी का कार सर्विसिंग कम्पनी के साथ संयोजन, भवन निर्माण करने वाली कम्पनी का श्रमिकों की आपूर्ति करने वाली कम्पनी के साथ संयोजन।

संविलयन / अधिग्रहण के लाभ (Advantage of Merger/acquisition) :

संविलयन / अधिग्रहण से निम्नांकित लाभ प्राप्त होते हैं -

1. बड़े पैमाने की बचतें जैसे - अत्यधिक मात्रा में कच्चेमाल के क्रय से, अपेक्षाकृत कम मूल्य पर सामग्री प्राप्ति, कच्चे माल के स्त्रोतों में विस्तार हो जाने से उत्पादन निर्बाध रुप से सम्भव, उत्पादन एवं विपणन व्ययों में कमी आदि।
2. बहुराष्ट्रीय कम्पनियों से प्रतियोगिता करने में सक्षम - संगठन में ही शक्ति होती है।
3. पूरकता एवं करों में लाभ
4. नये बाजारों में प्रवेश तथा गलाकाट प्रतियोगिता का समापन
5. कच्चे माल की आपूर्ति का सुनिश्चित होना एवं निर्मित माल का आसानी से विक्रय
6. बीमार एवं मरणासन्न कम्पनी को स्वस्थ बनाने में सहायक एवं जोखिम को कम करना
7. विस्तार एवं प्रगति की दर में वृद्धि तथा कुशल प्रबन्ध एवं उन्नत तकनीकी का प्रयोग सम्भव

दोष : संविलयन / अधिग्रहण की प्रमुख कमियाँ / सीमाएं इस प्रकार है -

1. एकाधिकारी प्रवृति एवं पूँजीवाद को बढ़ावा
2. उपभोक्ताओं एवं श्रमिकों का शोषण
3. नये उद्यमियों का प्रवेश नहीं
4. बड़े पैमाने की हानियाँ एवं अभिप्रेरणा में कमी

19.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. विदेशी पूँजी निवेश से आपका क्या आशय है? भारत को विदेशी पूँजी निवेश की आवश्यकता क्यों होती है?
2. संक्षिप्त में लिखिए :
   (i) प्रत्यक्ष विदेशी निवेश
   (ii) द्विपक्षीय एवं बहुपक्षीय सहायता
   (iii) भारत के लिए विदेशी पूँजी का महत्व
   (iv) विदेशी सहायता
3. भारत में निजी क्षेत्र विदेशी पूँजी विनियोग के पक्ष एवं विपक्ष में तर्क दीजिए।
4. भारत में विदेशी पूँजी निवेश के मुख्य स्त्रोत कौन से हैं?
5. भारत सरकार की विदेशी पूँजी निवेश एवं विदेशी सहायता के सम्बन्ध में नीति पर टिप्पणी लिखिए।
6. संविलयन एवं अधिग्रहण से आप क्या समझते हैं? इनके प्रकार बताते हुए भारत जैसे विकासशील देश के लिए इनका महत्व समझाइए।

19.13 संदर्भ ग्रन्थ

1. भारत में आर्थिक पर्यावरण : बी. पी. गुप्ता, एच. आर. स्वामी
2. व्यावसायिक वातावरण : डॉ. इन्द्रवर्धन त्रिवेदी, डॉ. महेन्द्र कुमार शर्मा
3. भारत में आर्थिक पर्यावरण : डॉ. वी.के. वशिष्ठ, डॉ. पी.सी. भिण्डा, डॉ. एम.जी. वार्ष्णेय एवं शम्भू सिंह झाला
4. वित्तीय प्रबन्ध : एस.एल. श्रीश्रीमाल
5. Business Environment : Mathur, Dayal, Srivastava
6. International Trade and Export Management : Francis Cherunilam

इकाई-20 व्यावसायिक तकनीकी वातावरण (Commercial Technical Environment)

इकाई की रूपरेखा

20.1 प्रस्तावना

20.2 व्यावसायिक तकनीकी वातावरण की अवधारणा

20.3 व्यावसायिक तकनीकी वातावरण की विशेषताएँ

20.4 व्यावसायिक तकनीकी वातावरण का प्रभाव

20.5 व्यावसायिक तकनीकी वातावरण का क्षेत्र

20.6 व्यावसायिक तकनीकी वातावरण से व्यापार में लाभ

20.7 व्यावसायिक तकनीकी वातावरण की सीमाएँ

20.8 व्यावसायिक तकनीकी वातावरण के दुष्परिणाम

20.9 उपसंहार

20.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

20.11 सन्दर्भ

20.1 प्रस्तावना

व्यावसायिक संगठनों को उनसे संबंधित वातावरण का अभिज्ञान होना अति आवश्यक होता है । वातावरण के तालमेल से व्यापारिक संगठन सुव्यवस्थित व्यापार कर लाभ अर्जित कर सकते हैं, अच्छी सेवाएँ दे सकते हैं साथ ही साधनों का समुचित उपयोग कर उत्पादन व वितरण को बेहतर बना सकते हैं । व्यापारिक संगठनों हेतु विभिन्न वातावरणों का वर्गीकरण निम्नानुसार है:-

1. आर्थिक वातावरण
2. विधिक राजनैतिक वातावरण
3. तकनीकी वातावरण
4. सामाजिक-सांस्कृतिक वातावरण और
5. प्रतियोगी वातावरण

अधिकांश व्यापारिक संगठनों को वर्तमान में तकनीकी वातावरण से सम्बन्धित होना अनिवार्य सा जान पड़ता है ।

20.2 तकनीकी वातावरण की अवधारणा

व्यापारिक संगठनों द्वारा किये जाने वाले कार्यो से संबंधित ज्ञान का संकुल है । इसके अन्तर्गत आविष्कार और तकनिकी (Inventions and techniques) जो उत्पादित किये जाने वाले उत्पाद से संबंधित डिजाइनिंग, उत्पादन एवं वितरण कार्य करने की विधियों को प्रभावित करती है, का समावेश किया जाता है ।

तकनीकी को परिभाषित किया जा सकता है यह एक विधि है जो किसी विशेष टास्क को प्राप्त करने हेतु उससे संबंधित आदानों को उत्पादन में परिवर्तन करने हेतु काम में ली जाती है । इस प्रकार

विधि या तकनीक केवल ज्ञान से संबंधित नहीं है बल्कि कुशलता एवं साधनों से भी संबंधित है जो उस विशेष कार्य को सम्पादन करने हेतु काम में ली जाती है । इस प्रकार तकनीकी नवाचार बढ़ाता है ज्ञान, कुशलता, नये उन्नत साधकों को जो किसी विशेष कार्य को सम्पादित करने हेतु आवश्यक होते हैं ।

तकनीकी को निम्नानुसार वर्गीकृत किया जा सकता है उदाहरण स्वरूप ब्लु प्रिन्ट, मशीनरी, उपकरणों एवं अन्य वित्तिय वस्तुओं से संबंधित ।

व्यापारिक संगठन एवं तकनीकी वातावरण में संबंध निम्न चित्र द्वारा प्रदर्शित किया गया है-

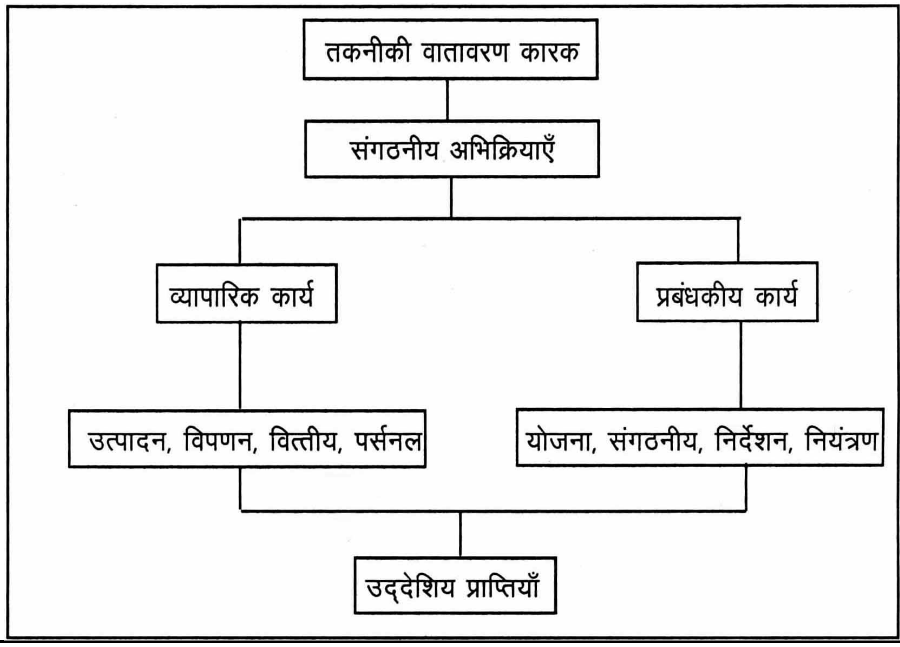

20.3 तकनीकी वातावरण की विशेषताएँ-

व्यापारिक संगठन की आपसी क्रियाओं के कई परिणाम परिलक्षित होते हैं ।

- तकनीकी वातावरण की गतिविधियाँ व्यापारिक संगठन के विभिन्न भागों को विभिन्न तरीकों से प्रभावित करती है जैसे अनुसंधान एवं विकास, उत्पादन विनिर्माण विपणन आदि को ।
- एक दी हुई तकनिकी प्रभावित करती है एक व्यापारिक संगठन को उसके संगठित होने के तरीके एवं अन्य व्यापारिक संगठनों से प्रतियोगिता को ।
- पेट्राव ने तकनीकी वातावरण के प्रभाव को निम्न बिन्दुओं में विश्लेषित किया है:-
  1. एक व्यापारिक संगठन में संबंधित प्रतियोगी कीमत की स्थिति को परिवर्तित कर सकती है।
  2. यह नये बाजार, नये व्यापारिक सेगमेन्ट्स उपलब्ध कराती है ।
  3. यह पूर्व में चल रहे आत्मनिर्भर व्यापार को समाप्त या विलिय कर सकती है उनकी सेगमेन्ट कोस्ट बेरियर को कम कर या हटा कर ।

20.4 तकनीकी परिवर्तन व्यापारिक संगठनों पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव डालते हैं-

यह व्यवसायिक प्रबन्धन को अग्रेसित करते हैं, अधिक लाभ कमाने हेतु व्यावसायिक अभिक्रियाओं में तकनीकी परिवर्तन को शामिल करने हेतु ।

व्यवसाय में किसी भी तरह के तकनीकी परिवर्तन से व्यवसाय में चल रही कार्यशैली, कार्य विधियों एवं कार्य व्यवस्था में परिवर्तन आता है । यह व्यवसायिक गतिविधियों में परिवर्तन लाते हैं एवं अधिक उत्पादन प्राप्त करने हेतु व्यवस्था को प्रेरित करते हैं ।

उदाहरणार्थ तकनीकी परिवर्तन का प्रभाव, वायुयान, इलेक्ट्रोनिक्स, ऊर्जा, संचार, उपभोक्ता की आवश्यकता वाले उत्पादों, प्रकाशीय उपचार एवं उत्पादन से संबंधित व्यवसायों में आसानी से देखा जा सकता है ।

20.5 तकनीकी वातावरण का क्षेत्र

तकनीकी वातावरण सभी व्यापारिक संगठनों को कमोबेश प्रभावित कर रहा है । मुख्यतया उन व्यापारिक संगठनों को तकनीकी वातावरण से अलग नहीं किया जा सकता जिनमें तकनीकी उपयोग एक अहम भूमिका निभाता है । ऐसे व्यापारिक संगठन जिनमें उत्पाद से संबंधित योजना, निर्माण वितरण सभी प्रक्रियाओं में तकनीकी उपयोग होता है उन उद्योगों, व्यापारिक संगठनों को बदली हुई तकनीकी परिस्थितियों से आत्मसात् करना आवश्यक हो जाता है ।

तकनीकी वातावरण व्यापारिक संगठन को उसकी आन्तरिक संरचना के हर क्षेत्र को भी प्रभावित करता है जिसके विनिर्माण प्रक्रिया, वितरण प्रक्रिया आदि है ।

20.6 तकनीकी वातावरण के लाभ

साधारणतया जब कोई व्यापारिक संगठन परिवर्तित तकनीकी वातावरण में अपने आपको लाता है तो उसे निम्न लाभ प्राप्त होते हैं:-

1. उत्पाद निर्माण की कीमत कम होने की पूर्ण संभावना रहती है ।
2. उत्पाद की फिनिशिंग, मात्रा, गुणवत्ता बढ़ती है ।

20.7 तकनीकी वातावरण की सीमाएँ

तकनीकी वातावरण एवं इसमें आये परिवर्तनों को किसी व्यवसाय द्वारा अपनाए जाने में कई कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है ।

1. नई तकनीक को समझाने में व्यवसाय में संलग्न स्टाफ को काफी समय लग जाता है ।
2. नई तकनीक एवं उपकरणों की खरीद में अधिक वित्तिय आवश्यकता होती है ।
3. तेजी से बदलती तकनीकी की वजह से अधिक Depreciation आता है ।
4. विदेशों से तकनीकी आयात में विधिक प्रक्रिया बढ़ जाती है ।
5. व्यवसाय को किये कामगारों एवं कामगार संगठनों द्वारा तकनीकी परिवर्तन का विरोध ।
6. समयावधि में तकनीकी परिवर्तन लागु न होने की स्थिति में उन्नत तकनीकी का उपयोग असंगत होता है ।

तकनीकी स्थानान्तरित की जा सकती है- आदमी से आदमी, उद्योग से उद्यने, सरकार से सरकार हालांकि सरकार की मुख्य भूमिका रहती है तकनीकी स्थानान्तरण नितियों में ।

20.8 तकनीकी वातावरण के दुष्परिणाम

तकनीकी वातावरण में आये परिवर्तनों से व्यावसायिक एवं उससे संबंधित या उनके आस-पास में रहने वाले लोगों पर काफी नुकसानदायक प्रभाव भी पड़ता है जैसे नाभकिय ऊर्जा उपयोग से सम्पूर्ण मनुष्य जाति के अस्तित्व पर ही प्रश्न चिन्ह लग गया है । इसी प्रकार औद्योगिक ईकाईयों द्वारा फैलाये जा रहे वायु, जल एवं वातावरणीय प्रदूषण की भी अनदेखी नहीं की जा सकती ।

तकनीकी देने वाले एवं लेने वाले देशों के बीच तकनीकी परिवर्तन संघर्ष का कारण भी बन सकता है । तकनीकी प्राप्त करने वाला देश यह सोच सकता है कि तकनीकी देने वाला देश उस पर सामाजिक आर्थिक क्षेत्र में अनावश्यक दबाव डाल सकता है । तकनीकी देने वाले देश में स्वयं बेरोजगारी की स्थिति आ सकती है ।

20.9 उपसंहार

विदेशों से तकनीकी आयात और देश में हुए अनुसंधान विकास के चलते भारत में तकनीकी वातावरण तेजी से बदल रहा है । भारत सरकार ने विदेशों से तकनीकी आयात के मामले में काफी उदारवादी निति अपनाई हुई है । साथ ही देश में हो रहे तकनीकी अनुसंधान एवं विकास हेतु व्यापारिक संगठनों, अनुसंधान शालाओं, तकनीकी अनुसंधान विकास परिषद् को भरपूर सहायता प्रदान कर रही है ।

इस तरह प्रबंधकों को रोज बदलती हुई तकनीकी को अपनाते हुए कार्य करने की प्रेरणा मिल रही है जिससे वे अधिक सतर्क होकर बदली हुई तकनीकी का फायदा उठा रहे हैं ।

20.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. व्यावसायिक तकनीकी वातावरण क्या है?
2. व्यावसायिक तकनीकी वातावरण की आवश्यकता क्यों महसूस हुई?
3. व्यावसायिक तकनीकी वातावरण की अवधारणा क्या है?
4. व्यावसायिक तकनीकी वातावरण की प्रमुख विशेषताएँ बताईये ।
5. व्यावसायिक तकनीकी वातावरण का प्रभाव किन बातों पर पड़ता है?
6. व्यावसायिक तकनीकी वातावरण का मुख्य क्षेत्र कौनसा है?
7. व्यावसायिक तकनीकी वातावरण से व्यापार को प्रमुख लाभ क्या है?
8. व्यावसायिक तकनीकी वातावरण की सीमाएँ बताइये ।
9. व्यावसायिक तकनीकी वातावरण के दुथरिणाम क्या हैं?

20.11 सन्दर्भ :-

1. Horis Petrove “The Advent of the Technology Portfolio” Journal of Business Strategy. Pall 1982, pp. 70-75.

2. Robert B.Duncan, "Characteristics of Organisational Environments and Perceived Environmental Uncertainly" Administrative Science Quarterly. Sept. 1972, p.325
3. William F. Gluck, Business Policy and Strategic Management, New York, Mc. Graw Hill, 1980, p.30.
4. D.K. Singh, Investment Policy and Performance of U.S. Substitutes in India, New Delhi Sterling Publishers, 1974.
5. "Michale E.Dustun" Competitive Advantages Creating and Sustaining Superior Performance, New York Press, p.85.
6. Verrv L. Well and Bonggon Eshain "Seeking Competitive Information" in Ghu.K.Op Cut pp. 144-153.
7. www.openlearningworld.com/olw/courses/books/fundamentals.

ISBN-13/978-81-8496-005-1